भाषा एवं हिंदी भाषा

डॉ० सतीशकुमार रोहरा
प्राध्यापक—भाषाविज्ञान
काशी हिंदू विश्वविद्यालय



हिंदी प्रचारक संस्थान
पिशाचमोचन, वाराणसी

Hindi Ewam Hindi Bhasha

By

Dr Satish Kumar Rohra

	प्रकाशक
	विजय प्रकाश बेरी
प्रथम संस्करण	हिंदी प्रचारक संस्थान
३३०० प्रतियां	(व्यवस्था कृष्णचंद्र बेरी ऐंड संस)
सितंबर १९७२	पो० बा० नं० १०६ पिशाचमोचन वाराणसी–१
मूल्य–	मुद्रक–
छह रुपये	स्वस्तिक मुद्रणालय
	गोलघर, वाराणसी–१

सुवाक्

बोलते तो अनेक प्राणी है और उनकी बोलियों में भय और आनंद जैसे मोटे मोटे भावों की अभिव्यञ्जना भी हुआ करती है, पर मनुष्य को विधाता की ओर से जो वाणी दी गई है, वह अत्यन्त दुर्लभ है। वह मनुष्य के अन्तरतम के भाव राशि को बारीकी से अभिव्यक्ति देती है और केवल अभिव्यक्ति ही नहीं देती, भावों के उपगूहन में भी उतनी ही समर्थ है। साधारण अर्थ में भावों को अभिव्यक्ति देने वाली यह मानव वाणी ही भाषा कही जाती है। कैसे इसका आरंभ हुआ? किस प्रकार वह आदिम संगीतात्मक स्थिति से विविक्त वर्ण भाषा के रूप में प्रकट हुई, तथा किस प्रकार इन विविक्त वर्णों को यथातथ रूप में लिपिबद्ध किया गया, कैसे वह एक भाषा से दूसरी में बदलती गई, इतिहास और भूगोल के विशाल परिसर में यह किस प्रकार अभिव्यक्ति का माध्यम बनती रही, य कहानी बहुत ही रोचक है। विद्वानों ने उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इस अत्यद्भुत विकास की कहानी कही है। भाषा का विकास मानव समाज के विकास की कहानी है। भाषा का इतिहास हमें बताता है कि किस प्रकार मनुष्य का एक वर्ग दूसरे के संपर्क में आया है, जूझा है, लड़ा है और फिर किस प्रकार मिलन की प्रशस्त भूमि तैयार हुई है। हमारा यह देश इस दृष्टि से बहुत ही समृद्ध रहा है। केवल भाषा के प्राचीनतम नमूने ही यहां उपलब्ध नहीं होते, उसके विश्लेषण और संगठन के सूत्र भी यहां भरे पड़े हैं। व्याकरण और निरुक्त का धारा-वाहिक इतिहास यहां सुलभ है। आज के वैज्ञानिक युग में भाषा के अध्ययन ने नई मोड़ ली है। आज संसार के दूर-दूर स्थित भू भागों के निवासियों की भाषा के सूक्ष्म अध्ययन का सुयोग मिला है। कई भिन्न

प्रकृति की भाषाओं के जानकारों ने स्वयं न भाषा के व्यापक अध्ययन का एक अवसर यह भी खो दिया। आज भाषा विषयक जानकारी बहुत सुनियोजित ढंग से प्रकाश में लाई जा रही है।

डॉ० सतीश कुमार रोहरा भाषा की आधुनिक अध्ययन पद्धति के ज्ञाता हैं। उन्होंने यह पुस्तक नए पाठकों के लिए लिखी है जो भाषा अध्ययन की आधुनिक पद्धति के जिज्ञासु हैं। यह प्रारंभिक पुस्तक है पर डॉ० रोहरा ने नई जानकारियों को सरल भाषा में लिख देने में कोई कसर नहीं रखी है। वे उससे और अधिक जटिल प्रश्नों को इसी प्रकार की सहज भाषा में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं।

मुझे आशा है कि डॉ० रोहरा का यह प्रयास छात्रों तथा इस विषय के जिज्ञासुओं का उपकारक होगा। भाषा के सामान्य विवेचन के साथ साथ वे हिन्दी भाषा के विशेष विवेचन की सहायता भी आसानी से नवीनतम पद्धति से जान सकेंगे। पुस्तक की सार्थकता इसी में है।

वाराणसी

१२ अगस्त ७२

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

पुरोवाक्

●

आज भाषाविज्ञान का काय और पद्धति बहुत बदल गई है। भारत वप में प्राचीनकाल से ही भाषा के अध्ययन को वरीयता दी जाती रही है। पाणिनि इस दृष्टि से भारत के ही नहीं विश्व के सवप्रथम भाषा वज्ञानिक कहे जा सकते ह। जब हमारे पूवजो ने पाणिनि को भगवान् या ऋषि कहा तो वे प्रकारातर से भाषाशास्त्र की महत्ता को आप समथन दे रहे थे। पतजलि का यह कहना यथाथ ह कि "शोभना खलु पाणिनिना सूत्रस्यकृति [२।३।६६]। गुलेरी जी ने भारतीय भाषा शास्त्र की परपरा में पाणिनि का स्थान निर्धारित करते हुए लिखा है—"जसे पाणिनि अपने पहले के सब सस्कृत वयाकरणो का सघात है वसे ही वह अपने पिछले सभी वयाकरणो का उद्गम ह।" पाणिनि की श्रेष्ठता में किसे सदेह हो सकता है पर इस बात में किसी को सदेह नहीं हो सकता कि भाषा की धारा वयाकरणों को छोडकर सदा आगे निकल जाती ह, इसी कारण पाणिनि का विकसित करने के लिए पतजलि को आना पडता ह, और एक के बाद एक नये भाषाशास्त्रीय इस निरतर विकासमान धारा का थाहने के लिए एक के बाद एक प्रयत्न करते जाते ह। हर प्रयत्न इसीलिए आगामी प्रयत्न के लिए न्यास बन जाता है। यही भाषाशास्त्र या किसी भी शास्त्र के अध्ययन की सारस्वत परम्परा का मूल स्वरूप ह।

मध्य ज्ञान की अन्य आधुनिक शाखाओ की तरह ही भाषाविज्ञान का नया रूप भी पश्चिम की देन ह। पिछले दो सौ वर्षों स योरोप में भाषा विज्ञान का अद्भुत विकास हुआ ह। १८वी शती में जब विलियम जोन्स ने अभिज्ञान शाकुतल का अनुवाद किया सस्कृत पर पश्चिमी पडितो की

दृष्टि पड़ी। ग्रीक, लटिन और संस्कृत की कुछ ध्वनियों और शब्दों में अद्भुत समता देखकर लोगों की दृष्टि तुलनात्मक अध्ययन की ओर मुड़ी। तब से आज तक इस विज्ञान ने कई चरण पार किये ह और यह धीरे धीरे वैज्ञानिक उपकरणों और पद्धतियों के द्वारा अपने को विश्व की भाषाओं के अध्ययन के लिए निरंतर सक्षम बनाता जा रहा है। अब यह सही अर्थ में विज्ञान की भूमिका में उतर आया है।

डा रोहरा इस विकास प्रक्रिया से भली भांति परिचित है। डा० सतीश कुमार रोहरा आधुनिक पीढ़ी के भारतीय भाषा-वैज्ञानिकों में अपना स्थान बना चुके हैं। उन्होंने अपनी इस छोटी किंतु महत्त्वपूर्ण पुस्तक के द्वारा भाषाध्ययन के सामान्य सिद्धांत और हिंदी भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इस विषय पर अब तक ढेरों पुस्तकें लिखी गई हैं, नाना आकार प्रकार की, किंतु मुझे यह देखकर प्रीतिकर आश्चर्य हुआ कि डा० रोहरा ने सीमित दायरे में रहते हुए भी इस पुस्तक में एक ऐसी नूतन और सरल साथ ही वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है कि विषय स्नातक और स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त बोधगम्य हो गया है। उनकी समास शैली में गागर में सागर उतारने का सफल प्रयत्न है। उन्होंने एक ओर बी० ए० स्तर के विद्यार्थियों के लिए जहां आवश्यक सामग्री को सम्यक ढंग से प्रस्तुत किया है वहीं गहराई से देखने से मालूम होगा कि उनके द्वारा अपनाई गई पद्धति स्नातकोत्तर छात्रों को विषय के अध्ययन की ओर भी विकसित और पुष्ट बनाने के लिए सही मार्ग और दिशा का समुचित निर्देश करती है। मैं उनकी इस पुस्तक के लिए उन्हें बधाई देना अपना कर्तव्य मानता हूं।

शिवप्रसाद सिंह
रीडर हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी–५

१४सितम्बर ७२
हिंदी दिवस

अनुवाक्

●

आज कल भारत में भाषाविज्ञान का प्रचार प्रसार बढ रहा है। बहुत से विश्वविद्यालयों में इस विषय के स्वतन्त्र अध्ययन की व्यवस्था है, और प्राय समस्त विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान एव हिंदी भाषा का अध्ययन स्नातक एव स्नातकोत्तर कक्षाओं के हिंदी साहित्य के पाठ्यक्रम का अनिवार्य अग है।

अपने अध्यापन काय के अनुभव से मैं यह जान पाया हू कि यह विषय अब भी विद्यार्थियो के लिए 'हौवा' बना हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस विषय पर हिंदी में लिखी हुई पुस्तको में उस वज्ञानिक दृष्टि का प्राय अभाव है जो इस विषय के विश्लेषण में अपेक्षित है। इसीसे विद्यार्थी इस विषय को भी साहित्य के समान भाषा-शैली की उन रेशमी डोरियो में बाधने का प्रयत्न करता है जो इस विषय का भार सभाल नही पातीं। परिणामस्वरूप विषय विद्यार्थी के लिए भार बनकर रह जाता है।

एक बात और भी है। भारतीय विश्वविद्यालयो—विशेषकर हिंदी क्षेत्र के विश्वविद्यालयो—में इस विषय का नियत पाठ्यक्रम बहुत पुराना एव तुलनात्मक दृष्टि से पिछडा हुआ है। इसका कुछ उत्तरदायित्व इस विषय पर हिंदी में लिखी हुई निम्नस्तरीय पुस्तको पर भी है क्योंकि पाठ्यक्रम एव तत्सबधी पुस्तको में काय कारण सबध रहता है। उन्नत पाठ्यक्रम उच्चस्तरीय पुस्तकों के प्रणयन की प्रेरणा देता है तथा उत्तम पुस्तकें पाठ्यक्रम का स्तर ऊचा करने में सहायता प्रदान करती हैं।

अत इस पुस्तक लिखने का दुहरा उद्देश्य रहा है। एक तो सरल सुबोध एव सटीक शैली में इस विषय का विश्लेषण प्रस्तुत कर, विद्यार्थियों

में इस विषय के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना, दूसरा, पाठ्यक्रम व घेरे को थोड़ा और विस्तृत करने का प्रयत्न करना। इसीसे न केवल भाषा संबंधी सैद्धांतिक विश्लेषण में वरन् हिंदी के व्यावहारिक विवेचन में भी विकारक तत्व, क्रियापद आदि जैसे नये विषयों की चर्चा हो गयी है। पुस्तक मुख्य रूप से स्नातक कक्षाओं के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर लिखी गयी है किंतु वह स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

कृतज्ञता ज्ञापन मनुष्य धर्म का एक अंग है।

श्रद्धेय हजारीप्रसाद द्विवेदी जी की मुझ पर सदैव कृपा रही है 'मुखावाक्' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मित्रवर डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह के लिए 'आभार' शब्द का प्रयोग कर मैं उनके सहज स्नेह को औपचारिक नहीं बनाना चाहता। पुस्तक लिखने की प्रेरणा से लेकर 'पुरोवाक्' तक की इस प्रक्रिया में मुझे सदैव उनसे बौद्धिक प्रोत्साहन प्राप्त होता रहा है।

इस पुस्तक की रचना में मैंने अनेक विदेशी (विशेषकर—हॉकेट, ग्लीसन, ब्लाक ट्रगर, कराल, शावरिया, जस्पर्सन) एवं भारतीय (विशेषकर—सुनीतिकुमार चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा, बाबूराम सक्सेना, उदय नारायण तिवारी, भोलानाथ तिवारी, हरदेव बाहरी) विद्वानों की ज्ञान राशि से लाभ उठाया है। मैं इन समस्त विद्वानों का आभारी हूं।

श्री कृष्णचंद्र बेरी (हिंदी प्रचारक) ने जिस सहजता से इस पुस्तक के प्रकाशन, तथा श्री सत्यशरण शर्मा ने जिस तत्परता से इस पुस्तक के मुद्रण में सहयोग दिया है उसके लिए वे निःसन्देह बधाई के पात्र हैं।

अपने 'साध्य' का उल्लेख मैंने 'अनुवाक' में कर दिया है। 'सिद्धि' के उल्लेख के लिए उत्तरवाक् की प्रतीक्षा रहेगी।

वाराणसी
१५ सितंबर १९७२

—सतीशकुमार रोहरा

अनुक्रम



✪

१ भाषा



- भाषा—व्यक्ति, समाज एव सभ्यता
- भाषा—प्रयोग, साधन एव साध्य
- भाषा की परिभाषा
- भाषा के पक्ष एव भाषा की सरचना
- भाषा के अग
- भाषा के तत्व
- भाषा की विशेषताए
  - —रचनागत विशेषताए
  - —स्वभावगत विशेषताए
- भाषा की उत्पत्ति
- भाषा मे परिवर्तन (विकास)



१ १ भाषा व्यक्ति, समाज और सभ्यता

भाषा मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अग है। व्यक्ति के जीवन में भाषा के उपयोग की इतनी अधिकता है कि सास लेने के पश्चात भाषा के प्रयोग की ही गणना की जा सकती है।

मनुष्य, मूलरूप से सामाजिक प्राणी है। समाज के अभाव म उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास असभव है। व्यक्ति के सामाजिक जीवन का मुख्य आधार भाषा है। भाषा के अभाव में सामाजिक जीवन की कल्पना सभव नही है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियो में विकसित सामाजिक जीवन के अभाव का मुख्य कारण यही है कि उनमें वाणी की वह शक्ति नही जो मनुष्य में है।

मानव-सभ्यता का विकास मूलरूप से अनुभवो के आदान प्रदान पर निर्भर करता है। अनुभवो का यह विनिमय दो प्रकार से हो सकता है एक तो अनुकरण के द्वारा और दूसरा भाषा के माध्यम से। अनुकरण केवल स्थूल क्रियाओ (यथा-खाना, पहनना आदि) का ही हो सकता है। सूक्ष्म वातो (यथा—इच्छाओ विचारो, विश्वासो आदि) का अनुकरण नही किया जा सकता। ये बातें भाषा के माध्यम से ही सीखी और सिखाई जा सकती हैं। कहने की आवश्यकता नही कि ये सूक्ष्म बातें ही मानव-सभ्यता का प्राण अथवा आत्मा है। अत यह कहना अनुचित न होगा कि मानव सभ्यता का वर्तमान स्वरूप मुख्यरूप मे मनुष्य की भाषा शक्ति का ही परिणाम है।

१ २ भाषा प्रयोग, साधन और साध्य

अपनी भाषा का प्रयोग व्यक्ति के लिए इतना सहज और स्वाभाविक है कि वह उसकी सरचना (Structure) एव क्रियाविधि की ओर ध्यान ही नही देता। साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या, विद्वान् लोग भी स्वभाषा'* की सरचना सबधी जानकारी देने में प्राय असमर्थ रहते है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति का सबध भाषा के 'प्रयोग' से रहता है, 'भाषा सबधी जानकारी'

---

* 'स्वभाषा' (Native Language) अर्थात् वह भाषा, जिसे व्यक्ति जन्म से ही सीखता और बोलता है। इसे ही प्राय 'मातृभाषा', कहा जाता है। 'स्वभाषा' का विरोधी शब्द 'परभाषा' (Foreign Language) है, जिससे तात्पर्य उस भाषा से है जो व्यक्ति की स्वभाषा नहीं है।

से नहीं । इस कारण वह भाषा संबंधी जानकारी के प्रति एक प्रकार से उदासीन रहता है ।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके लिए भाषा संबंधी जानकारी, भाषा प्रयोग के समान ही अथवा उससे भी अधिक उपयोगी होती है । ये लोग ऐसे क्षेत्रों से संबंध रखते हैं जिन क्षेत्रों में भाषा संबंधी जानकारी सहायक सिद्ध होती है । अर्थात ये लोग, अपने कार्य के लिए, साधन रूप में भाषा-संबंधी जानकारी का प्रयोग करते हैं । ऐसे व्यक्तियों में अध्यापकों (विशेषकर इतरभाषा शिक्षकों) लेखकों, मनोवैज्ञानिकों समाजशास्त्रियों, इतिहासकारों, कम्यूनीकेशन इंजीनीयरों आदि की गणना की जा सकती है ।

इन लोगों के अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके लिए भाषा का अध्ययन साधन न होकर साध्य होता है । ये लोग भाषा का अध्ययन किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि स्वयं भाषा की 'आतरिक संरचना को समझने के लिए ही करते हैं । ऐसे लोगों को ही 'भाषा वैज्ञानिक अथवा भाषा विज्ञानी (Linguists) कहा जाता है, और भाषा वैज्ञानिकों द्वारा व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत की गयी भाषा (सामान्य) अथवा विशेष भाषा संबंधी जानकारी को ही भाषा विज्ञान' (Linguistics) कहा जाता है ।

भाषा का साध्य रूप में अध्ययन करने के कारण ही भाषाविज्ञान, ज्ञान की अलग एवं स्वतंत्र शाखा है और अपनी इसी विशेषता के कारण वह ज्ञान की उन शाखाओं से भिन्न है जिनमें भाषा का अध्ययन साधन रूप में किया जाता है ।

१ ३ भाषा की परिभाषा

भाषा क्या है ? इस प्रश्न का सामान्य एवं प्रचलित उत्तर यही है कि 'भाषा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एक दूसरे से विचार विनिमय करते हैं अथवा अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं । भाषा की यह परिभाषा अनिश्चित एवं अस्पष्ट तो है ही त्रुटिपूर्ण भी है । यह ऐसा ही है जैसे कहा जाय कि अंगूर एक फल है । अंगूर एक फल है यह सत्य है किंतु फल तो आम अनार अमरूद भी हैं । तो क्या अंगूर, आम, अनार और अमरूद सब एक ही चीज हैं ? वैसे ही भाषा विचार विनिमय का साधन अवश्य है किंतु वह विचार विनिमय का एकमात्र साधन नहीं है । मनुष्य इतना अधिक विधियों में विचारों की अभिव्यक्ति करता है कि उनकी गणना कर सकना ही संभव नहीं है ।

आख, हाथ और सिर के सकेतो से ही नही, पाव को पटककर, गाल अथवा नथुने का फुलाकर, दात अथवा जीभ दिखाकर भी भावो की अभिव्यक्ति की जा सकती ह। प्रिय के किसी मधुर बोल पर प्रेयसी के कपोलो पर फल जाने वाली लालिमा क्या कोई भाव अभिव्यक्त नही करती ? गाड की घडियाँ, तार बाबू की मशीन पर टिक टिक, फक्टरी का बजनेवाला भोपू, युद्ध के आक्रमण की सूचना देनेवाला सायरन, दिशा निर्देश करनेवाली चौराहे पर लगी हुई बत्तियाँ अथवा सिपाही के गिरते उठते हाथ, सभी भाव अभिव्यक्ति के साधन हैं। १८५७ की क्रांति में कमल के फूल एव रोटी द्वारा क्रांति का सदेश पहुचाया गया था। भाषा-आदोलन के समय उत्तर भारत के एक विश्वविद्यालय के छात्रो ने, दूसरे विश्वविद्यालय के छात्रों को चूडियो का उपहार भेजकर आदोलन के लिए ललकारा था।

अब यदि गाड की घडी, तार बाबू की टिक टिक और प्रेयसी के कपोलो की लालिमा सबको भाषा मानकर उसका विश्लेषण किया जाय तो वह विश्लेषण कसा होगा ? वह विश्लेषण और चाहे कसा भी हो, उसका स्वरूप विज्ञान के अनुकूल नही हो सकता। किसी भी विषय का वैज्ञानिक अध्ययन तभी सभव है जब कि उसका क्षेत्र निश्चित हो, और क्षेत्र तभी निश्चित हो सकता ह जबकि उसकी सीमाए निर्धारित हो। अत भाषा को असीम नही ससीम बनाकर ही उसका विशिष्ट एव वज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता ह।

किसी भी विषय की सीमाए दो बातो से निर्धारित होती ह। एक तो उस विषय के अध्ययन का उद्देश्य और दूसरा, उस विषय के अध्ययन की पद्धति। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा के अध्ययन का उद्देश्य है भाषा की आतरिक रचना को समझना तथा उसे व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत करना। भाषाविज्ञान में भाषा के अध्ययन के लिए जिस पद्धति का अनुसरण किया जाता है उसकी प्रकृति वज्ञानिक ह। इस निश्चित उद्देश्य एव निश्चित पद्धति के कारण भाषा विज्ञान में भाषा की दो सीमाएँ निर्धारित की गइ ह। ये सीमाए ह—मानवीयता और कथ्यता। पहली सीमा के कारण भाषा विज्ञान में केवल मनुष्यो की भाषा का अध्ययन होता ह और दूसरी सीमा के कारण भाषा विज्ञान म विचार विनिमय की केवल उस पद्धति का भाषा माना जाता है जिसमें कथन की क्रिया हो। किसी क्रिया को 'कथन' तब कहा जाता ह जब उसमें उच्चारण-अवयवो द्वारा ध्वनियो का हेतु पूवक उच्चारण किया गया हो। अत उच्चरित ध्वनिया और इन ध्वनियों द्वारा अभिव्यक्त हेतु ही वे तत्त्व हैं जो किसी क्रिया को

कथन का स्वरूप प्रदान करते हैं ।

यहां दोनों सीमाओं के लिए शंकाएं उठाई जा सकती हैं । यह पूछा जा सकता है कि भाषा विज्ञान में केवल मनुष्यों की ही भाषा का अध्ययन क्यों किया जाता है, अन्य प्राणियों की भाषा का भी अध्ययन क्यों नहीं किया जाता ? यह भी प्रश्न उठ सकता है कि भाषाविज्ञान में विचार संचार के कथ्य रूप को ही भाषा क्यों माना जाता है ? विचार संचार की अन्य पद्धतियों (यथा हाथ, आंख,झंडियां, सीटियां, चित्र द्वारा विचार-संचार) को भाषा क्यों नहीं माना जाता ?

पहले प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि भाषा एक सामाजिक व्यवहार है । समाजशास्त्र के द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सही अर्थों में मनुष्य ही केवल सामाजिक प्राणी है । अतः सामाजिक व्यवहार के रूप में भाषा का व्यवहार मात्र मनुष्य ही कर सकता है । नवीन शोधों के द्वारा यह तथ्य भी प्रकट हो चुका है कि मनुष्य के सिवाय अन्य बहुत से प्राणियों में भाषा की शक्ति है ही नहीं । कुछ थोड़े से प्राणियों में वह शक्ति है अवश्य किंतु मनुष्य की भाषा शक्ति की तुलना में उनकी शक्ति इतनी सीमित है कि उसे सही अर्थों में भाषा नहीं माना जा सकता ।

एक बात और भी है । आधुनिक भाषा विज्ञान में भाषा का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति से किया जाता है । सुनिश्चितता (Precision), वैज्ञानिकता की पहली शर्त है । अपेक्षाकृत नवीन विज्ञान होने के कारण, सुनिश्चितता को बनाए रखने के लिए, आधुनिक भाषा विज्ञान ने अपने विषय क्षेत्र को मानवीय भाषा तक ही सीमित रखा है । नियमों के सुदृढ़ हो जाने के पश्चात यह संभव हो सकेगा कि भाषा विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को मनुष्येतर प्राणियों की वाणी तक विस्तृत किया जाय ।

दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि भाषा का वास्तविक रूप उसका कथ्य रूप ही है । विचार संचार की अन्य पद्धतियां भाषा के कथ्य रूप का ही रूपांतर हैं । इस कारण आधुनिक भाषा विज्ञान में भाषा के कथ्य रूप को ही भाषा का वास्तविक रूप स्वीकार किया गया है ।

इस प्रकार भाषा विचार संचार का वह मानवीय व्यापार है जो मूल रूप से कथ्य होता है । अन्य शब्दों में यों कहा जा सकता है कि भाषा मनुष्यों द्वारा उच्चरित उन ध्वनि संकेतों की व्यवस्था को कहते हैं जिनके द्वारा किसी विशेष समुदाय के लोग विचारात्मक स्तर पर परस्पर सम्पर्क स्थापित करते हैं ।

१ ४ भाषा के पक्ष एवं भाषा की संरचना

भाषा की परिभाषा में यह बताया जा चुका है कि भाषा एक व्यवस्था अथवा पद्धति है। प्रत्येक पद्धति का अपना एक ढांचा होता है, जिसे उसकी संरचना कहा जाता है। भाषा-व्यवस्था का भी एक निश्चित ढांचा है जिसे भाषा की संरचना कहा जाता है।

हम जानते हैं कि भाषा ध्वनियों की व्यवस्था है। ध्वनियों का परिज्ञान ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है, इस कारण ध्वनियों को स्थूल कहा जाएगा। ध्वनियों से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। ध्वनियों से अभिव्यक्त अर्थ अथवा भाव बौद्धिक अनुभूति का विषय है, ज्ञान इन्द्रियों द्वारा अर्थ का परिज्ञान नहीं किया जा सकता, इस कारण अर्थ को सूक्ष्म कहेंगे। स्थूल ध्वनियां भाषा को भौतिकता प्रदान करती हैं, अतः ध्वनियों को भाषा का भौतिक पक्ष कहा जाएगा। सूक्ष्म भाव भाषा को बौद्धिकता प्रदान करता है, इस कारण भाव अथवा अर्थ को भाषा का बौद्धिक पक्ष कहा जाएगा, अर्थात भाषा के दो पक्ष हैं—भौतिक पक्ष एवं बौद्धिक अथवा मानसिक पक्ष। प्रत्येक पक्ष की अपनी अलग संरचना है। भाषा की संरचना इन दोनों पक्षों की संरचनाओं का योग है।

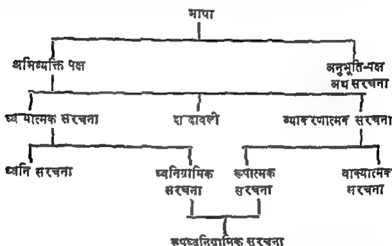
भाषा में ध्वनियों के माध्यम से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, अतः ध्वनियां भाषा का 'अभिव्यक्ति पक्ष' हैं। ध्वनियों द्वारा अभिव्यक्त अर्थ को 'अनुभूति पक्ष' कहा जा सकता है। इस प्रकार 'अभिव्यक्ति' एवं 'अनुभूति' की मिश्रित संरचना ही भाषा-संरचना कहलाती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यहां 'अभिव्यक्ति' एवं 'अनुभूति' शब्दों का वह अर्थ नहीं है जो अर्थ उनका साहित्य में है। यहां 'अभिव्यक्ति' से तात्पर्य ध्वन्यात्मकता से है और 'अनुभूति' का अर्थ ध्वनियों से प्रकट किसी भी प्रकार के आशय से है।

अभिव्यक्ति पक्ष का विश्लेषण करने पर यह बात विदित हो जाती है कि उसकी संरचना एक प्रकार की यौगिक संरचना है जो 'ध्वन्यात्मक संरचना' एवं 'व्याकरणात्मक संरचना' के योग से बनी है। 'ध्वन्यात्मक संरचना', 'ध्वनि-संरचना और ध्वनिग्रामिक संरचना' का मिश्रित रूप है। सुविधा के लिए व्याकरणात्मक संरचना को 'रूपात्मक संरचना' और 'वाक्यात्मक संरचना' में विभाजित किया जा सकता है। अभिव्यक्ति पक्ष में एक अन्य संरचना का योग भी दिखाई पड़ता है। यह संरचना, रूपात्मक एवं ध्वन्यात्मक संरचनाओं

के मध्य संपर्क स्थापित करती है इसे 'रूप ध्वनिग्रामिक संरचना' कहा जाता है। संपूर्ण अनुभूति पक्ष को 'अर्थ संरचना' का नाम दिया जाता है।

भाषा में एक अन्य घटक का भी प्रयोग होता है वह है शब्दावली। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि भाषा और शब्द दो भिन्न वस्तुएँ हैं। भाषा एक प्रकार का ढांचा अथवा व्यवस्था है, उस व्यवस्था के नियमानुसार शब्दों का प्रयोग होता है। इस प्रकार शब्द भाषाई नियमों के प्रयोग का साधन है।

निम्नांकित रेखा—चित्र में भाषा-संरचना को दर्शाया गया है।



ऊपर जिन संरचनाओं का उल्लेख किया गया है उनमें से कुछ संरचनाएं मुख्य तथा कुछ अमुख्य अथवा गौण हैं। आधुनिक भाषा विज्ञान ध्वनि-संरचना तथा अर्थ-संरचना को अमुख्य तथा शेष संरचनाओं (ध्वनिग्रामिक संरचना रूपात्मक और वाक्यात्मक संरचना) को मुख्य मानता है।

अर्थ-संरचना को अमुख्य मानने का कारण यह है कि अर्थ अर्थात् 'अनुभूति' केवल भाषा-विज्ञान के अध्ययन का ही विषय नहीं है। वह उन समस्त शास्त्रों के अध्ययन का विषय भी है जो मनुष्य के बौद्धिक अथवा मानसिक पक्ष का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार अनुभूति, दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि के अध्ययन का विषय है। फिर सूक्ष्म होने के कारण 'अनुभूति' का वैज्ञानिक अध्ययन कर पाना यदि असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन अवश्य है।

ध्वनि-संरचना को अमुख्य मानने का एक कारण यह है कि ध्वनि भी केवल

भाषा के अ तगत नही आती । भौतिक विज्ञान में ध्वनि का अध्ययन विश्लेषण होता ह । इसके अतिरिक्त मानव मुख अगणित ध्वनियो का उच्चारण कर सकता ह । यह आवश्यक नही ह कि वे समस्त ध्वनिया भाषाई दृष्टि से महत्वपूण हा ।

(भाषा विज्ञान के अध्याय में उपयुक्त सरचनाओं का अधिक विवेचन किया गया ह ।)

२ ५ भाषा के अग

भाषा एक व्यवस्था अथवा पद्धति ह । किसी भी व्यवस्था अथवा पद्धति का यह अनिवाय गुण होता है कि उसमें एक से अधिक अग होते हैं और वे परस्पर सबद्ध होकर किसी एक ही काय को सपन्न करते हा । भाषा व्यवस्था में भी एक से अधिक अग ह जो परस्पर सबद्ध होकर विचार-सचार का काय सपादित करते है ।

भाषा ध्वनियों की व्यवस्था ह । अत भाषा की लघुतम इकाइ ध्वनि है । किंतु काई भी ध्वनि भाषा का काय सपादित नहीं कर सकती, क्याकि अकेली ध्वनि निरथक हाती ह, उसके द्वारा किसी अथ की अभिव्यक्ति नही होती । इस कारण उससे विचार-सचार का काय हो नही सकता । उदाहरणाय हिंदा की 'प्', 'म', 'द्' आदि ध्वनिया स्वतत्र रूप से किसी प्रकार के भाव की अभि व्यक्ति नही करती ।

निरथक ध्वनिया ऐसे मान्य क्रम में आती ह (प्रत्येक भाषा के अपने मान्य क्रम हाते हैं) जिनमें अथवत्ता आ जाती ह । अन्य शब्दों में या कहा जा सकता ह कि ध्वनिया एसे महत्वपूण याग बनाती ह जिनसे अथ ध्वनित हाता ह । ध्वनिया के ऐसे महत्वपूण यागा को सामान्य रूप से 'शब्द' कहा जाता है । (या ये महत्वपूण योग रूप, धातु, पद आदि हो सकते है ।)

साथक ध्वनि योगा से अथ बोध तो होता ह किंतु विचार सचार नही हाता । इसका मुख्य कारण यह ह कि विचार एक अविच्छिन्न प्रक्रिया है । जब तक शब्दा में एक क्रमबद्धता उत्पन्न नही हो जाती तब तक विचार सचार नही हो सकता । शब्दा में क्रमबद्धता अर्थात सबध स्थापित करने के लिए शब्दों को मान्य क्रम में रखकर उनक शब्द-योग बनाए जात हैं जिन्हें सामान्य रूप स 'वाक्य' कहा जाता है । (या शब्द-योग वाक्याश आदि भी हो सकते

६ ।) शब्दों का महत्वपूर्ण भाग अर्थात् वाक्य बनाने के नियम प्रत्येक भाषा में भिन्न भिन्न होते हैं। वाक्य से ही पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है जो विचार प्रसार में सहायक होता है। वाक्य से ही विचार प्रसार होता है। अतः भाषा का कार्य वाक्य के स्तर पर ही सम्पादित होता है। इस प्रकार 'वाक्य ही सही अर्थों में भाषाई इकाई है। ध्वनि और वाक्य के मध्य रूप एवं 'शब्द' के स्थान हैं। इस प्रकार ध्वनि, रूप शब्द, वाक्य एवं अर्थ ये भाषा के चार अंग हैं जिनके सम्मिलित रूप का नाम भाषा' है।

१ ६ भाषा के तत्व

भाषा के अंगों एवं तत्वों के बीच अंतर करना सामान्य रूप से कठिन होता है। इसका कारण यह है कि भाषा के कुछ तत्व ऐसे भी हैं जो भाषा के अंग भी हैं। फिर भी भाषा के अंगों एवं तत्वों के बीच की भिन्नता को समझ लेना आवश्यक है। उदाहरणार्थ शरीर के अंग कहने से हाथ पाँव, आँख, कान आदि का बोध होता है किन्तु शरीर के तत्व कहने से रक्त मांस हड्डियों आदि उन पदार्थों पर ध्यान जाता है जिन से शरीर के समस्त अंगों की रचना हुई है। वैसे ही भाषा के तत्व अर्थात वह सामग्री जिससे भाषा के समस्त अंगों की रचना हुई है। भाषा के ये तत्व हैं ध्वन्यात्मकता (Sound Element) एव अर्थवत्ता (Meaning Element)। इन दोनों तत्वों के मिश्रण से भाषा के समस्त अंगों की रचना होती है। भाषा की लघुतम इकाई अर्थात छोटे-से छोटा अंग ध्वनि है। भाषा की वृहत्तम इकाई या बड़े से-बड़ा अंग वाक्य है। वाक्य को भाषा का लघुतम रूप भी कह सकते हैं। इन दोनों के मध्य रूप, शब्द, पद वाक्यांश आदि कई इकाइयाँ अथवा अंग हैं।

ध्वनि के अंग की रचना तो सीधे ध्वनि तत्व से ही होती है, भाषा के अन्य अंगों की रचना ध्वनि तत्व एवं अर्थ तत्व के मिलने से होती है। ध्वनि एवं अर्थ मिलकर रूप की रचना करते हैं। ध्वनि एवं अर्थ के योग से ही शब्द एवं पद बनते हैं। पद (सही अर्थों में पदों) के योग से वाक्य बनते हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि ध्वनि एवं अर्थ मिलकर भाषा के लघुतम रूप अर्थात वाक्य की रचना करते हैं। वाक्य को पदों, शब्दों, रूपों एवं ध्वनियों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार ध्वनितत्व एवं अर्थतत्व ही वे तत्व हैं जिनसे भाषा के समस्त अंगों का निर्माण होता है।

१ ७ भाषा की विशेषताए

भाषा को सीमाबद्ध करने एव उसकी सचारात्मक प्रकृति को समझने के पश्चात अब भाषा की मुख्य विशेषताओ का समझा जा सकता है।

भाषा की विशेषताओ को दो श्रेणिया में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी में भाषा की रचनागत विशेषताए आ जाती हैं एव दूसरी श्रेणी म उसकी प्रकृतिगत अथवा स्वभावगत विशेषताओ की गणना की जा सकती ह।

यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि रचना की विशेषताए स्वभाव की विशेषताओं से भिन्न होती है। उदाहरणाथ मनुष्य की रचनागत विशेषताओ म उसके शरीर की गठन का उल्लेख होगा, जिसमें मुख्य रूप से रक्त, अस्थिया, मासपेशियाँ आदि का वणन होगा किंतु उसकी स्वभावगत विशेषताओं में उसकी बौद्धिकता, सवदनशीलता, सामाजिकता, स्नेह, सहानुभूति आदि का कथन होगा। इसी प्रकार भाषा की रचनागत विशेषताओ में उन बातो का उल्लेख होता ह, जिनसे भाषा की गठन का समझा जा सकता ह और उसकी स्वभावगत विशेषताओं में उन बातो का वणन होता ह जिनसे उसकी प्रकृति एव व्यवहार को समझने में सुविधा होती ह।

१ ७ १ भाषा की रचनागत विशेषताए

(क) उच्चरित ध्वनिया

भाषा विचार सचार की ध्वन्यात्मक प्रणाली ह अर्थात इस प्रणाली में विचार-सचार ध्वनियो के माध्यम से होता ह। ये ध्वनिया अनिवाय रूप स उच्चरित होनी चाहिए। उच्चरित ध्वनियो से तात्पय ऐसी ध्वनियो से ह जो उच्चारण-अवयवो (मुख, जिह्वा आदि) के हेतुपूर्वक प्रयोग स उत्पन्न की जाती ह।

भाषा की इस विशेषता के कारण विचार-सचार की मूक क्रियाओ (यथा—हाथ, आँख, छड़ी आदि से सकेत करना) तथा अनुच्चरित ध्वनियो (यथा—चुटकी बजाने, दरवाजा खटखटाने आदि की ध्वनियो) का भाषा में समावेश नहीं किया जाता।

(ख) प्रतीकात्मकता

प्रतीक, उस चिह्न विशेष को कहते ह, जो ऐसे आशय को अभिव्यक्त करता ह जो आशय अनिवाय रूप से उसमें निहित न हो। उदाहरणाथ कमल को

पवित्रता का प्रतीक कहा जा सकता है किन्तु बर्फ को ठंडक का प्रतीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पवित्रता कमल का अनिवार्य गुण नहीं है जब कि ठंडक बर्फ का अनिवार्य गुण है। प्रतीक मूल नहीं होता, वह किसी अन्य पदार्थ (भाव आदि) के लिए प्रयुक्त होता है। प्रतीक में मूल पदार्थ का अनुभव कराने की शक्ति होनी है। प्रतीक पद्धति का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों के मध्य एक ऐसा आन्तरिक समझौता रहता है जिसके कारण एक व्यक्ति जिस आशय से किसी प्रतीक का प्रयोग करता है दूसरे व्यक्ति उस प्रतीक से वही आशय ग्रहण करते हैं।

भाषाई ध्वनियां, ध्वन्यात्मक प्रतीक (Vocal Symbols) हैं, जो अपने द्वारा किसी दूसरे आशय को अभिव्यक्त करते हैं।

यहां यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि वास्तविक आशय (वस्तु, भाव, इच्छा आदि) और उस आशय के लिए प्रयुक्त होनेवाला शब्द (ध्वनि समूह) ये दो भिन्न वस्तुएँ हैं। 'आशय' वास्तविक होता है किन्तु उस आशय के लिए प्रयुक्त शब्द उस आशय का कथन मात्र होता है। 'भूख' शब्द वास्तविक भूख नहीं है वह भूख का कथन मात्र है। उसमें यह शक्ति है कि वह 'भूख' आशय को अभिव्यक्त करता है। यही प्रतीक का गुण एवं कार्य होता है।

ध्वनि की इस प्रतीकात्मकता को ही ध्वनि की सार्थकता कहा जाता है। भाषाई ध्वनि तभी सार्थक कही जा सकती है, जब कि उसमें पार्थक्य (Aloofness) का गुण हो। पार्थक्य से तात्पर्य है ध्वनि का आशय की स्थिति से अनिवार्य संबंध न हो। उदाहरणार्थ भूख शब्द का भूख की वास्तविक स्थिति से कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि भूख शब्द का प्रयोग तभी किया जाय जब सचमुच भूख लगी हो। एक भिखारी मांगते समय जब कहता है कि 'मैं भूखा हूं' तब यह आवश्यक नहीं है कि वह उस समय भूखा हो ही। इस प्रकार 'भूख' आशय की स्थिति के अभाव में भी भूख ध्वनि से वही आशय ग्रहण किया जाता है।

भाषा की इस विशेषता के कारण ही खांसी (उद्देश्य हीन) जम्हाई आदि में उत्पन्न ध्वनियों को भाषा में नहीं गिना जाता। इन ध्वनियों में प्रतीकात्मकता नहीं होती क्योंकि ये ध्वनियां अपने से परे अन्य किसी आशय का अभिव्यक्त नहीं करती। ये ध्वनियां सही अर्थों में उच्चरित भी नहीं कही जा सकती क्योंकि इन ध्वनियों की अभिव्यक्ति उच्चारण अवयवों के हेतुपूर्वक प्रयोग से नहीं होती।

इस सदभ में 'चुबन' का विवेचन अनुचित न होगा।

कुछ भापा वैज्ञानिकों का विचार ह कि 'चुबन एक उच्चरित ध्वनि है तथा अय किसी भी भापाई ध्वनि से अधिक साथक ह, क्योकि इसका अथ तो विश्व का प्रत्येक यक्ति समझ लेता है। इन लोगो के विचार से इस ध्वनि को भापाई ध्वनि न मानने का कारण यह है कि आधुनिक भापा विज्ञान में इस ध्वनि का अ ययन विश्लेपण करने की कोई युक्ति नही ह।

आधुनिक भापाविज्ञान अपेक्षाकृत नवीन विज्ञान है, इस कारण वह पूणता का दावा तो नही कर सकता किंतु 'चुबन' को भापाई ध्वनि न मानने का कारण आधुनिक भापाविज्ञान की यूनता नही बल्कि स्वय 'चुबन' में भापाइ गुणो का यूनता है।

सबसे पहली बात तो यह ह कि 'चुबन' एक क्रिया ह, ध्वनि नही ह। यदि उसमें स किसी ध्वनि की अभिव्यक्ति होती ह (जो कि अनिवाय नही ह क्योकि बिना ध्वनि उत्पन्न किए भी चुबन हो सकता ह) तो वह उस क्रिया स उत्पन्न सहज ध्वनि है, हेतुपूवक उत्पन्न की गई ध्वनि नही ह। इस दष्टि से 'चुबन स उत्प न ध्वनि उस ध्वनि के ही समान ह, जो किसी को जोर से चाटा मारने पर उत्प न हो सकती ह।

भापाई ध्वनि की दूसरी विशेपता ह प्रतीकात्मकता। यह पहले ही बताया जा चुका है कि ध्वनि की प्रतीकात्मकता उसकी पथक्ता से ही सिद्ध होनी ह। 'चुबन' की ध्वनि में यह गुण भी नहीं है।

तथ्य यह ह कि चुबन क्रिया से चाहे जो भी आशय अभि यक्त होता हो, 'चुबन मे उत्पन्न ध्वनि स कोई आशय अभिव्यक्त नही हाता, फिर भी यदि किसी सुननेवाले को इस ध्वनि से किसी आशय (स्नेह आदि) की अनुभूति होती भी है तो उसमें पथकत्व का गुण नही ह। 'चुबन' से उत्पन ध्वनि का 'चुबन' क्रिया से अनिवाय सबध ह। 'चुबन' क्रिया के अभाव में या तो इस ध्वनि की अभि यक्ति नहीं हो सकती या फिर उससे स्नेह आदि आशय की अनुभूति नहीं होती। इस प्रकार इस ध्वनि में प्रतीकात्मकता नहीं ह, और इसलिए इस ध्वनि को साथक ध्वनि नही कहा जायगा। सही अर्थों में इसे मात्र ऊपर से सुनी हुई (Overheard) ध्वनि समझना चाहिए। वस्तुस्थिति यह है कि भावो (सुख, दुख आदि) की तीव्रता के कारण कुछ ध्वनियाँ अनायास (हेतुपूवक नही) ही प्रस्फुटित हो जाती ह। ये ध्वनियाँ सबद्ध क्रियाओं और भावो स अनिवाय रूप से जुडी रहती ह और उन क्रियाओं और भावों की स्थिति के अभाव में कोई अथ नही

देती । अतः इन ध्वनियों में प्रतीकात्मकता नहीं होती, इस कारण ऐसी ध्वनियों को भाषाई ध्वनियाँ नहीं कहा जायगा । 'चुंबन' से उत्पन्न ध्वनि को भी अधिक से अधिक चुम्बन क्रिया और स्नेह आदि भाव का अंग माना जा सकता है भाषाई ध्वनि नहीं और जब यह ध्वनि भाषाई नहीं है तब भाषा विज्ञान में उसके अध्ययन का प्रश्न ही नहीं उठता ।

(ग) ऐच्छिकता

पूर्व परिच्छेद में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि प्रत्येक भाषाई ध्वनि एक प्रकार का प्रतीक है जो किसी विशेष आशय (पदार्थ भाव इच्छा आदि) के लिए प्रयुक्त होती है । अब प्रश्न यह है कि एक ध्वनि प्रतीक एवं उसके आशय में जो संबंध है वह किस प्रकार का है ? ऐच्छिकता इस प्रश्न का उत्तर देता है ।

ऐच्छिकता (Arbitrariness) से तात्पर्य है कि ध्वनि प्रतीक (मोटे रूप में शब्द) एवं तत्संबंधी आशय में कोई तात्विक अथवा तार्किक संबंध नहीं है । अर्थात् ध्वनि प्रतीक ऐच्छिक (Arbitrary) है । उदाहरणार्थ एक प्राणी विशेष है जिसे हिंदी भाषा में 'घोड़ा' शब्द (ध्वनि प्रतीक) से अभिव्यक्त किया जाता है । उस वास्तविक प्राणी एवं 'घोड़ा' शब्द में कोई सहजात अथवा तार्किक संबंध नहीं है, अर्थात् यह अनिवार्य नहीं है कि इस प्राणी के लिए केवल इस शब्द विशेष का ही प्रयोग हो । अन्य किसी भी शब्द का इस प्राणी के लिए प्रयोग किया जा सकता था । यह मात्र एक ऐतिहासिक घटना है कि एक विशेष समुदाय के व्यक्ति इस प्राणी विशेष के लिए इस शब्द विशेष का प्रयोग करते हैं । यदि ध्वनि प्रतीक (शब्द) एवं उससे अभिव्यक्त आशय (पदार्थ) में कोई सहजात अथवा तार्किक संबंध होता तो प्रत्येक पदार्थ के लिए सब भाषाओं में समान ध्वनिप्रतीक अर्थात् शब्द का प्रयोग होता किन्तु ऐसा है नहीं । हम जानते हैं कि एक ही पदार्थ को विभिन्न भाषाओं में विभिन्न शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है । *उदाहरणार्थ जिस प्राणी को हिन्दी में 'घोड़ा' कहा जाता है उसी को अंग्रेजी* में हॉर्स संस्कृत में अश्व कहा जाता है ।

ध्वनि प्रतीक एवं उससे संबद्ध आशय का संबंध रूढ़ अथवा परंपरागत (Traditional) होता है । किसी विशेष ध्वनि प्रतीक (शब्द) से एक विशेष अर्थ ग्रहण करने की परंपरा चल पड़ती है और इस प्रकार उसका अर्थ रूढ़ हो जाता है ।

कुछ लोग अनुकरणात्मक शब्दों (यथा—'काँ काँ' ध्वनि के अनुकरण पर 'कागा' शब्द का निर्माण), शिशु शब्दों (यथा—मा मा, पा पा आदि)

तथा भावाभिव्यजक शब्दों (यथा—आह, ओह आदि) के आधार पर शब्दो की ऐच्छिकता के प्रति शका प्रकट करते हैं। उन लोगों के कथनानुसार ऐसे शब्दों में ध्वनि प्रतीक एव उनसे अभिव्यक्त आशय में एक प्रकार का सहजात सबध होता है।

तथ्य यह है कि इस प्रकार की शका प्राचीन भाषावैज्ञानिकों द्वारा कभी उठाई गई थी किन्तु आज यह शका ऐसी निराधार समझी जाती है कि कोई भाषावैज्ञानिक, इसे उठाने का विचार नही करता। कारण यह है कि स्वय ऐसे शब्द किसी भी भाषा में इतने थोडे हैं कि उन थोडे से शब्दो के आधार पर भाषा की इस मूलभूत विशेषता को नकारा नही जा सकता। दूसरी बात यह है कि स्वय ऐसे शब्दो में ध्वनि आशय का सबध सहजात न होकर आकस्मिक है। यदि यह सबध सहजात अथवा तार्किक होता तो फिर ससार की सब भाषाओं में कम से कम ये शब्द समान होते किन्तु ऐसा नही है। कौवे तो हर स्थान पर 'का का' करते होंगे लेकिन ससार की सभी भाषाओं में उसे 'कागा' नही कहा जाता। अत ध्वनि प्रतीकों की ऐच्छिकता निर्विवाद है।

जब ध्वनि प्रतीक एव आशय के बीच में कोई तार्किक अथवा सहजात सबध होता ही नही है तब इस भ्रम के लिए कोई स्थान ही नही रह जाता कि अमुक आशय के लिए अमुक ध्वनि प्रतीक (शब्द) उचित है और अमुक उचित नही है।

भाषा की इस विशेषता के कारण ही ससार में अनेक भाषाएं है। यदि प्रतीकों में ऐच्छिकता का गुण न होता—अर्थात एक विशेष आशय एक ही विशेष ध्वनि प्रतीक से अभिव्यक्त होता—तो ससार में मात्र एक ही भाषा होती, किन्तु ससार में एक नही अनेक भाषाएं है।

(घ) क्रमबद्धता

भाषा का कार्य है विचार-विनिमय और उस विचार विनिमय का भौतिक माध्यम है ध्वनिया। ध्वनियों में विचार अभिव्यक्त करने या विचार ग्रहण कराने का सामर्थ्य होता है। ध्वनियों के इसी गुण को ध्वनियों की सार्थकता कहा जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि यह विचार अभिव्यक्त करने की शक्ति 'ध्वनियों' में है, 'ध्वनि' में नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी भाषाई ध्वनि अपने आप में सार्थक नहीं होती, ध्वनियों के समूह अथवा योग (जिन्हें मोटे रूप से शब्द कहा जाता है) ही सार्थक होते हैं। जब एक या

एक से अधिक ध्वनियाँ 'विशिष्ट योग' (Significant Combination) अथवा 'समष्टि' बनाती हैं तभी उनसे विचार अथवा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरणार्थ हिन्दी की 'ई' ध्वनि का कोई अर्थ नहीं है वैसे ही हिन्दी का 'न' ध्वनि भी निरर्थक ही है किन्तु इनका योग 'ईन' से एक विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक स्वतन्त्र ध्वनि भी सार्थक होता है, यथा हिन्दी की 'आ' ध्वनि जिसका अर्थ है 'आओ'। ऐसी स्थिति में एक स्वतन्त्र ध्वनि, ध्वनि योग का-सा कार्य करती है। प्रश्न यह है कि 'निरर्थक' ध्वनियों के योग में सार्थकता कहाँ से आती है ? इस सार्थकता का कारण है उनका एक विशेष क्रम से आना। यह 'विशिष्ट क्रमबद्धता (Particular Order) ही उनमें सार्थकता का गुण उत्पन्न कर उन्हें प्रतीक बनाती है। उदाहरणार्थ 'ई' और 'न' ध्वनियों के योग में तभी सार्थकता उत्पन्न हुई है जब 'ई' के पश्चात् 'न' ध्वनि आयी है। यदि इन ध्वनियों का क्रम बदल दिया जाय अर्थात् 'नई' * कर दिया जाय तो यह योग हिन्दी भाषा में ऐसा ही निरर्थक समझा जायगा जैसा कि 'ई' और 'न' को स्वतन्त्र ध्वनियाँ में समझा जाता है।

यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से ध्यान में रखनी चाहिए कि ध्वनियों की क्रमबद्धता के संबंध में प्रत्येक भाषा के अपने नियम होते हैं। एक भाषा में जो क्रम मान्य है वह दूसरी भाषा में अमान्य हो सकता है। उदाहरणार्थ हिन्दी में 'क' एवं 'ल' का योग 'कल' तो मान्य है किन्तु इसका विपरीत योग 'लक' मान्य नहीं है, जब कि यह योग अंग्रेजी में मान्य है एवं उसका अर्थ है 'भाग्य (Luck)।

भाषा की इस विशेषता के कारण ही क्रम रहित अथवा अमान्य क्रम से प्रयुक्त ध्वनियाँ भाषा का रूप नहीं धारण करतीं।

इससे पूर्व के परिच्छेदों में ध्वनियों की जिस प्रतीकात्मकता तथा ऐच्छिकता का वर्णन किया गया है, वे गुण विशिष्ट ध्वनि-योगों के हैं किसी स्वतन्त्र ध्वनि के नहीं।

(इ) व्यवस्था

एक कार्य में संलग्न विभिन्न अंगों के पारस्परिक संबंध को ही व्यवस्था (System) कहा जाता है। इस प्रकार किसी भी व्यवस्था में एक से अधिक अंग होते हैं एवं उनका एक दूसरे से निश्चित संबंध रहता है।

---

* इससे चिह्नित शब्द काल्पनिक है, वास्तविक नहीं।

इस दृष्टि से भाषा एक व्यवस्था है। भाषा व्यवस्था के विभिन्न अग हैं—ध्वनिया, शब्द, वाक्य अर्थ, और इन विभिन्न अगों का एक दूसरे से सुनिश्चित एव नियमित सबध ह।

भाषा की व्यवस्था के दो स्पष्ट प्रमाण ह। एक तो यह कि भाषा यदि व्यवस्थित न होती तो उसका एक से अधिक व्यक्तियो द्वारा प्रयोग सभव न होता। दूसरा, यदि भाषा में व्यवस्था न होती तो भाषा का वज्ञानिक पद्धति से अध्ययन सभव न होता। भाषा की निश्चित व्यवस्था ने ही भाषा का मशीनी अध्ययन (विभिन्न यत्रो की सहायता से किया जाने वाला अध्ययन) सभव बनाया ह। यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक भाषा की अपनी निजी व्यवस्था होती ह जो दूसरी भाषा की व्यवस्था से भिन्न होती ह।

(च) सपर्क

भाषा एक प्रकार की विचार-सचार प्रणाली है। इसके द्वारा एक समुदाय के व्यक्ति एक दूसरे से सपर्क स्थापित करते हैं। यहाँ सपर्क से तात्पय ह कि एक भाषा समुदाय का व्यक्ति जो 'आशय' 'अभिव्यक्त' करता ह, उस समुदाय का दूसरा कोई भी व्यक्ति उस आशय को ग्रहण कर सकता ह।

साकेतिक प्रणाली की यह एक अनिवाय विशेषता होती ह कि उस प्रणाली का प्रयोग केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो उस प्रणाली के सकेतो के अथ को ग्रहण कर सकते हो। उदाहरणाथ स्काउट झडियो की एक साकेतिक प्रणाली का प्रयोग कर एक दूसरे का सदेश भेजते ह। अब इस प्रणाली का प्रयोग केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो झडियो के उन सकेतों के अथ को जानते हो। यही बात भाषा की है। एक भाषा का प्रयोग एक विशेष मनुष्य समुदाय ही कर पाता ह दूसरा नही। इसी से विभिन्न समुदायों की विभिन्न भाषाए होती ह और प्रत्यक भाषा दूसरी भाषा से भिन्न होती हैं।

१ ७ २ भाषा की स्वभावगत विशेषताए

(क) अर्जित व्यवहार

'भाषा की परिभाषा' का विवेचन करते हुए यह बात स्पष्ट कर दी गई ह कि भाषा एक प्रकार का मानवीय व्यवहार है।

मनुष्यो के समस्त व्यवहारों को दो श्रेणियो में विभाजित किया जा सकता ह। एक श्रेणी में उसके वे व्यवहार आते हं जिनके सपादन में उसके प्राकृतिक ज्ञान का प्रभाव रहता ह। इन व्यवहारो को सीखने की आवश्यकता नही

पड़ती। हाँ, यदि उन व्यवहारों की शिक्षा दी जाती है तो कम समय में एवं अधिक सुचारु ढंग से उनका सपादन किया जा सकता है। खाना खाने, चलने, बैठने, रोने गाने चिल्लाने आदि के व्यवहार इसके उदाहरण हैं। इन व्यवहारों को 'प्राकृतिक' अथवा 'प्रवृत्यात्मक व्यवहार' (Instinctive Behaviour) कहा जाता है। ये व्यवहार प्राय समस्त प्राणियों में समान होते हैं। इस कारण ऐसे व्यवहारों को 'प्राणी-व्यवहार' (Animal Behaviour) भी कहा जाता है।

मनुष्य के दूसरे व्यवहार ऐसे हैं जिन्हें सीखना पड़ता है बिना सीखे उन व्यवहारों का सपादन नहीं हो सकता। इस कारण इन व्यवहारों को अर्जित व्यवहार (Learned or Acquired Behaviour) कहा जाता है। उदाहरणार्थ बाजा बजाना मनुष्य को तभी आ सकता है जब वह उसे सीख ले। साधारणत मनुष्य के इन विशिष्ट व्यवहारों को ही मानवीय व्यवहार (Human Behaviour) की सज्ञा दी जाती है।

भाषा की गणना दूसरे प्रकार के व्यवहारों में की जाती है अर्थात भाषा मनुष्य द्वारा सपादित ऐसा व्यवहार है जो अर्जित अथवा सीखा हुआ है।

एक समय था जब ऐसा सोचा जाता था कि भाषा प्राकृतिक है। जिस प्रकृति ने मुख, जिह्वा आदि उच्चारण अवयव दिए हैं उसी ने उन अवयवों का प्रयोग करना भी सिखा दिया है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए इस प्रकार से सोचने वाले, यह तर्क दिया करते थे कि मनुष्येतर प्राणी बिना सिखाए ही बोल लेते हैं तब मनुष्य—जो सब प्राणियों में श्रेष्ठ है—को ही भाषा सीखने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी? ऐसे लोग यह भी कहते थे कि बालक को कोई भाषा नहीं सिखाता फिर भी बालक भाषा बोलने लगता है अर्थात भाषा प्राकृतिक है।

अब इस प्रकार से सोचना हास्यास्पद सा लगता है। आधुनिक भाषा विज्ञान के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो गई है कि मुख जिह्वा आदि तथाकथित उच्चारण अवयवों का प्रथम (Primary) एवं अनिवार्य कार्य उच्चारण करना नहीं है। यह उनका गौण (Secondary) एवं वैकल्पिक (Obtional) कार्य है। मनुष्य ने अपने शरीर के अनेक अंगों को ऐसे कई कार्य सिखा लिए हैं जो उनके प्रथम अर्थात मुख्य कार्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ पैरों को नृत्य करने का एवं हाथों को बाजा बजाने का कार्य मनुष्य ने सिखाया है। पर इन अंगों के ये प्रथम कार्य नहीं हैं। वैसे ही मुख का मुख्य कार्य भोज्य पदार्थ को चबाना है जिह्वा इस कार्य में उसकी सहायता करती है। उच्चारण क्रिया, इन

अवयवों की वैकल्पिक एवं अर्जित क्रिया है। यह कार्य मनुष्य ने इन अवयवों को सौंपा है, प्रकृति ने नहीं। वास्तविकता यह है कि प्रकृति ने मनुष्य को उच्चारण अवयव नहीं दिए हैं। मनुष्य ने कुछ अंगों को (जो अंग यह काम कर सकते थे) उच्चारण का कार्य सिखा दिया और वे अंग 'उच्चारण अवयव' कहलाने लगे।

यह बात उतनी तर्कपूर्ण है नहीं जितनी तर्कपूर्ण लगती है कि जब अन्य प्राणी बिना सिखाए ही बोल लेते हैं तब मनुष्य बिना सिखाए क्यों नहीं बोल पाएगा ?

वास्तव में मनुष्य की श्रेष्ठता इस बात पर आधारित नहीं है कि वह अन्य प्राणियों के सब व्यवहार कर पाता है अथवा नहीं। घोड़े और गाय का बच्चा बिना सिखाए ही तैर सकता है किंतु बिना सीखे बच्चा तो क्या वयस्क एवं प्रौढ़ मनुष्य भी नहीं तैर सकता। बिना सीखे तैर न सकने की यह अयोग्यता मनुष्य को गाय और घोड़े से हीन सिद्ध नहीं करती। प्राणी होने के बावजूद भी मनुष्य एक भिन्न जाति का प्राणी है इसलिए यह स्वाभाविक एवं संभव है कि वह ऐसे कई व्यवहार न कर सके जो अन्य प्राणी कर सकते हैं। सर्वश्रेष्ठ उपाधिधारी यह जीव न तो चिड़िया के समान उड़ पाता है और न ही बत्तख के समान पानी के ऊपर तैर सकता है।

यह सोचना भी सही नहीं है कि समस्त प्राणी 'भाषा' बोलते हैं। यह सत्य है कि प्रत्येक प्राणी 'कुछ' बोलता है—बोल सकता है—किंतु हर प्राणी का वह 'कुछ' भाषा नहीं है। भाषा की जो रचनागत विशेषताएं हैं वे मनुष्येतर प्राणियों की बोली में प्रायः नहीं मिलती। अतः समस्त प्राणियों में वाणी की शक्ति तो है किंतु भाषा की शक्ति मनुष्य में है।

यहां 'व्यवहार' और 'व्यवहार की शक्ति' के अंतर को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। पग उठाने की तथा कूदने की शक्ति मनुष्य में प्राकृतिक है किंतु नृत्य (जो पग उठाने की एक व्यवस्था है) एक अर्जित व्यवहार है। मनुष्य अपने प्राकृतिक ज्ञान से पग उठा सकता है, कूद सकता है किंतु बिना सीखे वह नृत्य नहीं कर सकता। अतः यह कहा जा सकता है कि नृत्य (पग उठाने) की शक्ति मनुष्य में प्राकृतिक है किंतु (नृत्य पग उठाने की व्यवस्था) एक अर्जित व्यवहार है। इसी प्रकार बोलने अथवा वाणी की शक्ति तो प्राकृतिक है किंतु भाषा, जो उस शक्ति द्वारा संपादित क्रिया है एक अर्जित व्यवहार है।

रहा प्रश्न बालकों के बिना सीखे बोलने का। इस संबंध में किए गए अनेक

प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि बालक भी सीखने से पश्चात् ही बोलता है। हां, उसका यह सीखना चेतना पूर्वक (Consciously) नहीं होता।

संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि भाषा प्रकृति प्रदत्त अथवा जन्मजात वस्तु नहीं है, वह समाज में रहकर सीखी एवं प्राप्त की हुई वस्तु है।

(ख) अनुकृत व्यवहार

पूर्व परिच्छेद में यह बताया जा चुका है कि भाषा एक अर्जित व्यवहार है। मनुष्य इस व्यवहार को दूसरों से सीखता है।

किसी व्यवहार को सीखने की अनेक विधियां हैं। अनुकरण की विधि उनमें से एक है। इस विधि में 'किस प्रकार से व्यवहार करें' की समस्या नहीं रहती समस्या रहती है 'कैसे उन जैसा व्यवहार करें'। इस विधि में दूसरों के व्यवहार को ज्यों का त्यों करने का प्रयत्न किया जाता है, इस कारण इस विधि को अनुकरण की विधि कहते हैं। अनुकरण से किए गए व्यवहार को 'अनुकृत व्यवहार' अनुकरण करने वाले को अनुकारक (अनुकरणकर्ता) एवं जिसका अनुकरण किया जाए उसे अनुकरणात्मक कहा जाएगा।

अनुकरण दो प्रकार से किया जा सकता है। एक सायास (Consciously) और दूसरा अनायास (Unconciously)। सायास अनुकरण वह है जिसमें अनुकारक इच्छापूर्वक अनुकरणात्मक के व्यवहार की पुनरावृत्ति करता है। यथा, किसी एक व्यक्ति को चित्र बनाता हुआ देखकर दूसरा व्यक्ति वैसा ही चित्र बनाने का प्रयत्न करे। इस प्रकार के अनुकरण में अनुकारक को ज्ञान रहता है कि वह अनुकरण कर रहा है। अनायास अनुकरण वह है जिसमें अनुकारक को प्रत्यक्षरूप से यह अनुभव नहीं होता कि वह किसी के व्यवहार का अनुकरण कर रहा है। उदाहरणार्थ—बालक को यह अनुभव ही नहीं होता कि उसकी लिखावट का रूप गुरुजी की लिखावट के समान होता जा रहा है।

भाषा अनुकृत व्यवहार है। यह अनुकरण से सीखी जाती है। बालक के आसपास लोग भाषा बोलते हैं। कभी-कभी वे बालक से भी बोलते हैं। बालक उनके इस व्यवहार को देखता निरखता रहता है एवं वैसा ही व्यवहार करने (भाषा बोलने) का प्रयत्न करता रहता है। एक समय ऐसा आता है जब उसे अपने प्रयत्न में पूर्ण सफलता मिलती है। अर्थात वह उस भाषा को बोलने लगता है। अनुकरण से सीखने का सबसे सुन्दर उदाहरण है प्रत्येक भाषा की 'शिशु शब्दावली' (Nursery words)। ये शब्द प्रायः माता पिता, भाई आदि निकट संबंधियों को सूचित करते हैं। ऐसे शब्दों का विश्लेषण करने से यह

ज्ञान हुआ है कि ऐसे शब्दों में प्राय ओष्ठ्य व्यंजन ध्वनियों (प, ब, म) तथा दन्त्य ध्वनियाँ (त, द, न) का उदासीन स्वरों (अ आ, जिन स्वरों में होठों को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता) के साथ प्रयोग हुआ है। यथा, अंग्रेजी के शब्द पापा (Papa), मामा (Mamma), संस्कृत—माता पिता, भ्राता, जर्मन—मही, फारसी—मादर, अल्बानियन—अम, हिब्रू—एम, हिन्दी—बाबा, दादा, नाना तुर्की—बाबा इटालियन—बबो, बास्क—अम आदि।

एसे शब्दों के संबंध में भाषा वैज्ञानिकों का विचार है कि बच्चा माता, पिता आदि निकट रहने वाले लोगों को बोलते समय होंठ हिलाते हुए देखता है। उनकी इस क्रिया का अनुकरण करता हुआ वह होंठ हिलाने का प्रयत्न करता है। फलस्वरूप इन शब्दों का अनायास निर्माण हो जाता है। वास्तव में बच्चे के लिए इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता, बच्चे के निकट संबंधी उन शब्दों को अपने से संबंधित कर लेते हैं और अनुमान करने लगते हैं कि बच्चा उन्हें संबोधित करते हुए इन शब्दों का उच्चारण कर रहा है।

कुछ भाषावैज्ञानिकों का यह कहना सही नहीं है कि मातृभाषा अनुकरण से सीखी जाती है एवं अन्य भाषाएं बौद्धिक प्रयत्न से। वास्तव में समस्त भाषाओं के सीखने की प्रक्रिया समान होती है। मातृ भाषा हो अथवा इतर भाषा (Other Language), सीखी वह अनुकरण से ही जाती है। दोनों के सीखने में अंतर केवल इतना ही है कि मातृभाषा अनायास अनुकरण से एवं अन्य भाषाएं सायास अनुकरण से सीखी जाती हैं। मातृ भाषा बोलते समय—सीखते समय—बालक को यह ज्ञान नहीं रहता कि वह दूसरों के समान बोलने का प्रयत्न कर रहा है किंतु अन्य भाषा सीखते समय, सीखने वाले को यह ध्यान रहता है कि 'इस प्रकार से बोलना है'।

भाषा की इस विशेषता से अपरिचित होने (अथवा उसकी उपेक्षा करने) के कारण हम जब मातृभाषा के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा सीखते हैं तब संबंधित भाषा भाषियों के बोलने का अनुकरण करने की अपेक्षा उस भाषा की व्याकरणात्मक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसका अनिवार्य परिणाम यह निकलता है कि व्याकरणात्मक नियमों के पर्याप्त ज्ञान होने के बावजूद हम संबंधित भाषा का ऐसा प्रयोग करते हैं जो संबंधित भाषा भाषियों को बड़ा ही विचित्र लगता है। कभी कभी तो वे ऐसा भी अनुभव करने लगते हैं कि हम उनकी भाषा ही नहीं बोल रहे हैं। इस संदर्भ में अंग्रेजी का उदाहरण दिया जा सकता है। दिल्ली विश्वविद्यालय में हुई एक विचार गोष्ठी में बोलते हुए एडिनबरा यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डेविड ऐबक्रोम्बिए ने कहा "भारत में बोली

जाने वाली अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत बोधगम्य नहीं है" ।* इसका तात्पर्य यह है कि भारतवासी ऐसी अंग्रेजी बोलते हैं जो अंग्रेजी भाषा भाषियों की समझ में ही नहीं आती। कहना न होगा कि इसका मुख्य कारण अनुकरण की कमी ही है।

इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते कि भाषा एक अनुकृत व्यवहार है। मातृ भाषा हो अथवा इतर भाषा दोनों का सीखना अनुकरण से ही होता है।

(ग) सामाजिक व्यवहार एवं सामाजिक संस्था

भाषा एक सीखा हुआ व्यवहार है। यह व्यवहार समाज में रहकर सीखा जाता है तथा समाज में रहकर किया जाता है। समाज के अभाव में भाषा का अस्तित्व संभव नहीं है। भाषा के लिए समाज की इस अनिवार्यता के कारण ही भाषा को सामाजिक व्यवहार कहा जाता है।

भाषा न केवल एक सामाजिक व्यवहार है अपितु वह एक सामाजिक संस्था (Social Institute) भी है। सामाजिक संस्था उस सामाजिक व्यवस्था को कहते हैं जिसकी निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

सामाजिक संस्था अमूर्त होती है। उसकी प्रकृति स्थाई होती है सामाजिक संस्था का निर्माण नहीं होता, उसका मात्र विकास होता है प्रत्येक सामाजिक संस्था का एक निश्चित ढांचा होता है तथा उसकी सदस्यता ऐच्छिक नहीं होती।

उपरोक्त समस्त लक्षण भाषा में विद्यमान हैं। भाषा अमूर्त एवं स्थायी होती है। अर्थात न तो भाषा को प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है और न ही ऐसी समाज की कल्पना की जा सकती है जो 'भाषाविहीन' हो। स्वाभाविक भाषा का निर्माण नहीं उसका मात्र विकास ही होता है। प्रत्येक भाषा का एक अपना ढांचा होता है तथा एक भाषा समुदाय के प्रत्येक सदस्य को अनिवार्य रूप से संबंधित भाषा का प्रयोग करना पड़ता है।

कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा को सामाजिक कहने के साथ-साथ उसकी असामाजिक अथवा व्यक्तिपरक स्थिति का भी वर्णन किया है। एक के कथनानुसार जब व्यक्ति अकेले में सोचता है तब वहां समाज का अस्तित्व नहीं रहता।

* 'English Spoken in India was not very intelligible internationally '

(Prof, David Abercrombie)

From Hindustan Times of India 18 2 69

दूसरे ने भाषा के व्यक्तिपरक व्यवहारों में बच्चे का निरर्थक जल्पना, व्यक्ति का एकान्त में गाना, सोचते समय बोलना, गणना करते समय संख्याओं को जोर-जोर से कहना, इंजीनीयर का नक्शा देखकर मकान की रचना के संबंध में अपने से ही बात करना आदि व्यवहारों का उल्लेख किया है। इस लेखक ने 'व्यक्ति का व्यक्ति से' व्यवहार को भी 'व्यक्ति का समाज से' व्यवहार से भिन्न माना है।

उपरोक्त उदाहरणों का विश्लेषण करना जरूरी है, जिससे पता चल सके कि भाषा सामाजिक के साथ साथ 'असामाजिक' अथवा व्यक्तिपरक भी है अथवा नहीं।

यह बात सत्य है कि भाव और भाषा का आपस में घनिष्ठ संबंध है फिर भी भाव एवं भाषा दो भिन्न वस्तुएं हैं। भाषा का अस्तित्व तभी संभव बनता है जब भाव ध्वनियों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। जब कोई व्यक्ति (स्वस्थ एवं साधारण) अकेला बैठा सोचता है तब वह ध्वनियों का उच्चारण नहीं करता। ध्वनियों के अभाव में भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती और जब भाषा है ही नहीं तब उसकी असामाजिकता—सामाजिकता का प्रश्न ही कहां उठता है?

अन्य उदाहरणों की चर्चा करने से पूर्व यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भाषा में संपर्क स्थापित करने की क्षमता होती है, विचार विनिमय उसका अनिवार्य कार्य नहीं है। एक वक्ता जब भाषण करता है तब श्रोता मात्र बैठे सुनते हैं। इस स्थिति में वक्ता एवं श्रोताओं के मध्य मात्र संपर्क स्थापित होता है। किसी प्रकार का विचार विनिमय नहीं होता।

ऊपर कहा गया है कि भाषा में संपर्क स्थापित करने की शक्ति होती है। इससे तात्पर्य यह है कि भाषा से संपर्क स्थापित हो सकता है अर्थात् ऐसा व्यवहार जिससे कोई तात्कालिक एवं प्रत्यक्ष संपर्क न भी स्थापित होता हो लेकिन जिस व्यवहार में संपर्क स्थापित करने की क्षमता है उस व्यवहार को भाषा ही कहा जायगा। यहां 'संपर्क' का अर्थ एक से अधिक व्यक्तियों के मध्य 'बौद्धिक संबंध' से है, और 'एक से अधिक संबंधित व्यक्ति' समाज कहलाते हैं। अतः संपर्क सदैव सामाजिक स्थिति का द्योतक है।

अब तथाकथित असामाजिक स्थितियों को लीजिए।

बच्चा यदि निरर्थक ध्वनियां (अर्थात् ध्वनि समूह) का उच्चारण करता रहता है तो यह स्थिति असामाजिक नहीं, अभाषाई है। (जल्पना या

साधारण अर्थ निरर्थक बकना ही होता है।) यदि वह सार्थक ध्वनि समूहों (शब्द, वाक्य आदि) का उच्चारण करता रहता है तो भाषा के रूप में उसका यह व्यवहार भी सामाजिक है क्योंकि यदि कोई बच्चे के उस जल्पने को सुनेगा तो वह बच्चे द्वारा उच्चरित ध्वनि समूहों से अर्थ ग्रहण कर लेगा, और ऐसी स्थिति में बच्चे एवं उस श्रोता के मध्य एक बौद्धिक संबंध स्थापित हो जायेगा। यही नियम गणना करते समय अथवा सोचते समय बोलने तथा एकांत में गाने पर लागू होता है। एक उदाहरण से इस बात को अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। एक गायक साउण्ड स्टूडियो में ग्रामोफोन रिकार्ड भरवाने के लिए एक गीत गाता है। जिस समय वह गीत गाता है उस समय उसका गीत कोई नहीं सुनता (अपवाद, स्टूडियो ओपरेटर), किंतु इससे उसका यह भाषाई व्यवहार (गीत गाना) असामाजिक अथवा व्यक्तिगत नहीं बन जाता। बात यह है कि गीत गाते समय चाहे गायक का किसी से संपर्क स्थापित नहीं होता, उसके गीत में संपर्क की शक्ति निहित है। जहां कहीं और जब कभी, वह रिकार्ड बजाया जायगा श्रोता (जो उस भाषा को जानते हैं) उसके अर्थ का ग्रहण कर लेंगे और तब गायक और श्रोता के मध्य संपर्क स्थापित हो जायगा। अतः एकान्त में गाया हुआ गीत अथवा स्वगत कथन व्यक्तिगत नहीं वरन् सामाजिक है। फिर 'व्यक्ति का व्यक्ति से व्यवहार तो निःसंदेह सामाजिक है। व्यक्ति जब व्यक्ति से व्यवहार करता है तब उस स्थिति में एक से अधिक व्यक्ति (दो) हो गए। ज्योंही एक से अधिक व्यक्ति (परस्पर संबंध रखने वाले) हुए त्योंही समाज का निर्माण हुआ। दो व्यक्ति भी समाज का निर्माण करते हैं। पति-पत्नी (जिनका संतान न हो) दो ही व्यक्ति हैं, किंतु उनके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि उनका संबंध असामाजिक अथवा व्यक्ति का व्यक्ति से संबंध है।

इस प्रकार कथन का वह प्रत्येक क्रिया भाषा के क्षेत्र में आ जाती है जिसमें संपर्क स्थापित करने की शक्ति है और क्योंकि संपर्क सदैव सामाजिक स्थिति का परिचायक है इस कारण प्रत्येक भाषाई व्यवहार सामाजिक व्यवहार है।

(घ) अवैयक्तिकता

भाषा अवैयक्तिक है अर्थात् न तो कोई एक व्यक्ति भाषा का निर्माण कर सकता है और न हो उसका विनाश। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि व्यक्ति भाषा का निर्माण नहीं करता इसलिए प्रकृति उसका निर्माण करती है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भाषा प्रकृति प्रदत्त नहीं है, मनुष्य भाषा को अर्जित करता है—सीखता है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही एक सांस्कृतिक परंपरा प्राप्त होती है। भाषा सांस्कृतिक परंपरा का अंग है। अतः भाषा मनुष्य को परंपरा के रूप में प्राप्त होती है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि 'वंश परंपरा' एवं 'सांस्कृतिक परंपरा' दो भिन्न बातें हैं। वंश परंपरा से जो चीजें प्राप्त होती हैं, उनके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जैसे वंश परंपरा के शरीर की रचना, रंग आदि प्राप्त होते हैं। इसके विपरीत सांस्कृतिक परंपरा से मिलने वाली वस्तुओं के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। ये अर्जित करनी पड़ती—सीखनी पड़ती है। भाषा, वंश-परंपरा से मिलने वाली वस्तु नहीं है, यह सांस्कृतिक परंपरा से मिलने वाली वस्तु है।

(ङ) अनिवार्यता एवं व्यापकता

भाषा परंपरागत होने के कारण अनिवार्य है अर्थात यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं है कि वह भाषा ले अथवा न ले। जैसे जन्म के साथ ही व्यक्ति को एक विशेष देश की नागरिकता, एक विशेष धर्म की सदस्यता प्राप्त हो जाती है वैसे ही जन्म के साथ ही व्यक्ति को एक भाषा विशेष भी प्राप्त हो जाती है। निर्णय करने लायक होने पर वह नागरिकता एवं धर्म में परिवर्तन कर सकता है वैसे ही वह भाषा भी परिवर्तित कर सकता है। ध्यान देने की बात यह है कि व्यक्ति एक भाषा छोड़ कर दूसरी भाषा ग्रहण कर सकता है (यह भी अपवाद स्वरूप ही हो सकता है) किंतु भाषा विहीन नहीं रह सकता। प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई भाषा अपनानी ही पड़ती है और यही भाषा की अनिवार्यता है।

इस अनिवार्यता में ही भाषा की व्यापकता भी समाई हुई है। जहां पर कोई व्यक्ति है, वहीं पर भाषा है। अन्य शब्दों में यों कहा जा सकता है कि जहां तक मानव जाति का विस्तार है वहां तक भाषा की सीमा है।

(च) विविधता

यद्यपि भाषा अवैयक्तिक अर्थात परंपरागत है और कोई व्यक्ति उसका निर्माण अथवा विनाश नहीं कर सकता किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें वैयक्तिगत विभिन्नता नहीं रहती। वस्तु सत्य तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की भाषा (किसी न किसी रूप में) दूसरे व्यक्ति की भाषा से भिन्न होती है। इस कारण भाषा में विविधता विद्यमान रहती है। जैसे परंपरागत होने पर भी

संस्कृति का रूप समस्त संबंधित व्यक्तियों में समान नहीं होता वैसे ही भाषा का रूप भी समस्त व्यक्तियों में समान नहीं होता। इसी विविधता के कारण एक ही भाषा के अंतर्गत उप भाषाएं बोलियां, उप बोलियां आदि विविध रूप बनते हैं।

(छ) संग्रहित

भाषा की रचना किसी एक समय का नहीं, विभिन्न समयों का संग्रहित रूप होती है। किसी भी भाषा की संरचना का विवेचन विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ संस्कृत के पूर्व की भारोपीय भाषा में मूर्धन्य ध्वनियां (ट, ठ आदि) नहीं थी। संस्कृत (एवं परवर्ती आर्य भाषाओं) में ये ध्वनियां हैं। वैसे ही मध्ययुगीन हिंदी (व्रज, अवधि) में ने का आदि परसर्गों का प्रयोग नहीं था किंतु आधुनिक हिंदी (खड़ी) में इन परसर्गों का प्रयोग होता है। वास्तव में भाषा के इस संग्रहित रूप (कि उसमें कौन सा तत्व कब आया है) का अध्ययन ही भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन कहलाता है।

(ज) परिवर्तनशीलता

भाषा परिवर्तनशील है। भाषा की संरचना ही ऐसी है कि उसमें परिवर्तन होना अनिवार्य है। भाषा की संरचना ध्वनितत्व एवं अर्थतत्व के मिलन से होती है। प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि यंत्र दूसरे व्यक्ति के ध्वनि यंत्र से भिन्न होता है इसलिए उच्चारण की भिन्नता अनिवार्य है। अर्थ का संबंध व्यक्ति की सांस्कृतिक एवं मानसिक अवस्था से होता है और प्रत्येक व्यक्ति की सांस्कृतिक एवं मानसिक अवस्था दूसरे से भिन्न होती है इसलिए अर्थ में परिवर्तन होना भी स्वाभाविक है। फिर भाषा अनुकरण से सीखी जाती है और यह मानी हुई बात है कि अनुकरण चाहे जितना पूर्ण हो उसकी मूल से एक रूपता नहीं हो सकती। अतः परिवर्तन भाषा की प्रकृति में समाया हुआ है।

परिवर्तन का अधिक विस्तृत विवेचन आगामी परिच्छेद में किया जा रहा है।

(झ) नियमनशीलता

भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्ति अनियमित से नियमित होने की है। इसका अर्थ यह है कि आरंभ में प्रत्येक भाषा अधिक अनियमित होती है। उसमें जितने नियम होते हैं उतने ही उनके अपवाद भी होते हैं किंतु जैसे जैसे समय गुजरता जाता है भाषा के अनियमित रूप कम होते जाते हैं। वैदिक भाषा एवं संस्कृत

भाषा की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। वैदिक भाषा में जितने अधिक अनियमित रूप थे संस्कृत में नहीं रहे।

(ज) सरलतागामी

अनियमित रूपों के कम होने के साथ साथ भाषा में नियम कम होते जाते हैं। इससे भाषा अपेक्षाकृत सरल बन जाती है। इसी से भाषा की इस प्रवृत्ति को सरलतागामी प्रवृत्ति कहते हैं। संस्कृत में एक शब्द के २४ रूप बनते थे (८ कारक × ३ वचन), हिंदी तक पहुचते पहुचते रूपों की संख्या इतनी कम हो गयी है कि आज किसी भी शब्द के ६ (३ कारक × २ वचन) से अधिक रूप नहीं बनते। कुछ हिंदी शब्दों के तो २ ही रूप बनते हैं।

१ ८ भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न बड़ा ही आकर्षक किंतु बड़ा ही उलझा हुआ प्रश्न है। यह प्रश्न आकर्षण का केन्द्र इसलिए रहा है क्योंकि इसके उत्तर में अनुमान (Presumption) एवं अटकल (Speculation) की गुंजाइश है, और इसी कारण भाषा उत्पत्ति संबंधी अनेक मतों का प्रतिपादन हुआ है। फिर जैसे-जैसे भाषा के अध्ययन की प्रवृत्ति वैज्ञानिक होती गई, इस प्रश्न का महत्व भाषा विज्ञान की दृष्टि से घटता चला गया। आज स्थिति यह है कि इस विषय को भाषा विज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत ही नहीं माना जाता।

इस विषय को भाषा विज्ञान के क्षेत्र से बहिष्कृत करने के दो मुख्य कारण हैं।

एक तो यह कि भाषाविज्ञान की अपेक्षा—नृशास्त्र, दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान एवं समाज शास्त्र से इस विषय का घनिष्ठ संबंध है। दूसरा यह कि भाषा की उत्पत्ति संबंधी जानकारी से भाषा—संरचना को समझने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती।

उपर्युक्त दोनों कारणों का स्पष्टीकरण अपेक्षित है। भाषा, विचार का बाह्य-रूप है। मनुष्य ने कब एवं कैसे भाषा सीखी, इस प्रश्न का समुचित उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक यह ज्ञात न हो जाय कि मनुष्य ने कब एवं कैसे विचार करना सीखा, और इस उत्तर का संबंध नृशास्त्र, दर्शन शास्त्र एवं मनोविज्ञान को देना है। ये शास्त्र यह जानने का प्रयत्न कर रहे हैं कि मनुष्य में विचारात्मक तत्वों का निर्माण कब हुआ— कैसे हुआ, मनुष्य साधारण प्राणियों से विचारशील प्राणी कब एवं कैसे बना तथा मनुष्य में वह मानसिक प्रक्रिया कब

एवं कैसे उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप मनुष्य सूक्ष्म विचार को स्थूल ध्वनियों से सबद्ध कर पाया। फिर भाषा समाज सापेक्ष वस्तु है। समाज के अभाव में भाषा के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस स्थिति में यह समाज शास्त्र का विषय हो जाता है कि वह बताए कि मनुष्य—समाज का निर्माण कब एवं कैसे हुआ।

उपर्युक्त प्रश्नों के समुचित एवं संतोषजनक उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं और इसी से भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न भी एक प्रकार से ज्यों का त्यों पड़ा है।

एक बात दूसरी भी है। मान लीजिए कि यह निर्विवाद रूप से ज्ञात हो जाता है कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई, तो इससे भाषा संरचना समझने में विशेष क्या सहायता मिलेगी? उदाहरणार्थ एक डाक्टर के लिए यह जानकारी कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखती कि मनुष्य की पूछ थी वह घिस गई है एवं उसका अवशेष रीढ़ की अंतिम अस्थियाँ हैं। उसका संबंध तो वर्तमान मानवीय रीढ़ की रचना से है। अगर किसी डाक्टर को यह जानकारी हो जाय कि आरंभ में बंदर के समान ही मनुष्य के हाथ पैर परस्पर जुड़े रहते थे, तो इस जानकारी से वर्तमान मनुष्य के हाथ-पाँव का उपचार करने में उसे कोई सहायता नहीं मिलेगी।

इसी प्रकार से भाषा की उत्पत्ति संबंधी जानकारी प्राप्त करने से एक भाषा विज्ञानी को भाषा की संरचना समझने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलेगी।

यद्यपि आधुनिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी भाषा–उत्पत्ति संबंधी विभिन्न मतों की संक्षिप्त जानकारी से इस विषय के विकास का दिशा–निर्देश हो जायगा। इसी से भाषा–उत्पत्ति संबंधी विभिन्न मतों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

भाषा उत्पत्ति संबंधी मतों अथवा सिद्धान्तों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

(क) श्रद्धापरक पर आधारित मत।

(ख) पूर्णरूप से अनुमानित मत।

(ग) आंशिक अनुमानित मत।

(घ) विकासवादी मत।

श्रद्धापर आधारित मत

इस वग में ईश्वरीय सिद्धात एव धार्मिक सिद्धात की चर्चा की जा सकती ह।

ईश्वरीय सिद्धात के अनुसार ईश्वर ने जसे सृष्टि के अन्य पदार्थों की रचना की वैसे ही उन्होने भाषा का सृजन भी किया अर्थात भाषा प्रकृति प्रदत्त ह। मनुष्य जन्म से ही भाषा जानता है।

धार्मिक सिद्धात ईश्वरीय सिद्धात से मिलता जुलता सिद्धात ह। इस मत के मानने वालो का विश्वास ह कि उनका धम ही आदि धम है उनका धमग्रथ ही आदि धमग्रथ ह एव उनके धम्ग्रथ की भाषा ही आदि भाषा है जिससे अन्य भाषाओ का विकास हुआ है। इस विश्वास के कारण ही वेदों को आदिग्रथ मानते वाले वदिक–सस्कृत को आदि भाषा मानते हैं वाइबिल को आदिग्रथ मानने वाले हिब्रू को आदि भाषा मानते हे तो कुरान को आदिग्रथ मानने वाले अरबी को आदि भाषा स्वीकार करते हैं।

उपयुक्त मतो का आधार श्रद्धा अथवा विश्वास ह, तक नही इसी से आज-कल प्राय कोई विद्वान इन मतों की चर्चा नही करता। यह सव विदित एव प्रयोगों स सिद्ध तथ्य है कि बच्चा कोई भाषा सीखकर नहीं आता, ईश्वर किसी को कोई भाषा सिखा कर नही भेजता। विधिवत किए गए अध्ययन से आज यह बात भी स्पष्ट हो चुकी ह कि ससार की समस्त भाषाए एक ही भाषा से उत्पन्न नही हुई हैं तथा कोई धमग्रथ 'आदि' (अथात सृष्टि के आरभ से विद्यमान) नही है।

पूणरूप से अनुमानित मत

इस वग के अतगत 'संकेत सिद्धात' डिगडाग अथवा धातु सिद्धात, संकेत-सिद्धान तथा 'सगीत सिद्धात का समावेश किया जा सकता है।

(क) सकेत सिद्धात

इस मत के अनुसार आरभ में मनुष्य सकेतों से परस्पर सपर्क रखते थे। फिर जब उनकी आवश्यकताए वढी उन्होने एक साथ मिलकर विभिन्न पदार्थों क्रियाओ आदि के लिए ध्वनि सकेत निर्धारित कर लिए।

यह मत निरथक ह क्योकि यह पूणरूप से अनुमान पर आधारित ह। अन्यथा यह जानी मानी बात ह कि भाषा के अभाव में यह सभव ही नही हो सकता कि पदार्थों क नाम निर्धारित किए जाय। जब भाषा ही नही है तब विचार विमश

कम होगा ? जब किसी शब्द का ज्ञान ही नहीं ह तब किसी पदार्थ के लिए कोई दा * कसे निश्चित किया जायगा ?

(ख) डिगडाग अथवा धातु सिद्धात

'डिग डाग अथवा 'धातु' सिद्धात के अनुसार प्रत्येक वस्तु से एक विशेष प्रकार की ध्वनि प्रकट होती ह (यथा–किसी वस्तु पर चोट करने स एक प्रकार का आवाज निकलती ह) । आदिम मनुष्य में एक प्राकृतिक शक्ति थी कि वह किसी वस्तु के सपर्क में आने पर एक विशेष प्रकार की ध्वनि करता था । उन सहज अभिव्यक्त ध्वनियो एव उनसे सबधित पदार्थों के मध्य एक अनात सबध स्थापित था । इस सिद्धात के मानने वालो ने इन अनायास रूप से अभि यक्त ध्वनियों का 'धातु' की सज्ञा दी ह । उनके कथनानुसार इन्ही धातुआ में स भाषा का विकास हुआ ।

उपयुक्त कल्पना मात्र अटकल (Speculation) ह । आदि मानव में एसी प्राकृतिक शक्ति की कल्पना के लिए कोई आधार नहीं ह । फिर धातुआ में स समस्त शब्दों एव पूरी भाषा क विकास की कल्पना, भारोपीय परिवार स तो चाहे मेल खा जाय, ससार की समस्त भाषाओ स उसका ताल मल बिठाना सभव नहीं ह ।

(ग) सगीत सिद्धात

इस सिद्धात के अनुसार आदिम मनुष्य खाली समय में मन बहलाव के लिए उच्चारण अगों को चलाकर गुनगुनाता होगा । गुनगुनाने की उन निरथक ध्वनियों से ही भाषा की उत्पत्ति हुई ह ।

वास्तव में यह भी मात्र अनुमान ही ह । गुनगुनाहट की निरथक ध्वनियाँ कसे सार्थक प्रतीक बन गयी, इस शका का कोई समुचित समाधान नहीं ह ।

आंशिक अनुमानित मत

इस वग के अतगत उन सिद्धातो की गणना की जा सकती ह जिनम थाड से शब्दा के निर्माण के लिए अनुमान का सहारा लिया गया ह । इस वग में अनुकरण सिद्धात मावाभिव्यक्ति सिद्धात एव 'श्रमनिवारण सिद्धात का रखा जा सकता ह ।

(च) अनुकरण सिद्धात

अनुकरण सिद्धात के अनुसार मनुष्य ने अपने इद गिद हाने वाले पशु-पक्षिया

अथवा प्राकृतिक पदार्थों की ध्वनियो का अनुकरण करके भाषा सीखी। इसके प्रमाण में हरेक भाषा के कुछ अनुकरणात्मक शब्दो का उल्लेख किया जाता है। जैसे 'का का' के आधार रखा हुआ हिन्दी नाम 'कागा' अथवा 'म्याउ ध्वनि के आधार पर बिल्ली के लिए चीनी भाषा में प्रयुक्त 'मिआऊ अथवा हिंदी 'म्याऊ आदि। या फिर, पेड से कुछ गिरने से आवाज हुई 'पत', और 'पत' का अर्थ हो गया 'गिरना' और गिरने वाला पदार्थ कहलाया 'पत्ता।

(छ) भावाभिव्यक्ति-सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार भावो की तीव्रता के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से अनायास ही कुछ ध्वनिया निकल पडी होगी। भावाभिव्यक्ति की इन ध्वनियों से उस भाव विशेष का सपर्क हो गया होगा एव आगे चलकर इन्ही ध्वनियो से भाषा का विकास हुआ होगा। अपनी बात की पुष्टि के लिए ये लोग विभिन्न भाषाओं के कुछ विस्मयादि बोधक शब्दों का उल्लेख करते हैं यथा—हिन्दी का आह! अग्रजी का ओह! (Oh !) आदि।

(ज) श्रम निवारण सिद्धांत

इस सिद्धांत के माननेवालों का विचार है कि श्रम की थकान को दूर करने हेतु कुछ ध्वनियो का स्वाभाविक रूप से ही उच्चारण करना पडता है। यथा धोबी लोग कपडे धोते समय कुछ ध्वनिया का उच्चारण करते रहते है अथवा भारी बोझा उठाते समय मजदूर लोग एक साथ आवाज करते है। इसी प्रकार आदि मानव भी अपने श्रम निवारण हेतु कुछ ध्वनियो का उच्चारण करता रहा होगा, और इन्ही ध्वनियो से भाषा का विकास हुआ होगा।

उपर्युक्त तीनों मतों के विरुद्ध प्राय समान तर्क है। सबसे पहली बात तो यह है कि किसी भी भाषा में इस प्रकार से निर्मित शब्द बहुत ही कम है। इन थोडे से शब्दों से भाषा की उत्पत्ति सभव ही नही दिखाई पडती। फिर ये शब्द समस्त भाषाओं में समान नहीं है। न तो कौए का सब भाषाओं में 'कागा' कहा जाता और न ही बिल्ली को सब भाषाओ में 'म्याऊ' कहते है। भावाभिव्यक्ति एव श्रम निवारण वाले शब्द भी समस्त भाषाओं में समान नही है। भावाभिव्यक्ति एव श्रम निवारण हेतु अभिव्यक्त शब्द तो वाक्यो में प्रयुक्त ही नहीं होते (यथा—हाय! वह मर गया। यहा हाय! वाक्य से अलग है)। अनुकरणात्मक मत के विरोध में यह भी कहा जा सकता है कि यदि प्रकृति के अन्य पदार्थों (पशु-पक्षियो आदि) का ध्वनि करने की शक्ति थी तो उनमें

क्योंकर माना जाय कि मनुष्य उस शक्ति से वंचित था।

विकासवादी सिद्धांत

इस वर्ग में वे मत आते हैं, जो भाषा की उत्पत्ति की अपेक्षा भाषा की विकास प्रक्रिया पर अधिक बल देते हैं एवं भाषा को किसी एक समय में उत्पन्न मानने की अपेक्षा विभिन्न अवस्थाओं का परिणाम मानते हैं। भाषा उत्पत्ति संबंधी ये मत अधिक तथ्यात्मक हैं। इस वर्ग के अंतर्गत 'इंगित सिद्धांत' 'संपर्क सिद्धांत' एवं मिश्रित सिद्धांत को रखा जा सकता है।

(ट) इंगित सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार भाषा के विकास के चार सोपान माने जाते हैं। पहले सोपान में—हर्ष शोक आदि भाव व्यंजक ध्वनियों का निर्माण हुआ। दूसरे सोपान में अनुकरणात्मक ध्वनियों की रचना हुई। तीसरे सोपान में जीभ आदि उच्चारण अंगों द्वारा शरीर की विभिन्न क्रियाओं शारीरिक संकेतों की अनुकरणात्मक ध्वनियों का निर्माण हुआ। (उदाहरणार्थ मनुष्य दौड़ता तो उसका अनुकरण करती हुई, जीभ मुख में दौड़ती और इसी से 'गति सूचक' बहुत से शब्द 'र' से आरंभ होते हैं क्योंकि 'र' के उच्चारण में जीभ को बहुत बार मुख के ऊपरी भाग को छूना पड़ता है।) और चौथे सोपान पर सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के शब्द बने होंगे।

इस मत के अनुसार भाषा की आरंभिक स्थिति का तो बोध हो जाता है किंतु तीसरी अवस्था जीभ द्वारा शरीर के अन्य अंगों का अनुकरण करने वाली बात इतनी सहजता से गले से नहीं उतरती। फिर समस्त भाषाओं में गति सूचक शब्द 'र' से आरंभ नहीं होते एवं न तो 'म' से आरंभ होने वाले समस्त शब्द 'शांति' का अर्थ देते हैं।

(ठ) संपर्क सिद्धांत

संपर्क सिद्धांत का मुख्य आधार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। इस सिद्धांत के अनुसार मनुष्य में संपर्क स्थापित करने की सहज प्रवृत्ति है। आरंभ में चिल्लाना, पुकारना आदि जैसी सामान्य ध्वनियों के द्वारा मनुष्य संबंध स्थापित करता होगा। ज्यों-ज्यों उसके संपर्क की आवश्यकता बढ़ती गई उसके अनुरूप ध्वनियों का विकास होता गया। ध्वनियों एवं स्थितियों में संबंध स्थापित होता गया एवं

आगे चलकर किसी विशेष ध्वनि से उस स्थिति का बोध होने लगा। इस तरह ध्वनियो में अर्थत्व का समावेश हो गया। आरम में छोटे छोटे कथन (एक शब्द जसे) रहे होंगे, जिनसे प्राय क्रिया का भाव ही अभिव्यक्त होता था।

यह सिद्धात मानव मन की स्वाभाविक प्रकृति एव उसकी विकास प्रक्रिया पर आधारित होने के कारण अधिक तर्कसगत ह, किंतु इस सिद्धात के द्वारा भाषा की उत्पत्ति के सबध में विशिष्ट एव भाषा वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त नही होती।

(ड) मिश्रित सिद्धात

यह सिद्धात उपर्युक्त बहुत से सिद्धांतों का मिश्रित रूप ह।

इस सिद्धात के अनुसार भाषा आरम में इगित एव ध्वनि दोना पर आधारित थी। विभिन्न ध्वनि-समूहो से ही आगे चलकर भाषा का विकास हुआ। इस सिद्धात के अनुसार आरम में शब्द अनुकरणात्मक, भाव व्यजक एव प्रतीकात्मक थे। तीसरे प्रकार के शब्दो का भाषा के विकास में महत्वपूर्ण हाथ रहा ह। उदाहरणार्थ, बच्चा मा बाप के होठो की गति का अनुकरण करता हुआ अपने होठ चलाने का प्रयत्न करता है, जिससे अनायास ही कुछ ओष्ठ्य ध्वनिया की अभिव्यक्ति हो जाती है और उनके परिवार वाले समझते ह कि वह उन्हें पुकार रहा ह। यथा, बच्चा सहज भाव से पा पा, मा मा अ मा आदि ध्वनियो (ध्वनिसमूहों) का उच्चारण करता है। लोग समझते ह कि वह 'मा' अथवा 'बाप का पुकार रहा ह। इस प्रकार ध्वनिया में अर्थ निहित हो जाता है एव प्रतीकात्मक शब्दो का निर्माण हो जाता ह। इसके अतिरिक्त बहुत से शब्द सादृश्य के आधार पर बने होगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती ह कि भाषा की उत्पत्ति सबधी विषय अब उतना उलझा हुआ नही ह जितना कि वह आरम में था किंतु ऐसा भी नही कहा जा सकता कि भाषा उत्पत्ति की समस्या पूर्णरूप से सुलझ गयी ह। एक बात अवश्य निश्चित है, और वह यह कि भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न आधुनिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण प्रश्न नही ह।

१ ९ भाषा मे परिवर्तन (विकास)

भाषा की प्रकृति का विवेचन करते समय यह बता दिया गया है कि परिवर्तन भाषा की प्रकृति का अनिवार्य अग ह। जो भाषा जीवित ह (व्यवहार में लायी

जाती है) उसमें परिवर्तन होगा ही ।

१ ९ १ भाषा-परिवर्तन का अर्थ

भाषा-परिवर्तन का सीधा एवं सरल अर्थ यह है कि एक समय में जो किसी भाषा का रूप होता है, दूसरे समय में वही रूप नहीं रहता अर्थात जैसे जैसे समय व्यतीत होता है भाषा में परिवर्तन आता जाता है। इस परिवर्तन को ही भाषा का विकास कहा जाता है।

प्राय लोग ऐसा समझते हैं कि भाषा परिवर्तन का अर्थ है नये-नये शब्दों, विशेषकर दूसरी भाषा से लिए हुए शब्दों का प्रयोग। भाषा-परिवर्तन के लिए यह धारणा भ्रामक है। शब्दावली को भाषा की अमुख्य अथवा गौण संरचना माना जाता है अत शब्दों के परिवर्तन को मूल रूप से भाषा का परिवर्तन नहीं माना जा सकता। भाषा का परिवर्तन तो तभी माना जा सकता है जबकि भाषा की संरचना (ध्वन्यात्मक व्याकरणात्मक एवं अर्थ संरचना) में किसी प्रकार का परिवर्तन उपस्थित हो।

१ ९ २ परिवर्तन एवं स्थिरीकरण

सैद्धांतिक दृष्टि से देखा जाय तो जैसे नदी में लगायी हुई दो डुबकियों का पानी समान नहीं रहता उसी तरह एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही शब्द का दो बार किया गया उच्चारण भी एकदम समान नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रत्येक भाषा के अंतर्गत परिवर्तन की बहुत अधिक गुंजाइश है क्योंकि प्रत्येक भाषा के लाखों-करोड़ों बोलने वाले होते हैं (अपवादस्वरूप कुछ भाषाओं को छोड़कर जिनके बोलने वालों की संख्या केवल सैकड़ों-हजारों में होती है) तथा प्रत्येक व्यक्ति दिन का बहुत बड़ा भाग बोलता रहता है। उच्चारण के समान ही अर्थ भिन्नता का क्षेत्र भी अत्यंत विस्तृत है। अर्थ का संबंध व्यक्ति की मानसिक अवस्था से है और न केवल दो व्यक्तियों की मानसिक अवस्थाएं कभी समान नहीं होती वरन एक ही व्यक्ति की प्रत्येक क्षण में मानसिक अवस्था बदलती रहती है।

इस प्रकार विचार करने पर, भाषा में जितने अधिक परिवर्तन की कल्पना की जा सकती है वास्तव में उतना परिवर्तन भाषा में होता नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि भाषा एक सामाजिक वस्तु एवं विचार विनिमय अथवा विचार-संपर्क का साधन है। विचार-संपर्क के इस

अन्तर के कारण ही भाषा में इतना परिवर्तन नहीं आता कि एक ही भाषा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति एक दूसरे को समझ न सकें तथा उनके मध्य विचार संपर्क टूट जाय।

इस प्रकार भाषा में एक साथ दो विरोधी शक्तियां क्रियाशील रहती हैं। परिवर्तन की शक्ति भाषा को बदलने का प्रयास करती रहती है तो स्थिरता की शक्ति उसे समान बनाये रखने का प्रयत्न करती है। इन दो विरोधी प्रवृत्तियों के मध्य भाषा का संतुलन बना रहता है अर्थात भाषा परिवर्तित तो होती रहती है किंतु इतनी धीमी गति से कि समय के एक बिंदु अथवा दो पीढ़ियों के मध्य हुए भाषाई परिवर्तनों की अनुभूति नहीं होती।

१ ९ ३ परिवर्तन की गति के नियामक तत्व

ऊपर के विवेचन से यह भाव ग्रहण नहीं करना चाहिए कि भाषा-परिवर्तन की गति सर्व समान रहती है। भाषा के परिवर्तन का आधार, भाषा की आन्तरिक संरचना के साथ बाह्य परिस्थितियों पर भी है। इन परिस्थितियों के कारण भाषा परिवर्तन की गति मंद अथवा तीव्र हो सकती है। उदाहरणार्थ यदि किसी भाषा के बोलने वालों की संख्या थोड़ी है, भौगोलिक दृष्टि से वे संगठित हैं उनका परस्पर संबंध जुड़ा हुआ है तथा अन्य भाषा भाषियों से उनका संबंध नहीं है अथवा बहुत कम है तो उनकी भाषा में परिवर्तन की गति मंद होगी तथा उस भाषा में हुए परिवर्तनों की अनुभूति शताब्दी या उससे भी अधिक समय गुजरने पर ही हो सकेगी। इसके विपरीत यदि किसी भाषा के बोलने वालों की संख्या अधिक है भौगोलिक दृष्टि से वे इस प्रकार बिखरे हुए हैं कि *उनके लिए परस्पर संबंध स्थापित करना सरल न हो तथा* अन्य भाषा भाषियों के साथ उनका निकट संबंध हो तो उनकी भाषा में परिवर्तन की गति तीव्र होगी तथा भाषा में आये हुए परिवर्तनों का बोध कुछ दशकों के भीतर ही हो सकता है। स्थानांतर राज्य परिवर्तन, विदेशी आक्रमण सांस्कृतिक धार्मिक जागृति आदि कुछ ऐसी घटनाएं हैं जिनके कारण भाषा में परिवर्तन की गति *अत्यंत तीव्र हो जाती है तथा उसका अनुभव १० २० वर्षों* के अंदर ही किया जा सकता है। इस संदर्भ में सिंधी भाषा का उल्लेख किया जा सकता है। भारत विभाजन के पश्चात्, भारत में आ गये सिंधियों की भाषा इन २० २५ वर्षों में ही इतना बदल गयी है कि उसके इस बदलाव की अनुभूति सरलता से की जा सकती है।

१ ९ ४ भाषा-परिवतन का स्वरूप (प्रकार)

जब हम यह कहते हैं कि भाषा में परिवतन होता है तब हमारा तात्पय यह है कि भाषा की सपूर्ण रचना अर्थात् उसके समस्त अगों म परिवतन होता है। भाषा के अग ह—ध्वनि, रूप शब्द, वाक्य एव अथ। इसी आधार पर भाषा परिवतन के प्रकार होंगे

ध्वनि परिवतन, रूप परिवतन, शब्द परिवतन, वाक्य-परिवतन एव अथ परिवतन।

ध्वनि-परिवतन

ध्वनि-परिवतन का सबध ध्वनियो से ह। इसमें मुख्य रूप से चार प्रकार के परिवतन होते ह

(१) ध्वनियों का ह्रास (जसे सस्कृत की मूध य 'ष का उच्चारण अब हिंदी में नही रहा ह)।

(२) ध्वनिया का विकास (जसे फारसी अरबी शब्दा के प्रभाव से ग, ज आदि नयी ध्वनिया हिन्दी में विकसित हो रही ह)।

(३) ध्वनियो के उच्चारण में अतर (जस वदिक सस्कृत में ए ओ सयुक्त स्वरा का उच्चारण क्रमश आइ आउ जसा था जबकि हिंदी म इन स्वरों का उच्चारण क्रमश अइ अउ जसा हो गया ह)।

(४) ध्वनियों के वितरण अर्थात प्रयोग की स्थितिया म परिवतन (जस अपभ्रश में 'ण ध्वनि शब्द के आरभ में प्रयुक्त हो सकती थी यथा, णाच किंतु हिंदी में शब्द क आरभ में 'ण' ध्वनि का प्रयोग नही होता ह)।

रूप-परिवतन

रूप परिवतन से भाषा की रूप रचना में अतर आ जाता ह। उदाहरणाथ सस्कृत में शब्दों के रूप तीन वचनों एव आठ कारकों में बदलते थ किंतु हिंदी में शब्दों के रूप दो वचनों एव दो अथवा तीन कारकों में बदलते ह।

शब्द-परिवतन

इस परिवतन के कारण कितने ही पुराने शब्दों का प्रयोग समाप्त हो जाता ह तथा कितने ही नये शब्द भाषा में प्रयुक्त होने लगते ह। उदाहरणाथ कभी पाई आना, दुअन्नी आदि शब्दों का प्रयोग होता था। मुद्रा प्रणाली के बदलने

से इन शब्दों का चलन अब समाप्त हो रहा है। नयी प्रणालियों के फलस्वरूप, ग्राम, लिटर, किलो जैसे शब्द चल पड़े हैं।

वाक्य-परिवर्तन

वाक्य-परिवर्तन के अंतर्गत, वाक्य रचना में होने वाले परिवर्तनों को गिना जाता है। जैसे अंग्रेजी के प्रभाव से हिंदी वाक्यों में विभिन्न प्रकार के विराम चिह्नों का प्रयोग किया जाने लगा है जिससे वाक्य साधारण की अपेक्षा अधिक बड़े हो जाते हैं।

अर्थ-परिवर्तन

अर्थ परिवर्तन में शब्दों का अर्थ बदल जाता है। जैसे कभी 'मृग' शब्द का अर्थ था 'पशु' (जैसे मृगराज अर्थात् पशुओं का राजा) लेकिन आज 'मृग' का अर्थ हो गया है 'हिरन'। -

२.९.५ भाषा-परिवर्तन के कारण

भाषा परिवर्तन के कारणों का तर्कपूर्ण विवेचन कर पाना कठिन है। इसका मुख्य कारण यह है कि भाषा एक संश्लिष्ट संरचना है जिसमें एक से अधिक संरचनाएँ जुड़ी हुई हैं। उदाहरणार्थ ध्वनि-परिवर्तन का संबंध उच्चारण अंगों से है तो अर्थ परिवर्तन का मानसिक अवस्था से। फिर शब्दावली के परिवर्तन का कारण मुख्य रूप से सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। प्रायः ऐसा होता है कि एक ही परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। इसलिए यह कहना सरल नहीं है कि अमुक परिवर्तन का अमुक कारण है।

अध्ययन की सुविधा के लिए कारणों का विवेचन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में इन कारणों को दो वर्गों में विभाजित करना होगा। एक वर्ग में आंतरिक कारण एवं दूसरे वर्ग में बाह्य कारण रखे जायगे।

(क) आंतरिक कारण

इस वर्ग में वे कारण आते हैं जिनका संबंध भाषा की रचना एवं उसके प्रयोग से है। ये कारण हैं—

(१) ध्वनि यंत्र की भिन्नता
(२) मानसिक अवस्था में अंतर
(३) अनुकरण की अपूर्णता
(४) मुख-सुख

यह पहले ही बताया जा चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि-यन्त्र दूसरे व्यक्ति के ध्वनि-यन्त्र से भिन्न होता है। इसलिए उच्चारण में अंतर आ जाना स्वाभाविक है।

अर्थ का परिवर्तन भी अनिवार्य है क्योंकि अर्थ का संबंध व्यक्ति की मानसिक अवस्था से है और एक व्यक्ति की मानसिक अवस्था, दूसरे व्यक्ति की मानसिक अवस्था से भिन्न होती है।

अनुकरण की अपूर्णता, यह तीसरा कारण है। भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। अनुकरण कितना ही ध्यानपूर्वक क्यों न किया जाय वह मूल के समान नहीं हो सकता। अनुकरण की अपूर्णता के भी अनेक कारण होते हैं। जिनमें मुख्य हैं—अज्ञान, अशिक्षा, आलस्य तथा शारीरिक अथवा मानसिक रोग।

आंतरिक कारणों में सबसे प्रभावशाली कारण माना जाता है मुख-सुख। मुख-सुख का संबंध उच्चारण से है। मनुष्य के स्वभाव की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वह कम श्रम करके अधिक सुख प्राप्त करना चाहता है। उसकी यही प्रवृत्ति भाषा में भी काम करती है। मुख सुख के कारण ही 'स्त्री' का उच्चारण 'इस्त्री' हो जाता है तथा इसी मुख-सुख के फलस्वरूप 'अनाज' बदल कर 'नाज' हो जाता है।

(ख) बाह्य कारण

इस वर्ग में वे कारण गिने जाते हैं जिनका संबंध परिस्थितियों से है। ये परिस्थितियां कई प्रकार की हो सकती हैं, यथा राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि।

इन परिस्थितियों में राजनैतिक परिस्थितियां सबसे प्रभावशाली होती हैं। मुसलमानी शासन के कारण हजारों फारसी-अरबी शब्द हिन्दी में आ गये हैं, और अब इन शब्दों के कारण ग़, ज़, फ़ जैसी ध्वनियां हिन्दी में विकसित हो रही हैं। अंग्रेजी शासन के कारण अंग्रेजी का कितना प्रभाव हिंदी पर पड़ा है यह किसी से छिपा नहीं है।

धार्मिक परिस्थितियां भी भाषा के विकास में बहुत अधिक योगदान करती हैं। मध्यकालीन कृष्ण भक्ति के प्रभाव के कारण ही ब्रजभाषा का प्रभाव ब्रजभूमि से लेकर बंगाल तक की भाषाओं में पाया जाता है।

व्यक्तियों के समान ही संस्कृतियां भी एक दूसरे से प्रभावित होती हैं। वे एक-दूसरे से बहुत कुछ लेती और देती हैं। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान का

माध्यम होती है भाषा। उदाहरणार्थ आर्य एवं द्रविड़ संस्कृतियों के मिलने का परिणाम यह हुआ कि द्रविड़ भाषाएं संस्कृत से प्रभावित हुई तथा संस्कृत में भी बहुत-सी द्रविड़ भाषाओं की विशेषताएं आ गयी।

१ ९ ६ भाषा परिवर्तन की क्रियाविधियां (Mechanisms)

भाषा-परिवर्तन के कारणों का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट कर दिया गया था कि भाषा परिवर्तन के कारणों का तर्कसंगत विश्लेषण कर सकना कठिन है। इस कारण आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक कारणों की अपेक्षा उन क्रियाविधियों का विवेचन करना अधिक उचित समझता है जिनके द्वारा भाषा में परिवर्तन घटित होता है।

भाषा-परिवर्तन की मुख्य क्रियाविधियां तीन हैं

(१) ध्वनि-परिवर्तन (Sound change)

(२) आदान (Borrowing)

(३) सादृश्य (Analogy)

१ ९ ६ १ ध्वनि-परिवर्तन एक क्रियाविधि

ध्वनि-परिवर्तन एक प्रकार का परिवर्तन तो है ही, वह एक प्रकार की क्रियाविधि भी है, जिसके द्वारा अन्य परिवर्तन घटित होते हैं। उदाहरणार्थ मध्यकालीन आर्य भाषाओं (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) में एक ध्वनि-परिवर्तन यह हुआ कि अंतिम व्यंजन लोप हो गया। एक ध्वनि-परिवर्तन यह भी हुआ कि स्वर—मध्य-गत अघोष व्यंजन घोष व्यंजन बन गये (ट > ड)। इन ध्वनि परिवर्तनों के फलस्वरूप प्राचीन शब्द 'घोटक' बदल कर 'घोडअ' हो गया। यही 'घोडअ' आधुनिक आर्य भाषा हिंदी में 'घोडा' बन गया। इन ध्वनि परिवर्तनों के कारण न केवल शब्द के रूप में परिवर्तन हो गया वरन् उसकी व्याकरणात्मक स्थिति में भी अंतर आ गया। आकारांत हो जाने के कारण 'घोडा' का तिर्यक रूप तथा बहुवचन रूप 'घोडे' बना (तिर्यक रूप—घोडे से, घोडे का आदि, तथा बहुवचन रूप—बहुत से घोडे)। इस प्रकार ध्वनि-परिवर्तन एक क्रियाविधि का कार्य करता है।

१ ९ ६ २ आदान

'आदान' से तात्पर्य उस क्रियाविधि से है जिसके अंतर्गत एक भाषा के कुछ तत्त्व दूसरी भाषा में ले लिए जाते हैं। इसको आगम अथवा भाषाई उधार भी कहते हैं।

यह आदान केवल दो भाषाओं में ही नहीं होता, एक ही भाषा की दो आंचलिक बोलियों के मध्य भी हो सकता है। आधुनिक उपन्यासों के माध्यम से आज कितने ही शब्द विभिन्न बोलियों से साहित्यिक हिंदी में आ गये हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई भाषा अपने पूर्ववर्ती रूप से बहुत-सी चीजें फिर से ग्रहण करने लगती है। जैसे आज हिंदी में फिर से अनेक संस्कृत शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। यह एक ही भाषा के दो भिन्न सामयिक रूपों के मध्य आदान है।

आदान मुख्य रूप से शब्दों का होता है किंतु शब्दों के माध्यम से दूसरे भाषाई परिवर्तन भी घटित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ हिंदी ने फारसी-अरबी के अनेक शब्द ले लिए हैं। इन शब्दों में ग, ज फ जैसी ध्वनियां भी हैं (जैसे बगीचा, हज़ार, फकीर) जिनका हिंदी में अभाव है। इन शब्दों के कारण अब ये ध्वनियां भी हिंदी में विकसित हो रही हैं। इन शब्दों के कारण कुछ व्याकरणात्मक परिवर्तन भी आया है। जैसे हिंदी में—आत लगाकर बहुवचन बनाने की पद्धति नहीं है किंतु अब 'कागज' का बहुवचन 'कागजात' चलने लगा है।

१ ९ ६ ३ सादृश्य

सादृश्य का अर्थ है किसी प्रस्तुत भाषाई आकृति (शब्द, वाक्य आदि) की समानता पर नई भाषाई आकृति का निर्माण। आज-कल जो अनेक नये शब्द हिंदी में बन रहे हैं उनमें से अधिकांश का आधार सादृश्य ही है। ईकारांत स्त्रीलिंग शब्दों से संबंधित पुल्लिंग शब्द आकारांत होते ही हैं जैसे लड़की लड़का। इसी के आधार पर तितली से तितला बन गया। 'उठाना चलना' के ताल पर ही 'फिलमाना', 'मचाना' आदि बन गये हैं। अंग्रेजी वाक्यों के सादृश्य पर हिंदी वाक्य रचना में भी अंतर आ गया है। आज-कल ऐसे अनेक वाक्य पढ़ने को मिल जाते हैं जिनमें अंग्रेजी के सादृश्य पर क्रिया वाक्य के मध्य में प्रयुक्त होती है। जैसे, 'मैं करता कुछ नहीं, खाता हूं गम और पीता हूं आंसू'।

१ ९ ६ ४ अन्य क्रियाविधियां

उपर्युक्त मुख्य विधियों के अतिरिक्त कुछ अन्य साधारण क्रियाविधियां भी हैं जो उपर्युक्त क्रियाविधियों से मिलकर अथवा स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं। इन क्रियाविधियों के द्वारा मुख्य रूप से ध्वनि संबंधी परिवर्तन ही उपस्थित होते हैं। इनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

समिश्रण अथवा समोच्चारण

दो शब्द जो प्राय एक ही स्थान पर प्रयुक्त होते हैं उनमें उच्चारण-समानता उत्पन्न हो जाती है। जैसे 'द्वादश' के साथ प्रयुक्त होने के कारण 'एकदश' बदल कर 'एकादश' हो गया है।

विपर्यय

इस क्रियाविधि में एक या एक से अधिक ध्वनियां अपना स्थान बदल देती हैं। 'अमरूद' 'अरमूद', तथा 'लखनऊ' का 'नखलऊ' विपर्यय के ही उदाहरण हैं।

समीकरण

समीकरण में एक ध्वनि दूसरी भिन्न ध्वनि को अपने समान बना लेती है। जैसे, प्राचीन शब्द 'चक्र' मध्यकाल में 'चक्क' बन गया। यहां 'क' ने अपने प्रभाव से 'र' को भी 'क' बना दिया।

विषमीकरण

विषमीकरण की क्रियाविधि, समीकरण से विपरीत दिशा में कार्य करती है। समीकरण में भिन्न ध्वनि समान बन जाती है पर विषमीकरण में समान ध्वनि भिन्न बन जाती है। जैसे 'दरिद्र' बदलकर 'दलिद्र' होने लगा है। यहां 'र' ध्वनि बदल कर 'ल' बन गयी है।

●

स्मरण-संकेत

१ १ समाज की रचना एवं सभ्यता के विकास का मुख्य आधार भाषा है।

१ २ सामान्य व्यक्ति का संबंध भाषा के प्रयोग से है। कुछ व्यक्ति (शिक्षक, समाजशास्त्री आदि) भाषा का अध्ययन साधन रूप में करते हैं। भाषा वैज्ञानिक के लिए भाषा का अध्ययन साध्य अथवा उद्देश्य है।

१ ३ भाषा ध्वनि संकेतों का ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा विचार संपर्क स्थापित किया जाता है।

१ ४ भाषा के दो पक्ष हैं भौतिक (ध्वनियाँ) एवं बौद्धिक (अर्थ)। भाषा एक मिश्रित संरचना है जिसमें सम्मिलित हैं—ध्वनि संरचना, ध्वनिग्रामिक संरचना रूपात्मक संरचना, वाक्यात्मक संरचना, अर्थ संरचना, रूप ध्वनिग्रामिक संरचना एवं शब्द संरचना,।

१ ५ भाषा के अंग हैं ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य एवं अर्थ।

१ ६ ध्वनितत्व एवं अर्थतत्व भाषा के वे तत्व हैं जिनसे समस्त भाषा की रचना होती है।

१ ७ भाषा का रचनागत विशेषताएं हैं —
उच्चरित ध्वनियाँ, प्रतीकात्मकता, ऐच्छिकता क्रमबद्धता, व्यवस्था एवं संपर्क।

भाषा की स्वभावगत विशेषताएं हैं —

अर्जित अनुकृत, सामाजिक, अवैयक्तिक, अनिवार्य एवं व्यापक, विविध, सम्रहित, परिवर्तनशील, नियमनशील तथा सरलतागामी।

१ ८ भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न भाषाविज्ञान के साथ प्राचीन इतिहास, मनोविज्ञान तथा दर्शनशास्त्र से भी जुड़ा हुआ है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक इस प्रश्न को महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। भाषा का उत्पत्ति संबंधी अनेक मत हैं। जिनमें से कुछ श्रद्धा पर आधारित हैं, कुछ अनुमान पर एवं कुछ विकासवाद के सिद्धांत पर।

१९ भाषा सदैव परिवर्तित होती रहती है। परिवर्तन एव स्थिरीकरण की शक्तियां भाषा का सतुलन बनाए रखती हैं। भाषा परिवर्तन की मद अथवा तीव्रगति का आधार बाह्य परिस्थितियों पर है। परिवर्तन भाषा के समस्त अगों—ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य, अर्थ—में होता है। भाषा परिवर्तन के अनेक कारण हैं जिन्हें आतरिक एव बाह्य वर्गों में विभाजित किया जाता है। भाषा परिवर्तन की मुख्य क्रियाविधियां हैं : ध्वनि-परिवर्तन, आदान एव सादृश्य। इनके अतिरिक्त कुछ दूसरी साधारण क्रियाविधियां भी हैं।

२ भाषाविज्ञान



- भाषाविज्ञान का अर्थ
- भाषाविज्ञान का नाम
- भाषाविज्ञान का स्वरूप
- भाषाविज्ञान के विभाग
- भाषाविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ
- भाषाविज्ञान एवं अन्य शास्त्र। विज्ञान
- भाषाविज्ञान की उपयोगिता
- भाषाविज्ञान के अध्ययन का इतिहास



२ १ भाषाविज्ञान का अर्थ

भाषाविज्ञान का शाब्दिक अर्थ है 'भाषा का विज्ञान'। भाषा का विवेचन पूर्व-परिच्छेदों में किया गया है, यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

'विज्ञान' का सामान्य अर्थ ऐसे विशुद्ध ज्ञान से लिया जाता है जो देश एवं काल की दृष्टि से अपरिवर्तनशील हो। परंतु विज्ञान का वास्तविक अर्थ है किसी भी विषय का 'व्यवस्थित ज्ञान'। 'व्यवस्थित ज्ञान' से तात्पर्य उस ज्ञान से है जो सामग्री (data) के विश्लेषण से प्राप्त होता है। यह विश्लेषण कार्य-कारण संबंध पर आधारित होता है तथा इस विश्लेषण से कुछ सामान्य नियमों का निर्धारण होता है।

इस दृष्टि से भाषाविज्ञान, भाषा का 'व्यवस्थित ज्ञान' है। भाषा (सामान्य अथवा विशेष) का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन करना एवं उसे व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करना ही भाषाविज्ञान का कार्य है। भाषाविज्ञान भाषा-सामग्री का विवेचन विश्लेषण करता है तथा भाषा की रचना तथा उसके प्रयोग से संबंधित कुछ सामान्य नियमों की रचना करता है।

२ २ नाम

आज कल भाषाविज्ञान का प्रयोग, अंग्रेजी शब्द, लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) के अर्थ में होता है। यों इसी अर्थ के द्योतक अन्य कई नाम प्रचलित हैं यथा, भाषाशास्त्र तुलनात्मक भाषाशास्त्र, भाषिकी, भाषालोचन, भाषा-तत्व, भाषाविचार आदि। तात्विक दृष्टि से इन नामों में कोई अंतर नहीं है। यह सोचना भ्रामक होगा कि 'शास्त्र' शब्द से इस विषय के कलात्मक अथवा अवैज्ञानिक होने का बोध होता है एवं 'विज्ञान' शब्द जोड़ने से भाषा-संबंधी अध्ययन अन्य प्राकृतिक विज्ञानों (यथा भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान आदि) के समान हो जाता है। 'रसायन-शास्त्र' कहने पर भी रसायन संबंधी अध्ययन का यह विशुद्ध विज्ञान है तथा 'मनोविज्ञान' कहने पर भी मानव मन का यह अध्ययन भौतिक विज्ञान के समान विशुद्ध विज्ञान नहीं है। इस विषय का 'भाषाविज्ञान' नाम प्रयोग की दृष्टि से इतना ग्राह्य हो चुका है कि अब उस परिवर्तन का प्रयत्न व्यर्थ है। यों यह नाम निश्चित रूप से सार्थक भी है।

२ ३ भाषाविज्ञान का स्वरूप

स्वरूप अर्थात 'प्रकृति' के सबध में मुख्य प्रश्न यह उठाया जाता है कि सबधित विषय 'विज्ञान' है अथवा कला । भाषाविज्ञान की प्रकृति का निर्णय करने से पूर्व विज्ञान एवं कला के अंतर को समझ लेना आवश्यक है। विज्ञान सामग्री प्रधान' होता है जबकि कला 'रुचि प्रधान' होती है। इसलिये जहा वैज्ञानिक अध्ययन में समान सामग्री से समान निर्णय निकलना आवश्यक है वहा एक ही विषय से सबधित विभिन्न रुचियोंवाले कलाकारों द्वारा विभिन्न रचनाएं सभव हैं। उदाहरणार्थ—एक पौधे का एक से अधिक वनस्पतिक समान विवरण प्रस्तुत करेंगे किंतु एक ही पौधे को अलग अलग चित्रकार अलग-अलग ढग से चित्रित कर सकते हैं। विज्ञान एव कला में दूसरा महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि विज्ञान के अध्ययन का उद्देश्य मात्र उत्कठा की तृप्ति करना होता है किंतु कला के पीछे एक निश्चित ध्येय अथवा उपयोगिता होती है। इस दृष्टि से विज्ञान के लिये विषय साध्य होता है किंतु कला के लिये साधन'। उदाहरणार्थ—रेखाओ का अध्ययन यदि साध्य रूप में किया जाता है तो उसे रेखागणित विज्ञान के अतर्गत गिना जाता है किंतु उन्ही रेखाओं का साधन रूप में अध्ययन करने से चित्रकला का निर्माण होता है। फिर विज्ञान अपवाद अथवा वकल्प रहित होता है किंतु कला विकल्प को लेकर चलती है।

जहा तक भाषाविज्ञान का सबध है वह मुख्य रूप से विज्ञान है। भाषा विज्ञान के अध्ययन की सामग्री भाषा है अत यह सामग्री प्रधान विषय है। व्यक्ति रुचि का इसमें महत्त्व नही। भाषा का अध्ययन, भाषाविज्ञान का साध्य है। यह और किसी विषय के अध्ययन का साधन नही है। भाषा रचना सबधी निर्मित नियम तात्विक दृष्टि से अपवाद रहित होते हैं। इतना होने पर भी भाषाविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानो (Natural Sciences) के समकक्ष नही रखा जा सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि प्राकृतिक विज्ञान जड एव विचार रहित पदार्थों का अध्ययन करते हैं जबकि भाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन करता है, जिसका प्रयोग मनुष्य करता है जो कि चेतन एव विचारशील प्राणी है। इस दृष्टि से भाषाविज्ञान को अन्य सामाजिक विज्ञानो यथा मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि के समान ही समझना चाहिए। फिर भाषाविज्ञान के द्वारा प्रस्तुत भाषा सबधी सामग्री का बहुत कुछ उपयोग भी होता है। यह उपयोगिता उसे कला की ओर खीच ले आती है। अत भाषाविज्ञान को वैज्ञानिक कला अथवा कलात्मक विज्ञान का कहना अधिक उपयुक्त होगा।

२ ४ भाषाविज्ञान के विभाग

प्रत्येक विषय, अपने आप में पूर्ण एव 'समग्र' होता है। उसे विभाजित करने का कोई तार्किक एव तात्विक कारण नहीं होता। अत किसी भी विषय का विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही किया जाता ह। इसी सुविधा का विचार करते हुए भाषा के विभिन्न अगो का विवेचन किया गया ह और इसी सुविधा को उद्देश्य बनाकर भाषाविज्ञान के विभिन्न विभाग किये गये ह।

भाषाविज्ञान के विभागों का आधार है भाषा के अग। जितने भाषा के अग हैं उतन ही भाषाविज्ञान क मुख्य विभाग हैं।

भाषा के अध्याय में यह बताया जा चुका ह कि भाषा के दो पक्ष होते ह

अनुभूति पक्ष एव अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष में अर्थ की गणना की जाती ह। भाषाविज्ञान का वह भाग जो अर्थ का अध्ययन करता ह 'अर्थ विज्ञान' कहलाता ह।

अभिव्यक्ति पक्ष क अतगत भाषा की पूर्ण इकाई ह 'वाक्य'। भाषाविज्ञान का वह भाग जो वाक्य का अध्ययन करता ह वाक्य विज्ञान' कहलाता ह।

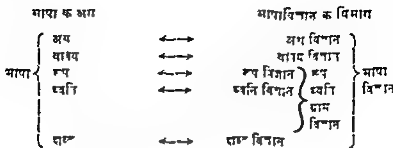
वाक्य एक विभाज्य इकाई ह। वाक्य जिन सार्थक लघुतम इकाइयो में विभाजित हो सकता ह उन्हें 'रूप' कहते ह। भाषाविज्ञान का वह भाग जो रूपों का अध्ययन करता ह, उसे 'रूप विज्ञान' कहते ह।

रूपो की रचना ध्वनियों से होती ह। 'ध्वनि' भाषा की अतिम लघुतम इकाई ह। 'ध्वनि विज्ञान' भाषाविज्ञान का वह भाग है जो ध्वनियों का अध्ययन करता ह।

भाषाविज्ञान का एक और भाग ह—रूप ध्वनिग्राम विज्ञान'। इसके अतगत रूपों म होनेवाले ध्वनिग्रामिक परिवतनों का अध्ययन किया जाता ह।

कुछ लोग शब्दो के अध्ययन का एक अलग विभाग 'शब्द विज्ञान' अथवा शब्दावली-विज्ञान' मानते हैं। यों 'रूप विज्ञान के अतगत ही शब्दों का अध्ययन भी होता ह।

नीचे की तालिका में भाषा के अगो एव भाषाविज्ञान के विभागो का परस्पर सबध दर्शाया गया है।



आगामी परिच्छेदों में भाषाविज्ञान के उपर्युक्त विभागों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

अर्थ विज्ञान

अर्थ विज्ञान, भाषाविज्ञान का वह भाग है जो भाषा के अर्थ-तत्त्व का अध्ययन करता है। अर्थ विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि एवं अर्थ के परस्पर संबंध का विवेचन होता है। इसमें अर्थ की संरचना, उसकी विभिन्न स्थितियाँ, अर्थ परिवर्तन के कारणों, दिशाओं एवं परिणामों का अध्ययन विश्लेषण होता है। अर्थ विज्ञान के अंतर्गत किसी भाषा विशेष की अर्थ-व्यवस्था का वर्णन भी होता है। उदाहरणार्थ यह बतलाना अर्थ विज्ञान का कार्य है कि 'मृग' शब्द का अर्थ कैसे संकुचित होकर 'प्रत्येक प्राणी' के स्थान पर एक विशेष प्राणी (हिरन) हो गया है। यह भी अर्थ विज्ञान ही बतलाएगा कि 'तैल' शब्द का अर्थ कैसे विकसित होकर 'तिल से निकला हुआ तरल पदार्थ' के स्थान पर 'किसी भी पदार्थ से निकला हुआ चिकना-तरल पदार्थ' हो गया।

वाक्य विज्ञान

वाक्य विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र है वाक्य। वाक्य विज्ञान में वाक्य की रचना अथवा गठन का विवेचन विश्लेषण किया जाता है। यह अध्ययन सैद्धांतिक भी हो सकता है और किसी भाषा विशेष का भी। वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य की सीमाओं, वाक्य के विभिन्न भागों, वाक्य के संचालक तत्त्वों आदि का अध्ययन होता है। वाक्य के विभिन्न प्रकारों एवं उनकी समानता भिन्नता का वर्णन भी 'वाक्य विज्ञान' के अंतर्गत ही आता है। उदाहरणार्थ 'अच्छा घोड़ा अच्छा चलता है' इस वाक्य में 'अच्छा' शब्द दो बार आया है किंतु दोनों बार उसकी स्थिति समान नहीं है। वाक्य विज्ञान की सहायता से हमें ज्ञात होता

है कि प्रथम बार आया हुआ 'अच्छा' शब्द 'घोडा' संज्ञा से सबंधित होने के कारण विशेषण और दूसरी बार आया हुआ 'अच्छा' शब्द 'चलता' क्रिया से संबंधित होने के कारण क्रिया विशेषण है।

रूप विज्ञान

'रूप विज्ञान' रूपों के अध्ययन का नाम है। 'रूप' भाषा की सार्थक लघुतम इकाई है। यदि किसी वाक्य को सार्थक इकाइयों में विभाजित करते जाय तो जो अंतिम अविभाजित सार्थक इकाइयां प्राप्त होंगी वे 'रूप' कहलाएगी। रूप विज्ञान के अतर्गत की रचना रूपों के प्रकार रूपात्मक प्रक्रिया, अर्थ तत्व एव संबंध तत्व आदि का विवेचन होता है। रूप विज्ञान में ही शब्दों के निर्माण (किसी शब्द में उपसर्ग, प्रत्यय आदि लगाकर दूसरे शब्द बनाना, यथा, 'कर्म' शब्द से सुकर्म, कुकर्म, कुकर्मी आदि) एव शब्दों के रूपांतर (विभक्ति आदि के द्वारा किसी शब्द के विभिन्न विकारी रूप बनाना, यथा 'लडका' से लडके का विवेचन होता है। विभिन्न व्याकरणात्मक शब्दों (संज्ञा सर्वनाम आदि) का विवेचन भी रूप विज्ञान का विषय है।

ध्वनि विज्ञान

'ध्वनिविज्ञान, का संबंध 'ध्वनि' के अध्ययन से है। उच्चारण अंगों की रचना, ध्वनियों का निर्माण, ध्वनियों का वहन एव श्रवण, ध्वनियों का वर्गीकरण ध्वनि योगों की रचना आदि विषयों का विवेचन ध्वनि विज्ञान के क्षेत्र में आता है। किसी भाषा विशेष के क्षेत्र में आता है। किसी भाषा विशेष की ध्वनि संरचना का वर्णन विश्लेषण भी ध्वनि विज्ञान का विषय है। ध्वनि के अध्ययन की अनेक पद्धतियां हैं। यदि ध्वनि का अध्ययन उच्चारण अंगों के संदर्भ में किया जाता है तो यह 'उच्चारणात्मक पद्धति' कहलाती है। उच्चारण के पश्चात ध्वनि वायु तरंगों पर प्रवाहित होती है। इस स्थिति में यदि ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है तो उसे 'तरंगात्मक पद्धति' कहते है। ध्वनि श्रवण का विषय है। यदि श्रवण का आधार बनाकर ध्वनियों का अध्ययन किया जाय तो यह 'श्रवणात्मक पद्धति' कहलाएगी। विभिन्न यंत्रों की सहायता से किया गया ध्वनियों का अध्ययन 'प्रायोगिक पद्धति' के अंतर्गत आता है।

ध्वनि विज्ञान के मुख्य रूप से दो भाग किये जाते है। एक है ध्वनि विज्ञान (Phonetics) एव दूसरा है ध्वनिग्राम विज्ञान (Phonemics)। ध्वनि विज्ञान समस्त ध्वनियों का अध्ययन करता है जबकि ध्वनिग्राम विज्ञान विशिष्ट ध्वनियों (Significant Sounds) का अध्ययन करता है।

रूप ध्वनिग्राम विज्ञान

रूप ध्वनिग्रामविज्ञान में अंतर्गत रूपों में होनेवाले ध्वनिग्रामिक परिवर्तनों का विवेचन होता है। कभी-कभी एक ही रूप के एक से अधिक ध्वन्यात्मक आकार होते हैं। ऐसी स्थिति में उन्हें अनेक रूप न मानकर एक ही रूप माना जाता है। यह रूपध्वनिग्रामिक नियमों से ही संभव होता है। उदाहरणार्थ चार, चौबीस चौंतीस इन तीन संख्याओं में ४ संख्या सूचक निम्नलिखित रूप हैं

चार
चौ—(चौ + बीस = चौबीस)
चौं—(चौं + तीस = चौंतीस)

रूप ध्वनिग्रामिक नियमों के द्वारा ही यह ज्ञात हो सकेगा कि चार, चौ—चौं—, तीन भिन्न रूप न होकर एक ही रूप की तीन भिन्न ध्वन्यात्मक आकृतियाँ हैं।

शब्द विज्ञान

शब्दों के अध्ययन को ही 'शब्द विज्ञान' कहा जाता है। इसके अंतर्गत शब्दों के प्रकार, शब्दों की रचना, शब्दों का आगम आदि विषयों का विवेचन होता है। शब्दकोश निर्माण का संबंध शब्द विज्ञान से ही है। सामान्य रूप से रूप विज्ञान के अंतर्गत ही शब्दों का अध्ययन भी होता है किन्तु प्रत्येक विषय में विशिष्टता (Specialization) के कारण शब्द विज्ञान अपने आप में अध्ययन की एक अलग शाखा बन गया है।

२.५ भाषाविज्ञान के अध्ययन की पद्धतियाँ

भाषा एक ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं संश्लिष्ट व्यवस्था है कि इसका अध्ययन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। भाषा अध्ययन की ये विभिन्न दृष्टियाँ ही भाषा के अध्ययन की विभिन्न पद्धतियाँ कहलाती हैं।

भाषा के अध्ययन की मुख्य पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं

(क) वर्णनात्मक पद्धति (अर्थात् वर्णनात्मक भाषाविज्ञान)
(ख) ऐतिहासिक पद्धति (अर्थात् ऐतिहासिक भाषाविज्ञान)
(ग) तुलनात्मक पद्धति (अर्थात् तुलनात्मक भाषाविज्ञान)
(घ) व्यावहारिक पद्धति (अर्थात् व्यावहारिक भाषाविज्ञान)

२ ५ १ वर्णनात्मक पद्धति

इस पद्धति के अंतर्गत उन सिद्धांतों का उल्लेख होता है जिनकी सहायता से किसी एक समय की, किसी एक भाषा की रचनात्मक विशेषताओं का वर्णन किया जा सके। इस प्रकार इस पद्धति के दो पहलू हैं। एक पहलू है सैद्धांतिक और दूसरा पहलू है भाषा-संबद्ध। सैद्धांतिक पक्ष में उन सिद्धांतों का विवेचन होता है जिनके आधार पर किसी भाषा विशेष का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। किसी भाषा का रचनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना ही इस पद्धति का भाषा संबद्ध पहलू है। इस पद्धति को 'एक कालिक' (Sinchronic) भी कहा जाता है क्योंकि इस पद्धति का संबंध किसी एक विशेष काल की भाषा से रहता है।

इसी पद्धति का विकसित रूप संरचनात्मक पद्धति (Structural Method) कहलाता है।

२ ५ २ ऐतिहासिक पद्धति

भाषा के अध्ययन की ऐतिहासिक पद्धति में भाषा के इतिहास का अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति में एक ही भाषा के दो भिन्न समयों के मध्य हुए परिवर्तनों का अध्ययन कर उन परिवर्तनों से संबंधित नियमों की रचना की जाती है। उदाहरणार्थ यदि मध्यकालीन हिंदी एवं आधुनिक हिंदी के मध्य हुए परिवर्तनों का अध्ययन विश्लेषण किया जाय एवं यह निश्चित किया जाय कि वे किन नियमों के आधार पर हुए हैं, तो यह हिंदी का ऐतिहासिक अध्ययन ही होगा।

यह अध्ययन सदैव दो समयों या समय के दो बिंदुओं के संदर्भ में किया जाता है इस कारण इसे 'द्विकालिक पद्धति' (Diochronic Method) भी कहते हैं। वर्णनात्मक पद्धति से जहाँ भाषा के 'क्या' का बोध होता है, वहाँ ऐतिहासिक पद्धति से भाषा के 'कैसे' का ज्ञान होता है अर्थात् किसी भाषा का क्या रूप है यह वर्णनात्मक पद्धति से ही होगा। इसी अध्ययन के आधार पर किसी भाषा से संबंधित ध्वनि नियमों (Phonetic Laws) की रचना होती है।

इस पद्धति के भी सैद्धांतिक एवं भाषा संबद्ध दो पहलू हैं।

२ ५ ३ तुलनात्मक पद्धति

तुलनात्मक पद्धति में एक से अधिक भाषाओं की तुलना की जाती है। उदाहरणार्थ यदि हिंदी, गुजराती, मराठी आदि की भाषागत विशिष्टताओं की

तुलना की जाय तो यह तुलनात्मक पद्धति कहलाएगी। यह तुलना भाषाओं के किसी भी समय की हो सकती है। आधुनिक हिंदी एवं आधुनिक मराठी की भी हो सकती है तो आज से एक हजार वर्ष पूर्व की हिंदी एवं उसी समय की मराठी की तुलना भी हो सकती है। तुलना केवल निकटवर्ती भाषाओं की ही नहीं होती, किन्हीं भी भाषाओं की हो सकती है। उदाहरणार्थ हिंदी एवं रूसी अथवा हिंदी एवं अरबी की भी तुलना की जा सकती है।

इस अध्ययन के आधार पर ही भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है तथा विभिन्न भाषा-परिवार बनाये जाते हैं।

२ ५ ४ व्यावहारिक पद्धति

जिस पद्धति में भाषा संबंधी जानकारी का प्रयोग, अन्य विषयों में किया जाता है उस पद्धति को व्यावहारिक पद्धति अथवा व्यावहारिक भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) कहते हैं। इस दृष्टि से व्यावहारिक पद्धति, भाषा के अध्ययन की कोई पद्धति नहीं है, वह तो भाषा संबंधी जानकारी के प्रयोग की पद्धति है। उदाहरणार्थ विभिन्न पद्धतियों द्वारा भाषा संबंधी प्राप्त जानकारी का प्रयोग विदेशी भाषा सिखलाने, किसी जाति अथवा जन-जाति की संस्कृति का विवेचन करने, किसी व्यक्ति अथवा समूह की मानसिक अवस्था को समझने के लिये किया जा सकता है। आजकल तो भाषा संबंधी जानकारी का प्रयोग बोलने की त्रुटियों (तुतलाहट आदि) को दूर करने के लिए भी किया जाता है। पाठ्य पुस्तकों की रचना, व्याकरण निर्माण, नवीन लिपि की रचना आदि कार्यों में तो भाषा संबंधी जानकारी की अनिवार्यता निर्विवाद है। भाषाविज्ञान के इस व्यावहारिक पक्ष की तुलना इंजीनियरिंग एवं डाक्टरी शिक्षा से की जा सकती है। गणित एक विज्ञान है। गणित संबंधी जानकारी का प्रयोग इंजीनियरिंग में किया जाता है अतः इंजीनियरिंग को व्यावहारिक गणित कहा जायगा। वैसे ही डाक्टरी विद्या को व्यावहारिक रसायन शास्त्र कहा जा सकता है।

२ ६ भाषाविज्ञान एवं अन्य शास्त्र

भाषाविज्ञान, भाषा का अध्ययन करता है। भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। प्रायः प्रत्येक शास्त्र (किसी भी प्रकार के ज्ञान) को भाषा का उपयोग करना ही पड़ता है। इस कारण भाषाविज्ञान का संबंध प्रायः समस्त शास्त्रों से है। समस्त शास्त्रों के दो वर्ग किए जाते हैं। एक वर्ग में

भौतिक शास्त्र (Natural Sciences) एवं दूसरे वर्ग में मानविकी शास्त्र (Humanities) रखे जाते हैं। इनमें से कुछ शास्त्रों के साथ भाषाविज्ञान का पर्याप्त संबंध है और कुछ के साथ उसका थोड़ा सा संपर्क है। जिन शास्त्रों के साथ इसका निकट का संबंध है, वे हैं साहित्य, व्याकरण, इतिहास, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, प्रजातीय शास्त्र एवं शिक्षाशास्त्र। जिन शास्त्रों से उसका थोड़ा संबंध है, वे हैं, शरीर शास्त्र, पदार्थ शास्त्र, भू शास्त्र (भूगोल), संचार शास्त्र (Communication Engineering) एवं दर्शन शास्त्र।

भाषाविज्ञान एवं साहित्य

साहित्य एवं भाषाविज्ञान में यथेष्ट संबंध है। अपनी प्रकृति में साहित्य एक प्रकार की कला है जबकि भाषाविज्ञान एक प्रकार का विज्ञान है। दोनों के मध्य संबंध का मुख्य कारण है 'भाषा'। भाषाविज्ञान के लिए भाषा अध्ययन का साध्य है। साहित्य के लिए भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। साहित्य मुख्य रूप से भाषाविज्ञान के लिये सामग्री जुटाने का कार्य करता है। किसी भी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन उस भाषा की उपलब्ध साहित्यिक सामग्री के प्रयोग से ही हो सकता है। प्राचीन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में भी संबंधित भाषाओं के साहित्य से ही सामग्री प्राप्त की जाती है। उदाहरणार्थ हिंदी के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना हो तो उसकी पुरानी रचनाओं के आधार पर ही किया जा सकता है। संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी उन भाषाओं के साहित्य की सहायता से ही किया जा सकता है।

जीवित भाषाओं के अध्ययन में भी साहित्य से भाषाविज्ञान को सहायता मिलती है। साहित्यिक भाषा सामान्य भाषा से कुछ भिन्न है। भाषावैज्ञानिक के लिए यह अध्ययन का विषय है कि एक ही समुदाय में प्रचलित साहित्यिक भाषा सामान्य भाषा से किन बातों में भिन्न है तथा उस भिन्नता की क्या सामान्य विशेषताएं हैं।

एक ओर यदि साहित्य के द्वारा भाषाविज्ञान के अध्ययन में सहायता मिलती है तो दूसरी ओर भाषा का व्यवस्थित जानकारी से कई साहित्यिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है। साहित्यिक रचनाओं की प्राचीनता, प्रामाणिकता एवं शुद्धपाठ के निर्णय में भाषाविज्ञान से बहुत सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ हिंदी साहित्य के वीरगाथा-काल की रचनाओं की

प्रामाणिकता अप्रामाणिकता का निर्णय मुख्य रूप से भाषा के आधार पर ही किया गया है।

भाषाविज्ञान एवं व्याकरण

एक समय था जब व्याकरण एवं भाषाविज्ञान को एक ही विषय समझा जाता था। आज ऐसा नहीं समझा जाता।

व्याकरण किसी विशेष समय की किसी विशेष भाषा के शुद्ध प्रयोग संबंधी नियमों का समूह है। भाषाविज्ञान की वर्णनात्मक पद्धति द्वारा किसी भी भाषा की समस्त संरचनात्मक विशेषताओं का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। व्याकरण भाषाविज्ञान द्वारा प्रस्तुत उस सामग्री का प्रयोग करते हुए ऐसे नियमों का निर्माण करता है, जिनसे भाषा का शुद्ध प्रयोग (अर्थात भाषा का ऐसा प्रयोग जो शिष्ट जनों का स्वीकृत हो) किया जा सके।

ऐतिहासिक व्याकरण का आधार ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पर है एवं एक से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण, तुलनात्मक भाषाविज्ञान की सहायता से ही तैयार किया जा सकता है।

भाषाविज्ञान यथार्थवादी है क्योंकि वह भाषा में प्रचलित समस्त प्रयोगों का स्वीकार करता है किंतु व्याकरण आदर्शवादी है क्योंकि व्याकरण में उन्हीं प्रयोगों को स्वीकार किया जाता है जो शिष्ट जनों द्वारा स्वीकृत हों। पाणिनि भाषावैज्ञानिक एवं वैयाकरण दोनों थे। भाषावैज्ञानिक के रूप में उन्होंने उस समय में प्रचलित समस्त संस्कृत रूपों का विवेचन किया है। वैयाकरण के रूप में उन्होंने उन रूपों में से कुछ रूपों का स्वीकार किया है एवं अन्य रूपों को या तो अमान्य किया है या तो उन्हें अपवाद के रूप में रखा है।

भाषाविज्ञान एवं इतिहास

संस्कृतियों एवं देशों के समान भाषाओं का भी इतिहास होता है। भाषाओं का इतिहास दो प्रकार का होता है—भीतरी इतिहास एवं बाहरी इतिहास। भाषा के बाहरी इतिहास का संबंध भाषा की बाह्य परिस्थितियों से है। यहीं पर भाषा एवं इतिहास का संबंध जुड़ता है। इतिहास ऐसी घटनाओं (वास्तव में परिस्थितियों) का चिट्ठा है जिन घटनाओं ने समाज का निर्माण करने में भाग लिया है। भाषा समाज से संबद्ध होने के कारण इन बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होती है। यह पहले ही बता दिया गया है कि कैसे

इस्लामी एवं अंग्रेजी शासन ने हिंदी को प्रभावित किया तथा भक्ति-आंदोलन ने ब्रजभाषा के विकास में सहायता प्रदान की। जब स्वतंत्र भारत का नया इतिहास लिखा जायगा तब भाषा पर आधारित प्रांत रचना, भाषाई झगड़े राजभाषा एवं संपर्क भाषा की समस्या तथा उसका प्रभाव आदि विषयों के विवेचन में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं का विवेचन होगा ही। हिंदी के वर्तमान स्वरूप को तभी सही अर्थों में समझा जा सकता है जब उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझा जाय।

इतिहास के अनेक तथ्यों को समझने में भाषागत सामग्री बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। भाषा के प्रकाश में ही आर्यों के इतिहास के अनेक तथ्य स्पष्ट हो सके हैं।

भाषाविज्ञान एवं मनोविज्ञान

विचार एवं भाषा में निकट संबंध है। विचार को अव्यक्त भाषा तथा भाषा को व्यक्त विचार कहा जाता है।

विचार का अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। विचार अमूर्त होता है। उसका अध्ययन तभी किया जा सकता है जब वह मूर्त रूप धारण करे। भाषा, विचार का मूर्त रूप है। अतः विचार के अध्ययन में भाषा का अध्ययन (भाषाविज्ञान) सहायक सिद्ध होता है। इसी से आज-कल मानसिक रोगियों की मानसिक स्थिति को समझने तथा उनका उपचार करने में भाषाविज्ञान से सहायता ली जाती है।

भाषा के अध्ययन में भी मनोवैज्ञानिक जानकारी का उपयोग किया जा सकता है। भाषा के बौद्धिक पक्ष अर्थात् अर्थ का संबंध विचार से है। इसलिए शब्दों के अर्थ निर्धारण, अर्थ भिन्नता, अर्थ परिवर्तन जैसे विषयों के विवेचन में मनोविज्ञान की सहायता ली जा सकती है।

ऐसा अध्ययन जिसमें मनोविज्ञान एवं भाषाविज्ञान एक-दूसरे के सहायक हों मनोवैज्ञानिक भाषाविज्ञान (Psycho linguistics) कहलाता है।

भाषाविज्ञान एवं समाजशास्त्र

भाषाविज्ञान का समाजशास्त्र से पर्याप्त संबंध है। समाजशास्त्र मनुष्य का सामाजिक परिवेश में अध्ययन करता है। समाजशास्त्र में उन समस्त सामाजिक रूपों परिस्थितियों एवं संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है जो मनुष्य की जीवन

पद्धति को प्रभावित करती है। भाषा एक सामाजिक सस्था है जो मनुष्य के सपूर्ण सामाजिक जीवन का आधार है। इसलिए समाजशास्त्र के लिए भाषा के अध्ययन की बहुत अधिक उपयोगिता है। बहुत से सामाजिक तथ्यों का पता भाषा के द्वारा ही लग पाता है। उदाहरणार्थ आर्यों के सामाजिक जीवन सबधी बहुत सी जानकारी आर्यों की भाषा से ही प्राप्त हुई है।

जैसे समाज के अध्ययन में भाषा सबधी जानकारी उपयोगी सिद्ध होती है वैसे ही भाषा के अध्ययन में समाजशास्त्रीय अध्ययन से सहायता प्राप्त होती है। किसी भी जाति की सामाजिक रचना एव संस्कृति को समझे बिना, उस जाति की भाषा का पूरा अध्ययन नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ प्रेम शब्द का जो अर्थ भारतीय समाज में है, अग्रेजी का लव (love) शब्द उस अर्थ को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाता। भारतीय संस्कृति को समझे बिना प्रेम, श्रद्धा, भक्ति जैसे शब्दों के अर्थ को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता।

भाषाविज्ञान एव शिक्षाशास्त्र

शिक्षा, विशेषकर भाषा की शिक्षा से भाषाविज्ञान का निकट सबध है। यह निर्णय करना भाषावैज्ञानिक का ही कार्य है कि भाषा में क्या कैसे सिखाया जाय। भाषा की पाठ्य एव सहायक पुस्तकों की रचना, व्याकरण का निर्माण, वर्तनी का निर्धारण, लिपि का निर्माण एव सुधार आदि शिक्षा के कुछ ऐसे विषय हैं जिनमें भाषा विज्ञान के अनिवार्य रूप से सहायता ली जानी चाहिए। किस अवस्था में कितनी और कौन सी भाषाएं सिखलाई जाय, इसका निर्णय भी राजनीतिज्ञों को नहीं, भाषा वैज्ञानिकों को करना चाहिए।

मातृभाषा के सिवाय अन्य भाषाओं के सिखलाने में तो भाषा वैज्ञानिक जानकारी और भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। भाषा वैज्ञानिक जानकारी एव यत्रों की सहायता से बड़े थोड़े समय में बहुत उत्तम ढग से विदेशी भाषा की शिक्षा दी जा सकती है।

इस प्रकार भाषा की शिक्षा में भाषा विज्ञान सहायक सिद्ध होता है।

भाषाविज्ञान एव अन्य शास्त्र

उपर्युक्त विज्ञानों एव शास्त्रों के अतिरिक्त भाषा विज्ञान का अन्य विज्ञानों शास्त्रों से सबध है।

ध्वनियों का संबद्ध उच्चारण अगों एवं श्रवण अगों से है। इसलिए ध्वनियों के अध्ययन में 'शरीर विज्ञान' से भी सहायता लेनी पडती है। वैसे ही उच्चारण की त्रुटियाँ (Speech defects) को समझने एवं सुधारने में भाषा विज्ञान से सहायता ली जा सकती है। 'उच्चारण उपचार' (Speech Therapy) अध्ययन की वह शाखा है जिसमें भाषा विज्ञान एवं शरीर विज्ञान के अध्ययन-क्षेत्र मिलते हैं।

उच्चारण के पश्चात् ध्वनियाँ वायु तरंगों की सहायता से प्रसारित होकर दूसरे व्यक्ति के कान तक पहुँचती है। वायु-तरंगों एवं ध्वनि के परस्पर प्रभाव का अध्ययन 'पदार्थ विज्ञान' के अंतर्गत होता है। ध्वनियों के तरंगात्मक (Acoustic) एवं प्रायोगिक (Experimental) अध्ययन में भाषा विज्ञान से सहायता लेनी पडती है। इस प्रकार भाषा विज्ञान का संबंध पदार्थ विज्ञान से भी है।

भूगोल' तथा भूशास्त्र से भी भाषा विज्ञान का अच्छा संबंध है। भाषा विज्ञान के अध्ययन का एक विषय 'भाषा भूगोल' भी है। अध्ययन में भाषा के भौगोलिक वितरण, भौगोलिक परिस्थितियों के कारण हुए भाषाई परिवर्तन किसी भाषा का बोलियों में विभाजन तथा उन बोलियों का परस्पर भौगोलिक संबंध आदि विषयों का विवेचन होता है। इन विषयों के अध्ययन में भाषाविज्ञान भूशास्त्र से सहायता लेता है। ऐसे ही भाषा में प्राप्त शब्दों के द्वारा कितने ही भौगोलिक तथ्यों का पता लगता है। 'पंजाब' शब्द से ही तो यह भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है कि इस स्थान पर पाँच नदियाँ स्थित है।

भाषा का संबंध 'प्रजातीय विज्ञान' (Ethnology) से भी पडता है। प्रजातीय विज्ञान का संबंध मनुष्य के सामाजिक विकास से है। जातियों एवं जन जातियों के अध्ययन में भाषा विज्ञान एवं प्रजातीय विज्ञान एक दूसरे के लिए सहायक सिद्ध होते हैं। इन दोनों के सम्मिलित अध्ययन का नाम प्रजातीय भाषा विज्ञान (Ethno-linguistics) है।

संचार विज्ञान' अथवा 'संचार प्राविधि' (Communication Engineering) भाषा के संचार अर्थात् प्रसार का विज्ञान है। भाषा विज्ञान द्वारा जो भाषा की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है उसका प्रयोग संचार विज्ञान में किया जाता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान एवं संचार विज्ञान का आपस में संबंध है।

भाषाविज्ञान का संबंध दर्शनशास्त्र से भी है। दर्शनशास्त्र में विचार का अध्ययन किया जाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि भाषा एक प्रकार का व्यक्त विचार है, इसलिए भाषाविज्ञान एवं दर्शनशास्त्र में निकट का संबंध है। भाषा के बौद्धिक पक्ष अर्थात् अर्थ का संबंध विचार से है। अर्थ विवेचन में दर्शनशास्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। यों ही भाषा विज्ञान द्वारा प्रस्तुत अर्थ संबंधी जानकारी का प्रयोग दर्शनशास्त्र में किया जाता है।

इस प्रकार से देखा जाय तो भाषाविज्ञान का संबंध प्रायः ज्ञान की समस्त शाखाओं से है।

२.७ भाषाविज्ञान के अध्ययन की उपयोगिता अथवा लाभ

सामान्य रूप से कला का उद्देश्य मनुष्य की भावात्मक तृषा एवं विज्ञान का उद्देश्य उसकी ज्ञानात्मक उत्कंठा को तृप्त करना है। इसलिए प्रत्येक विज्ञान का मुख्य हेतु केवल मनुष्य की जिज्ञासा को शांत करना होता है। उसके अन्य समस्त हेतु अथवा लाभ उससे प्राप्त जानकारी का उपयोग करने से ही प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ गणित विज्ञान का उद्देश्य मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि करना है। आज गणित विज्ञान से प्राप्त जानकारी का प्रयोग कर अनेक लाभ उठाए जा रहे हैं।

उसी प्रकार भाषाविज्ञान के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की भाषा संबंधी उत्कंठा को तृप्त करना है। यों भाषाविज्ञान द्वारा प्रस्तुत भाषा संबंधी व्यवस्थित जानकारी का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग कर उससे अनेक लाभ उठाए जा रहे हैं। इन्हें ही भाषाविज्ञान के लाभ अथवा उसकी उपयोगिता कहा जा सकता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान के अध्ययन से कई लाभ होते हैं जिनमें से कुछ का यहाँ वर्णन किया जाता है।

(१) भाषा मनुष्य के दैनिक व्यवहार की वस्तु है किंतु वह अत्यंत चकित करनेवाली वस्तु है। भाषा की व्यवस्थित जानकारी से मनुष्य की भाषा संबंधी जिज्ञासा शांत होती है।

(२) भाषा की वैज्ञानिक जानकारी से प्राचीन इतिहास पर जोर पड़ता है। जैसे भारोपीय भाषा की जानकारी से आर्यों के प्राचीन इतिहास की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है।

(३) भाषा की वैज्ञानिक जानकारी से किसी जाति की संस्कृति को समझने में सहायता मिलती है। आर्यों की प्राचीन संस्कृति की बहुत सी जानकारी आर्यों की भाषा के माध्यम से ही प्राप्त हुई है।

(४) भाषाविज्ञान का कई मानवीय एवं भौतिक विज्ञानों से संबंध है। भाषाविज्ञान के अध्ययन से उन विज्ञानों का समझने में सहायता मिलती है। विशेषकर मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, इतिहास आदि का तो भाषा विज्ञान से निकट का संबंध है। यों शरीर विज्ञान, संचार प्राविधि (Communication Engineering) से भी उसका संबंध है। इसलिए आजकल जन-जातियों के अध्ययन, मानसिक रोगियों के परीक्षण, उच्चारणगत दोषों के निवारण आदि में भाषावैज्ञानिकों से सहायता ली जाती है। भाषा पर आधारित राज्य गठन ने भाषावैज्ञानिक को राजनीति से भी जोड़ दिया है। भाषागत सीमा विवादों को निपटाने के लिए आजकल भाषावैज्ञानिकों की सहायता ली जा रही है। राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा या राज्य भाषा अथवा शिक्षा के माध्यम की भाषा जैसे प्रश्न राजनीति के प्रश्न होने पर भी भाषाविज्ञान से जुड़े हुए हैं। ऐसी कई राजनैतिक समस्याएं भाषाविज्ञान की सहायता से सुलझाई जा सकती हैं।

(५) विदेशी भाषाओं को सीखने में भाषावैज्ञानिक से बहुत अधिक सहायता मिलती है। विदेशी भाषा सीखना कितना श्रमसाध्य है, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि स्कूलों में १०-१२ वर्ष अंग्रेजी का अध्ययन करने पर भी साधारणतया भारतीय बालक में इतनी योग्यता नहीं होती कि वह अंग्रेजी के चार वाक्य शुद्ध लिख सके अथवा बोल सके। भाषा वैज्ञानिक पद्धति से, प्रयोगशाला की सहायता से यदि विदेशी भाषा सिखाई जाय तो ६ सप्ताहों के अभ्यास से विद्यार्थी इतनी योग्यता प्राप्त कर सकता है कि वह उस विदेशी भाषा में बड़ी सरलता एवं सहजता से वार्तालाप कर सके।

(६) भाषावैज्ञानिक जानकारी का एक लाभ शिक्षा के क्षेत्र में लिया जा सकता है। इस जानकारी के आधार पर भाषा संबंधी पाठ्य पुस्तकों के तैयार करने में बड़ी सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ विद्यालयों में पहले दिन से 'क ख' आदि वर्णों के लिखने से पढ़ाई आरंभ होती है। भाषाविज्ञान का यह माना हुआ तथ्य है कि सीखने की चार अवस्थाएं क्रम से सुनना' 'बोलना 'पढ़ना' एवं लिखना है अर्थात् 'लिखना' अंतिम अवस्था है उसी से भाषा सीखने का आरंभ किया जाता है। फिर यह भी एक तथ्य है कि कंठ से निकलनेवाली ध्वनियाँ (प फ आदि) से अधिक श्रम-साध्य होती है इसलिए भाषा सिखाते समय आरंभ प फ से करना चाहिए न कि क ख से।

(७) प्राचीन साहित्य के समझने एवं उसकी प्रामाणिकता का परखने में भाषावैज्ञानिक जानकारी उपयोगी होती है। जब यह ज्ञात हो गया कि प्राचीन काल का मूर्धन्य ध्वनि 'ष' का उच्चारण मध्यकाल तथा उसके पूर्व कुछ बोलियों में 'ख' हो गया तब कबीर आदि मध्यकालीन कवियों में लिखित 'ष' का 'ख' उच्चारण कर उसके सही पाठ समझने में सुविधा प्राप्त हुई। ऐसे ही पृथ्वीराज रासो आदि रचनाओं की प्रामाणिकता में संदेह प्रायः उनकी भाषा के आधार पर उत्पन्न हुआ है। इन रचनाओं की भाषा रचना, उस काल की भाषा के अनुरूप दिखाई नहीं पड़ती।

(८) आज का युग यंत्र-युग है। जीवन के अनेक क्षेत्रों में यंत्रों का प्रयोग हो रहा है। इनमें से कई यंत्रों का संबंध भाषा से है। ऐसे यंत्रों के निर्माण में भाषावैज्ञानिक जानकारी से सहायता प्राप्त होती है। टंकण यंत्र, अनुवाद की मशीनें तथा संचार के अन्य यंत्रों के निर्माण में भाषाविज्ञान की सहायता आवश्यक है।

(९) ऐसी भाषाएं जिनकी कोई लिपि नहीं है, उनकी लिपि का निर्माण करने के लिए उस भाषा की वैज्ञानिक जानकारी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। ऐसे ही भाषा की वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर लिपि में आवश्यक सुधार संभव होता है। उदाहरणार्थ देवनागरी लिपि में आज यदि सुधार करने का विचार किया जाय तो वह हिंदी भाषा की संरचनात्मक जानकारी के आधार पर ही किया जा सकता है।

(१०) भाषा की वैज्ञानिक जानकारी से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि भाषा संबंधी अहं भाव नहीं रहता। भाषाविज्ञान के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि न तो कोई भाषा देववाणी है और न ही कोई दस्युवाणी न कोई भाषा ऊंच है और न कोई नीच, न तो कोई भाषा मधुर होती है न कोई कटु। प्रत्येक भाषा अपने आप में ऐसी सामर्थ्य रखती है कि उसके बोलनेवाले उसके माध्यम से अपने विचार सरलतापूर्वक अभिव्यक्त कर सकते हैं। भाषाविज्ञान के अध्ययन से भाषा संबंधी अनेक पूर्वाग्रह एवं दुराग्रह समाप्त हो जाते हैं। कहना न होगा कि आज भारत में भाषाविज्ञान के अध्ययन की बहुत अधिक आवश्यकता है। भाषाविज्ञान का अध्ययन न केवल भाषाई कटुता को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकता है, वरन उससे राष्ट्र की भावात्मक एकता में भी सहायता मिल सकती है।

२ ८ भाषावैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास

मनुष्य एक विचारशील एव तर्कशील प्राणी ह। अपने आसपास के समस्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने की उसमें बलवती इच्छा रहती ह। भाषा क अध्ययन के पीछे भी उसकी यही उत्कठा विद्यमान ह।

भाषा के अध्ययन का इतिहास बहुत पुराना ह। भाषा का अध्ययन एक प्रकार स जातियो एव देशो क सास्कृतिक विकास से जुडा हुआ है। जिन देशों की भाषाए विकसित साहित्य समृद्ध एव सस्कृति उच्च रहा ह, उन देशो में भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भी अधिक हुआ ह। यो तो चीन जापान, अरबस्तान आदि देशों में भी भाषावैज्ञानिक काय हुआ ह किंतु भारत एव योरोप इस अध्ययन के केंद्र रहे ह। यहा भारत एव यूरोप में हुए भाषावैज्ञानिक अध्ययन का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा ह।

२ ८ १ भारत में भाषावैज्ञानिक अध्ययन

भाषावैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि स भारत का स्थान ससार के समस्त देशों में प्रमुख ह। भारत में हुए इस अध्ययन की प्राचीनता का स्पष्ट प्रमाण है वदिक साहित्य (जो ससार का प्राचीनतम साहित्य ह) में ऐसा उल्लेख ह कि देवताओ ने इद्र से यह निवदन किया कि वे उनकी वाणी को खडो में विभाजित कर दें। वैदिक साहित्य का समय ई० पूव १५वी शताब्दी से भी पहले का माना जाता है।

भारत में हुए भाषावैज्ञानिक अध्ययन को दो कालों—प्राचीनकाल एव आधुनिककाल—से विभाजित किया जा सकता ह। प्राचीन अध्ययन मुख्य रूप से व्याकरणिक ह तथा आधुनिक काल के अध्ययन का आधार आधुनिक भाषा विज्ञान ह। प्राचीन काल का अध्ययन मुख्य रूप से प्राचीन एव मध्यकालीन आयभाषाओ के अध्ययन तक सीमित ह। आधुनिक काल का अध्ययन प्रर्याप्त मात्रा में विस्तृत है। उसमें न केवल प्राचीन एव तत्कालीन भाषाओ का अध्ययन हुआ ह वरन् भाषा से सबद्ध अनेक विषयो का विवेचन हुआ ह।

प्राचीन अध्ययन

अध्ययन की सुविधा के लिए इस अध्ययन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता ह प्राचीन भाषाओ का अध्ययन एव मध्यकालीन भाषाओ का अध्ययन।

प्राचीन भाषाओं का अध्ययन

प्राचीन भाषाओं के अध्ययन को तीन काल-खंडों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) पाणिनि से पूर्व का अध्ययन।
(ख) पाणिनिकालीन अध्ययन।
(ग) पाणिनि के पश्चात का अध्ययन।

(क) पाणिनि से पूर्व का अध्ययन

पाणिनि से पूर्व का अध्ययन ब्राह्मण ग्रंथों से आरम्भ होता है। ये ग्रंथ वेदों के पश्चात रचे गए थे। ऐतरेय ब्राह्मण इस दृष्टि से मुख्य है। इन ग्रंथों में भाषा को खंडों में विभाजित करने तथा शब्दों के अर्थ समझाने का प्रयत्न किया गया है।

ब्राह्मण ग्रंथों के पश्चात 'पदपाठ' की पद्धति आरंभ हुई। इस पद्धति में वेद-वाक्य, पदों में विभाजित किये गए। इस विभाजन में संधि, समास, स्वराघात आदि पर ध्यान दिया गया।

भाषा का अधिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन प्रातिशाख्यों एवं शिक्षाग्रंथों में मिलता है। प्रातिशाख्यों में वैदिक संहिताओं के उच्चारण को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। इस कारण इनमें उच्चारण से संबद्ध विषयों यथा ध्वनियों का वर्गीकरण, उच्चारण, मात्रा, स्वराघात आदि की चर्चा है। इसके साथ ही प्रातिशाख्यों में शब्द भेदों (नाम आख्यात उपसर्ग आदि) की भी चर्चा है। शिक्षाग्रंथों का संबंध भी मुख्य रूप से ध्वनि विवेचन से है।

वैदिक शब्दावली को सुरक्षित रखने के लिए उनका संग्रह किया गया जिन्हें निघंटु कहते हैं। निघंटु वैदिक शब्दों का कोश है।

पाणिनि पूर्व के भाषा अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण है यास्क' रचित निरुक्त। निरुक्त का आधार निघंटु है। निघंटु में केवल शब्दों का संग्रह है उनके अर्थ का विवेचन नहीं है। निरुक्त में, निघंटु के शब्दों के अर्थ का विवेचन किया गया है। वह्कि संहिता से प्रयोग के उदाहरण देकर उनके अर्थ को स्पष्ट किया गया है। निरुक्त संभवतः विश्व का ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें अर्थ का ऐसा सूक्ष्म एवं विशद् विवेचन है। अर्थ विवेचन के अतिरिक्त निरुक्तकार ने भाषा की उत्पत्ति रचना शब्द एवं अर्थ का संबंध शब्द भेद आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला है। पाणिनि ने जिस धातु सिद्धांत का प्रतिपादन किया था,

उसका संकेत यास्क ने ही किया था। यों तो पाणिनि से पूर्व के कुछ अन्य वैयाकरणों यथा आपिशलि, काशकृत्स्न, इन्द्र आदि का उल्लेख भी मिलता है किन्तु ये इतने प्रसिद्ध नहीं हुए।

(ख) पाणिनि कालीन अध्ययन

इसके पश्चात् पाणिनि का आविर्भाव होता है। जिन्होंने संस्कृत भाषा का विवेचन करते हुए 'अष्टाध्यायी' की विस्मयकारी रचना की।

पाणिनि का जन्म भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश, गांधार के शालातुर नामक स्थान पर हुआ था। उनका समय ई० पूर्व ५वीं शताब्दी के आसपास माना जाता है।

पाणिनि निस्सदेह विश्व के सर्वश्रेष्ठ भाषावैज्ञानिक थे, जिन्होंने संस्कृत जैसी जटिल भाषा का वैज्ञानिक पद्धति से, सूत्र रूप में वर्णन किया है। यह वर्णन इतना पूर्ण संक्षिप्त एवं तत्वपूर्ण है कि आधुनिक भाषावैज्ञानिक भी इसका लोहा मानते हैं।

अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं, प्रत्येक अध्याय में चार पाद और प्रत्येक पाद में कई सूत्र हैं। कुल सूत्रों की संख्या चार हजार के लगभग है। इन चार हजार सूत्रों का आधार चौदह मुख्य सूत्र हैं, जिन्हें माहेश्वर सूत्र कहते हैं। मात्र चौदह सूत्रों में संस्कृत जैसी भाषा का संपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करना सही अर्थों में बुद्धि के चमत्कार का ज्वलंत उदाहरण है। अष्टाध्यायी की मुख्य विशेषताएं हैं—ध्वनियों के निर्माण एवं वर्गीकरण का वर्णन, शब्दों का सुबन्त एवं तिङन्त वर्गों में विभाजन, समस्त शब्दों को मूल धातु से जोड़ना, मूल इकाई के रूप में वाक्य की मान्यता।

पाणिनि काल में ही कात्यायन एवं पतञ्जलि की भी गणना की जानी चाहिए। यों उनका समय पाणिनि के कुछ बाद का है किंतु इनके कार्य का आधार पाणिनि की अष्टाध्यायी ही है।

कात्यायन का समय ई० पूर्व २–३ शताब्दी माना जाता है। कात्यायन ने 'वार्तिक' में पाणिनि के सूत्रों की विवेचना की एवं उनके दोष दिखलाने का प्रयत्न किया।

पतञ्जलि ने, जिसका समय ई० पूर्व १५० के आसपास माना जाता है, 'महाभाष्य' की रचना की। महाभाष्य का उद्देश्य कात्यायन के इस विचार

का खंडन करना था कि पाणिनि के सूत्रों में कोई दोष है। पतञ्जलि ने कात्यायन की उठाई हुई शंकाओं का उत्तर देने के साथ-साथ पाणिनि के कठिन सूत्रों की व्याख्या भी प्रस्तुत की।

पाणिनि कात्यायन एवं पतञ्जलि को 'मुनित्रय' कहा जाता है। इन तीनों महान वैयाकरणों ने संस्कृत भाषा के अध्ययन को पूर्णता प्रदान की है।

(ग) पाणिनि के पश्चात का अध्ययन

प्राचीन भाषा संस्कृत के अध्ययन की परंपरा यद्यपि पाणिनि काल के पश्चात भी बराबर चलती रही किंतु पाणिनि काल के पश्चात् किसी मौलिक वैयाकरण का प्रायः अभाव-सा रहा। परवर्ती वैयाकरण मुख्य रूप से टीकाकार थे, जिनका कार्य अष्टाध्यायी की टीका तक ही सीमित है। इन टीकाकारों में मुख्य थे काशिकाकार, जयादित्य एवं वामन तथा वाक्यपदीयकार भर्तृहरि। टीकाओं के अतिरिक्त अष्टाध्यायी के स्पष्टीकरण के लिए कौमुदियों की रचना भी हुई। कौमुदीकारों में प्रसिद्ध हैं—'रूपमाला' के लेखक विमल सरस्वती तथा सिद्धांत कौमुदीकार भट्टोजि दीक्षित।

मध्यकालीन भाषाओं का अध्ययन

(घ) पालि का अध्ययन

मध्यकालीन आर्य भाषाओं के रूप में पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का उल्लेख किया जाता है।

पालि के अध्ययन से संबद्ध तीन वैयाकरण प्रसिद्ध हैं। ये हैं—कच्चायन, मोग्गलायन, अग्गवंस। कच्चायन की रचना 'कच्चायन व्याकरण' है। विमलबुद्धि द्वारा की गई कच्चायन की टीका बहुत प्रसिद्ध है। कच्चायन का समय ई० की ८वीं, ९वीं, शताब्दी के आसपास माना जाता है।

मोग्गलायन का समय १२वीं शताब्दी के निकट का है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मोग्गलायन व्याकरण' है। मोग्गलायन ने स्वयं भी उस व्याकरण की टीका लिखी थी। इसके सिवाय कुछ दूसरी टीकाएं भी इस ग्रंथ पर लिखी गईं।

अग्गवंस का समय भी १२ शताब्दी माना जाता है। उनकी रचना है 'सिद्दनीति'। यह रचना भारत की अपेक्षा बर्मा एवं लंका में अधिक प्रचलित है।

(र) प्राकृत एव अपभ्रश का अध्ययन

प्राकृत भाषाओं के अध्ययन से सबद्ध प्राचीनतम रचना वररुचि द्वारा रचित 'प्राकृत प्रकाश' है। वररुचि का समय ५वी शताब्दी के आसपास माना जाता है। प्राकृत प्रकाश में विभिन्न प्राकृत भाषाओं का वर्णन है। महाराष्ट्री प्राकृत का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है।

प्राकृत पर लिखी अन्य प्रसिद्ध रचनाए हैं—हेमचद्र द्वारा रचित 'सिद्ध हेमचद्र' (१२वी शताब्दी) त्रिविक्रम द्वारा लिखित 'प्राकृत व्याकरण' (१३वी शताब्दी), एव मारकडेय द्वारा रचित 'प्राकृत सर्वस्व' (१७वी शताब्दी)। इनमें से हेमचद्र की रचना में प्राकृत भाषाओं के साथ अपभ्रश का भी विवेचन मिलता है। अपभ्रश पर लिखी स्वतत्र रचना का अभाव है। अपभ्रश का विवेचन प्राय प्राकृत भाषाओं के साथ ही मिलता है। अपभ्रश का सबसे विस्तृत वर्णन हेमचद्र की रचना 'सिद्ध हेमचद्र शब्दानुशासन' में, मिलता है।

(ल) अन्य

उपर्युक्त वैयाकरणों के अतिरिक्त साहित्याचार्यों, मीमासकों एव नैयायिकों ने अपनी रचनाओं में ध्वनि, शब्द-शक्ति आदि का विवेचन किया है। इस सदर्भ में ध्वन्यालोक, साहित्य-दर्पण, काव्य प्रकाश, शब्द शक्ति प्रकाशिका आदि ग्रथों का नाम लिया जा सकता है।

आधुनिक अध्ययन

जैसे साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों का श्रेय यूरोप एव यूरोपीय सस्कृत के सपर्क को दिया जाता है, वैसे ही आधुनिक भाषावैज्ञानिक अध्ययन का श्रेय भी यूरोपीय विद्वानों को है। इन विद्वानों ने आधुनिक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों का प्रयोग करते हुए प्राचीन, मध्यकालीन एव आधुनिक (आर्य एव आर्येतर) भाषाओं का अध्ययन किया है। आधुनिक अध्ययन का आरभ १९वी शताब्दी से आरभ होता है। इन यूरोपीय विद्वानों में से प्रसिद्ध विद्वानों का परिचय यहा दिया जा रहा है।

बिशप काल्डवेल, जिन्होंने १८५६ में 'द्रविड भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' प्रस्तुत किया।

जान बीम्स, जिन्होंने १८७२–१८७५ में अपनी प्रसिद्ध रचना 'भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' प्रकाशित की।

१८७२ में ट्रप न सिंधी व्याकरण का रचना का।

कलाग की रचना 'हिन्दी भाषा का व्याकरण' १८७९ में प्रकाशित हुई।

हानली का पूर्वी भाषाओं एव हिन्दी का तुलनात्मक अध्ययन १८८० ई० में प्रकाशित हुआ।

ग्रियसन का नाम भारतीय भाषाओं का अध्ययन करनेवाले विद्वानों में सबस अधिक प्रसिद्ध है। या तो विहारा भाषा पजाबी भाषा एव कश्मीरी भाषा पर प्रकाशित इनकी रचनाए भी प्रसिद्ध ह, किंतु भाषावैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र में इनकी अमर रचना ह 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण'। यह महान एव विशाल ग्रथ ११ खडो में ह तथा इसमें भारत का भाषाओं एव उनकी बोलिया की व्याकरणात्मक सरचना का विशद विवेचन है।

टनर का 'नेपाली कोश' भी एक अद्वितीय रचना है, जिसमें नेपाली शब्दों की व्युत्पत्ति देने के साथ साथ भारत का मुख्य भाषाओं के तुलनात्मक शब्द भी दिए गए ह। टनर की सिंधी गुजराती एव मराठी पर भी महत्त्वपूर्ण रचनाए प्रकाशित हुई ह।

जूल ब्लाख की प्रसिद्ध रचनाए ह, 'मराठी की रचना' एव 'भारतीय आय भाषाए'।

आधुनिक भाषाविज्ञान के प्रकाशन में अनेक भारतीय विद्वानों ने भी काम किया है। इन विद्वानों में से कुछ प्रसिद्ध विद्वान हैं डॉ० तारापोरवाला, डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी डॉ० सुकुमार सेन डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, बाबू श्यामसुदर दास डॉ० बाबूराम सक्सेना डॉ० धीरेंद्र वर्मा डा० एस एम कत्रे, डॉ० ए एम घाटगे डा० पी बी पडित डॉ० मेहदले, डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० पटनायक डॉ० केलकर डा० भ० कृष्णमूर्ति, हरदेव बाहरी, *अगास्तिलिंगमपिल्लई* आदि।

वास्तविकता यह है कि भारत में आधुनिक भाषाविज्ञान का अध्ययन अध्यापन बहुत तेजी से बढ रहा है। कई विश्वविद्यालयों में भाषाविज्ञान के अलग विभाग स्थापित किए गए ह। पूना एव अन्नामलाई में भाषाविज्ञान के विशेष केंद्र ह। मैसूर में भारतीय भाषाओं का केंद्रीय सस्थान स्थापित किया गया ह। आगरा में भी के एम इस्टीट्यूट काम कर रहा ह। आज भारत को विभिन्न भारतीय भाषाओं पर अनेक विद्वान् काय कर रहे ह, जिनका विवेचन स्थान सापेक्ष ह, जिसकी यहा गुजाइश नहीं है।

२ ८ २ यूरोप में भाषावैज्ञानिक अध्ययन

यूरोप में हुए भाषावैज्ञानिक अध्ययन का काल क्रम से दो कालों में विभाजित किया जा सकता है। सुविधा के लिए इन्हें प्राचीन काल एवं आधुनिक काल नाम दिए गए हैं। १९वीं शताब्दी से पूर्व के सम्पूर्ण अध्ययन को प्राचीन काल के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस प्रकार से १९ वीं शताब्दी एवं उसके पश्चात का अध्ययन ही आधुनिक काल में आता है।

प्राचीन काल

यूनानी दार्शनिकों ने जीवन से सम्बद्ध अनेक विषयों की चर्चा की थी। भाषा के विवेचन का आरंभ भी मुख्य रूप से उन्हीं से होता है। इस दृष्टि से यूरोप में हुए भाषावैज्ञानिक अध्ययन का आरंभ सुकरात से मानना चाहिए।

सुकरात ने ध्वनि प्रतीक (अर्थात शब्द) एवं उससे अभिव्यक्त अर्थ के मध्य ऐच्छिक संबंध की स्थिति को स्वीकार किया था।

प्लेटो ने ध्वनियों के वर्गीकरण एवं वाक्य को विभाजित करने का प्रयत्न किया था।

अरस्तू ने इस दिशा में सबसे अधिक कार्य किया। उन्होंने ध्वनियों के वर्गीकरण को अधिक व्यवस्थित रूप प्रदान किया। अरस्तू ने शब्द भेदों (संज्ञा क्रिया आदि), व्याकरणिक कोटियों (लिंग, वचन आदि) तथा वाक्य के विभागों का भी विवेचन किया।

उपर्युक्त समस्त विद्वान ईसा से पूर्व हुए।

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विधिवत लिखा गया प्रथम व्याकरण थ्रैक्स द्वारा रचित 'ग्रीक भाषा का व्याकरण' है जो ईसा की दूसरी शताब्दी के आसपास लिखा गया था।

ग्रीस (जहाँ की मुख्य भाषा ग्रीक थी) एवं रोम (जहाँ की मुख्य भाषा लैटिन थी) में सम्पर्क बढ़ा। इसके फलस्वरूप ग्रीक के साथ लैटिन भाषा के अध्ययन की रुचि भी बढ़ी। १५ वीं शताब्दी के आसपास कारेंस नामक विद्वान ने लैटिन भाषा का एक सुंदर व्याकरण लिखा।

ईसाई धर्म के प्रसार से बाइबिल की भाषा, हिब्रू का भी अध्ययन होने लगा, साथ ही ग्रीक, लैटिन एवं हिब्रू के तुलनात्मक अध्ययन की नींव पड़ी।

इस प्रकार देखा जाय तो १८वीं शताब्दी के अंत तक, यूरोप में हुए भाषावैज्ञानिक अध्ययन में वह विस्तार, गम्भीरता एवं वैज्ञानिकता नहीं है

जो ईसा से ५ शताब्दियां पूर्व के भारतीय वैयाकरण पाणिनि एवं पाणिनि से भी पूर्व के भारतीय वैयाकरणों में मिलती है।

आधुनिक काल

यूरोप में हुए भाषावैज्ञानिक अध्ययन का आधुनिक काल १९वीं शताब्दी के आसपास आरंभ होता है। यह कहना अनुचित न होगा कि यूरोप में आधुनिक काल का आरंभ संस्कृत के अध्ययन एवं विवेचन से आरंभ होता है।

अध्ययन की प्रवृत्तियों एवं उसकी प्रकृति को ध्यान में रखकर आधुनिक काल को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) प्रथम चरण

प्रथम चरण का आरंभ १९वीं शताब्दी के आरंभ से मानना चाहिए। इसका विस्तार मोटे रूप से १९ शताब्दी के मध्य तक है।

इस समय का आरंभ सरविलियम जोन्स से होता है जिन्होंने कलकत्ता में संस्कृत सीखने के पश्चात यह घोषणा की कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन भाषाओं में बहुत अधिक समानता है। जोन्स की इस घोषणा से यूरोप के अन्य विद्वानों का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ तथा इस दिशा में अनेक विद्वानों ने महत्वपूर्ण कार्य किया।

इस समय के अत्यंत प्रसिद्ध विद्वान है श्लेगल, रास्क ग्रिम बाप आदि।

श्लेगल ने भारतीय भाषा एवं बुद्धिमत्ता पुस्तक लिखकर, यूरोप में संस्कृत एवं भारतीय ज्ञान की महत्ता को स्थापित किया। श्लेगल ने ही तुलनात्मक व्याकरण, ध्वनि-परिवर्तन की नियमितता, भाषाओं की समानता एवं भिन्नता (वर्गीकरण) आदि विषयों की चर्चा की।

रास्क ने आइसलैण्डिक भाषाओं का व्याकरण लिखा जो उस समय का आदर्श व्याकरण समझा जाता था। रास्क ने भाषाओं के वर्गीकरण का अधिक विवेचन किया तथा संस्कृत एवं द्रविड भाषाओं की पूर्ण भिन्नता पर प्रकाश डाला।

ग्रिम, जर्मन विद्वान थे। जर्मन भाषा का लिखा हुआ उनका व्याकरण अत्यंत प्रसिद्ध है। ग्रिम ने ही जर्मन भाषा में हुए ध्वनि-परिवर्तनों का विवेचन किया जिन्हें आगे चलकर ग्रिम नियम का संज्ञा दी गई।

फ्रांस बॉप उस समय के सबसे अधिक प्रसिद्ध विद्वान है। बाप को तुलनात्मक भाषाविज्ञान का पिता माना जाता है। बॉप ने संस्कृत, लैटिन, ग्रीक

आदि प्राचीन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण प्रस्तुत किया। बाप ने भाषाओं के वर्गीकरण को नया रूप प्रदान किया।

इस समय के भाषावैज्ञानिक अध्ययन की निम्नलिखित सामान्य प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं

इस युग में संस्कृत भाषा के अध्ययन का विशेष महत्त्व रहा। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य प्राचीन भाषाओं—लैटिन, ग्रीक आदि का भी अध्ययन हुआ। तुलनात्मक अध्ययन का आरम्भ हुआ। तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप भाषाओं के वर्गीकरण का कार्य अधिक व्यवस्थित रूप से हुआ। भाषा परिवर्तन, विशेष कर ध्वनि परिवर्तन का दिशा निर्देश किया गया।

(ख) द्वितीय चरण

द्वितीय चरण का आरम्भ १९वीं शताब्दी के मध्य से होता है। १९वीं शताब्दी के अंत तक इसका विस्तार माना जा सकता है।

इस समय के प्रसिद्ध विद्वान थे रैप, श्लाइखर मैक्समूलर ग्रासमन, वर्नर अस्कोली आदि।

रैप ने ध्वनियों का विस्तृत विवेचन किया। उन्होंने प्राचीन भाषाओं के साथ ही तत्कालीन अर्थात जीवित भाषाओं के अध्ययन की ओर भी ध्यान आकर्षित किया। ध्वनि एवं लिपि के संबंध के आधार पर रैप ने ध्वन्यात्मक अनुलेखन (जैसा उच्चार वैसा लेखन) का प्रयोग किया।

श्लाइखर ने यों तो अनेक भाषाओं विशेषकर स्लाविक, लिथुआनियन भाषाओं का विवेचन किया किंतु उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य था भारोपीय भाषा का पुनर्निर्माण करना।

मैक्समूलर का भाषाविज्ञान के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, भाषाविज्ञान को लोकप्रिय बनाना तथा उसे विज्ञान के रूप में स्थापित करना। यों तो मैक्समूलर ने भाषा से संबद्ध विभिन्न विषयों की चर्चा की है किंतु उनका अर्थ विवेचन महत्वपूर्ण है। मैक्समूलर भारत एवं भारतीय ज्ञान के प्रेमी थे। उन्होंने संस्कृत भाषा एवं नागरी लिपि की महत्ता का प्रतिपादित किया।

ग्रासमन एवं वर्नर दोनों ही जर्मन विद्वान थे। इन दोनों विद्वानों ने जर्मन भाषा में हुए ध्वनि परिवर्तन संबंधी ग्रिम नियम के अपवादों को दूर करने के लिए नियम सुझाए जो आगे चलकर 'ग्रासमैन नियम' एवं 'वर्नर नियम' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

अस्कोली प्रथम विद्वान थे जिन्होंने यह सिद्ध किया कि भारोपीय भाषा की समस्त विशेषताएं संस्कृत में सुरक्षित नहीं हैं। अस्कोली ने ही विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि भारोपीय भाषा की 'क' ध्वनि, उसकी कुछ शाखाओं में तो 'क' रही किंतु कुछ शाखाओं में स, श के रूप में विकसित हो गई। अस्कोली की इसी धारणा पर आगे चल भारोपीय परिवार में केंतुम एवं सतम समुदायों की स्थापना हुई।

उपर्युक्त विवेचन से इस समय की निम्नलिखित सामान्य प्रवृत्तियां दिखलाई पड़ती हैं।

इस समय में संस्कृत के महत्व में अपेक्षाकृत कमी आई। प्राचीन के साथ जीवित भाषाओं के अध्ययन की प्रवृत्ति जागृत हुई। भाषाविज्ञान को विज्ञान के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। भाषा एवं संस्कृति तथा भाषाविज्ञान एवं अन्य विज्ञानों के संबंध का विवेचन हुआ।

(ग) तृतीय चरण

इस चरण का आरंभ २०वीं शताब्दी के आरंभ से मानना चाहिए। ब्रुगमैन को इस चरण का प्रथम भाषावैज्ञानिक माना जा सकता है क्योंकि आगे चलकर भाषावैज्ञानिक अध्ययन में जिन नई प्रवृत्तियों का विकास हुआ, उनका सूत्रपात ब्रुगमन में मिलता है। ब्रुगमन ने भारोपीय भाषा के ऐसे विस्तृत व्याकरण की रचना की जो आधुनिक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित है। उनका वाक्य विवेचन भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इस समय के प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिकों की एक लंबी सूची है। इन विद्वानों में से कुछ के नाम हैं जेस्पर्सन, स्वीट, सस्यूर, सपीर, ब्लूमफील्ड, हरिस, हाकेट, नाइडा, ग्लीसन, पाईक, फर्थ, जेल्मस्लेव, हेयल आर्स, मार्तीनेट, वाख्रिम, स्ट्रूर्वा, हुनिगस्वाल्ड, चॉमस्की आदि।

इस युग में भाषाविज्ञान के अध्ययन का बहुत विस्तार हुआ है। इस समय में अनेक नई विचार धाराओं एवं नई प्रवृत्तियों का उदय हुआ है। इस समय की कुछ मुख्य प्रवृत्तियां ये हैं।

इस समय में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का प्रचार खूब बढ़ा है। प्राचीन भाषाओं के अध्ययन को प्रश्रय दिया जा रहा है। ध्वनि, रूप, वाक्य, अर्थ—भाषा के समस्त पहलुओं पर कार्य हो रहा है। ध्वनियों के अध्ययन में विभिन्न यंत्रों का उपयोग होने लगा है। भाषाविज्ञान के अध्ययन में अन्य विज्ञानों

(यथा मनोविज्ञान, गणित, पदार्थविज्ञान आदि) से सहायता ली जाने लगी है तथा भाषावैज्ञानिक जानकारी का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाने लगा है। भाषा के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन को अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक बनाया गया है। भाषाविज्ञान के अध्ययन से संबद्ध विभिन्न विचार-धाराओं—यथा, लंदन स्कूल, अमेरीकन स्कूल, प्राग स्कूल—का उदय हुआ है। आज भाषाविज्ञान को एक विशिष्ट विज्ञान का स्थान प्राप्त हो चुका है तथा उसका अध्ययन अत्यंत उपयोगी एवं महत्पूर्ण समझा जाने लगा है।



३ भाषाओं का वर्गीकरण एवं संसार के भाषा-परिवार



- भाषाओं का वर्गीकरण
- वर्गीकरण के आधार
  - —रचनागत समानता
  - —ऐतिहासिक संबंध
- आकृतिमूलक वर्गीकरण
  - —अयोगात्मक भाषाएं
  - —योगात्मक भाषाएं (अश्लिष्ट, श्लिष्ट, प्रश्लिष्ट)
- पारिवारिक वर्गीकरण
  - —भाषागत समानता
  - —परिवारों की रचना
  - —वर्गीकरण के आधार
- संसार के भाषा-परिवार
  - —भारोपीय, द्रविड़, सामी, हामी, बांटू, चीनी-तिब्बती, यूराल-अलताई, मलय-पालिनेशी, काकेशी, आस्ट्रिक, जापानी-कोरियाई, अमेरीकी
- भारत के भाषा-परिवार



३ १ भाषाओं का वर्गीकरण

भाषा-अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत यह बताया जा चुका है कि इस पद्धति में एक से अधिक भाषाओं की परस्पर तुलना की जाती है। इस तुलना से यह ज्ञात हो जाता है कि कौन सी भाषाएं एक-दूसरे से समानता रखती हैं तथा कौन-सी भाषाएं एक दूसरे से पूर्ण रूप से भिन्न हैं। इस जानकारी के आधार पर समानता रखनेवाली भाषाओं को एक ही समूह अथवा वर्ग में रखा जाता है। इस प्रकार समानता के आधार पर भाषाओं को विभिन्न वर्गों में विभाजित करने की पद्धति को भाषाओं का 'वर्गीकरण' कहते हैं।

३ २ वर्गीकरण के आधार

भाषाओं में जो समानताएं प्राप्त होती हैं वे मुख्य रूप से दो प्रकार की हैं। एक प्रकार की समानता को बाह्य अथवा रचना की समानता एवं दूसरे प्रकार की समानता को आन्तरिक अथवा प्रकृति की समानता कहते हैं।

जब भाषाओं को उनकी आकृति अर्थात् बाह्य समानता के आधार पर विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है तब उसे 'आकृति मूलक वर्गीकरण' कहते हैं। इस वर्गीकरण को 'रचनात्मक वर्गीकरण', 'रूपात्मक वर्गीकरण' अथवा 'वाक्यात्मक वर्गीकरण' भी कहा जाता है। जब भाषाओं को उनकी आंतरिक समानता के आधार पर विभिन्न समूहों में बांटा जाता है तब इस प्रकार के वर्गीकरण को 'पारिवारिक' अथवा 'ऐतिहासिक वर्गीकरण' कहते हैं। भाषाओं में भीतरी समानता तभी संभव है जबकि उनका मूल अर्थात् वंश एक ही हो। समानता रखनेवाली भाषाओं को एक ही परिवार का समझा जाता है। इस कारण इस प्रकार के वर्गीकरण को 'पारिवारिक' वर्गीकरण कहते हैं। इसे ऐतिहासिक वर्गीकरण इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस पद्धति के अनुसार उन भाषाओं को एक ही वर्ग में रखा जाता है जिन भाषाओं में ऐतिहासिक संबंध रहता है।

कुछ लोग देश, धर्म, महाद्वीप आदि के आधार पर भी भाषाओं को वर्गीकृत करने का प्रयत्न करते हैं किंतु ऐसे वर्गीकरणों से स्वयं भाषा की विशेषताओं का कुछ भी बोध नहीं होता। इस कारण ऐसे वर्गीकरणों की बहुत कम उपयोगिता है। उपयोगिता की दृष्टि से आज आकृतिमूलक वर्गीकरण का महत्व

भी घट गया है। इसका कारण यह है कि रचना की समानता के आधार पर जिन भाषाओं का एक ही समूह अथवा वर्ग में रखा जाता है उन भाषाओं के मध्य कोई नाता रिश्ता नहीं होता। इस कारण इस वर्गीकरण से यह जानकारी प्राप्त नहीं होती कि कौन सी भाषाएं सही अर्थों में एक-दूसरे से निकट संबंध रखती हैं और कौन सी भाषाएं एक दूसरे से भिन्न हैं। किसी भी वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना होता है कि भाषाओं के परस्पर संबंध को जाना जा सके। यदि किसी वर्गीकरण से यह जानकारी प्राप्त नहीं होती तो उस वर्गीकरण की उपयोगिता कम हो जाती है।

३ ३ आकृति मूलक वर्गीकरण

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार भाषाओं की रचनागत समानता है। यह समानता मुख्य रूप से उन भाषाओं की पद प्रक्रिया में ही देखी जाती है। 'पद प्रक्रिया' के अंतर्गत दो प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं एक तो शब्द से पद बनाने की प्रक्रिया, दूसरी वाक्यों में पदों के परस्पर संबंध प्रकट करने की प्रक्रिया। रचनागत समानता के आधार पर भाषाओं को अलग-अलग वर्गों में विभाजित करने के लिए प्रकृति तत्व या अर्थ तत्व (अथवा विचार अभिव्यक्त करनेवाला तत्व) एवं संबंध तत्व (एक वाक्य के समस्त प्रकृति तत्वों का परस्पर संबंध बतलानेवाला तत्व) के परस्पर संबंध का विचार किया जाता है। इस विचार से भाषाओं को पहले दो वर्गों में विभाजित किया जाता है अयोगात्मक भाषाओं का वर्ग एवं योगात्मक भाषाओं का वर्ग 'योग' से जोड़ने का भाव अभिव्यक्त होता है। कुछ भाषाएं ऐसी होती हैं जिनमें संबंध बतलाने के लिए प्रकृति तत्व में कुछ जोड़ना नहीं पड़ता। कोई भी शब्द वाक्य में जिस विशेष स्थान पर प्रयुक्त होता है, उसके अनुसार ही संबंध अभिव्यक्त करता है अर्थात् वाक्य में स्थान विशेष ही शब्द को पद की योग्यता प्रदान करता है ऐसी भाषाओं को अयोगात्मक भाषाएं कहते हैं। इसके विपरीत कुछ भाषाएं ऐसी होती हैं जिनमें धारणात्मक तत्वों का परस्पर संबंध दिखाने के लिए उन धारणात्मक अर्थात् अर्थ तत्वों के साथ कुछ संबंध तत्व जोड़े जाते हैं। ऐसी भाषाओं को योगात्मक भाषाएं कहते हैं। ये संबंध तत्व कई प्रकार के होते हैं, यथा—उपसर्ग प्रत्यय या परसर्ग, विभक्ति शून्य ध्वनि परिवर्तन आदि।

३ ३ १ अयोगात्मक भाषाए

अयोगात्मक भाषाओं की सबसे बडी विशेषता यह है कि इन भाषाओ में सना, विशेषण आदि नसी व्याकरणिक कोटिया (classes) नही हाती। एक शब्द कही पर सना, कहीं पर विशेषण, तो कहीं पर क्रिया बन जाता है। अर्थात इन भाषाओं में वाक्य में शब्द का स्थान ही उसके सबध को अभिव्यक्त करता ह। चीनी अयोगात्मक भाषाओं का उत्तम उदाहरण ह। उदाहरणार्थ चीनी भाषा में 'ब ब ब ब' का उच्चारण बलाघात के स्थान परिवतन से इस प्रकार किया जा सकता है कि इसके चार भिन्न अर्थ, 'स्त्री', 'राजा', 'खुशामदी' और 'कान उमेठना' हो सकते हैं। प्रकृरया अग्रजी एव हिंदी अयोगात्मक भाषाए नही हैं किंतु समझने के लिए उनसे भी उदाहरण दिए जा सकते ह। यथा अग्रजी का fish (फिश) 'मछली' शब्द तीन भिन्न स्थितियों में मात्र स्थान के आधार पर सज्ञा, विशेषण एव क्रिया के तीन भिन्न अर्थ दे सकता ह।

(१) This is a golden fish 'यह सुनहली मछली है।'
(यहा fish सज्ञा का अर्थ देता है।)
(२) I fish in the pond 'मैं तालाब में मछली मारता हू।'
(यहा fish क्रिया का अर्थ देता ह।)
(३) He is a fishman 'वह एक मछली मारनेवाला (मछुआ) आदमी ह'
(यहा fish विशेषण का अर्थ देता है।)
यहा एक उदाहरण हिंदी का भी दिया जा सकता ह।
(१) शेर जगल का राजा ह।
(२) मैंने जगल में शेर देखा।

पहले वाक्य में शेर कर्ता का अर्थ देता है और दूसरे वाक्य में कम का। अर्थ की यह भिन्नता प्रत्यक्ष रूप से स्थान परिवतन के कारण ही ह।

ऐसी भाषाओं में सबध अभिव्यक्ति का दूसरा साधन होता है 'रागात्मक प्रभाव' (Prosodic Effect) रागात्मक प्रभाव के अतगत 'आघात' (स्वराघात बलाघात) का समावेश होता ह। आघात के परिवतन से वाक्य में शब्दों की स्थिति बदल जाती ह। उदाहरणार्थ अंग्रेजी शब्द Present में यदि आघात प्रथम -r- पर होगा तो शब्द Pr esent सज्ञा का अर्थ देगा (अर्थ– उपहार) और यदि आघात -s- पर होगा तो शब्द Pres'ent क्रिया का अर्थ (प्रस्तुत करना) देगा।

३ ३ २ योगात्मक भाषाएं

योगात्मक भाषाओं में प्रकृति तत्व एवं संबंध तत्व का परस्पर योग होत है। यह योग भी कई तरह का हो सकता है। प्रकृति तत्व एवं संबंध तत्व के योग के आधार पर योगात्मक भाषाओं को निम्नलिखित तीन मुख्य उपवर्गों विभाजित किया जाता है

(क) अश्लिष्ट (Agglutinative) (ख) श्लिष्ट (Inflectional (ग) प्रश्लिष्ट (Incorporating)। 'श्लिष्ट' शब्द 'चिपकने' के भाव क अभिव्यक्त करता है। इस दृष्टि से इन शब्दों का अर्थ होगा—अश्लिष्ट न चिपक हुआ श्लिष्ट = चिपका हुआ और प्रश्लिष्ट = अच्छी तरह से चिपका हुआ।

अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं

अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं उन भाषाओं को कहते हैं, जिनमें संबंध तत प्रकृति तत्व से चिपका हुआ न हो। यहां चिपकने का अर्थ है 'विकृत' अथव 'परिवर्तित' होना। जब यह कहा जाता है कि अश्लिष्ट भाषाओं में संबंध तत्व प्रकृति तत्व से नहीं चिपकता, तब उसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति तत्व एव संबंध तत्व के योग होने पर भी दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्पष्ट रूप से बन रहती है तथा न तो प्रकृति तत्व में कोई विकार अथवा परिवर्तन होता ह और न ही संबंध तत्व में कोई विकार उत्पन्न होता है। एक उदाहरण लीजिए।

(क) सांप ने फुफकारा।

(ख) मैंने सांप को मारा।

'सांप' शब्द के साथ (क) वाक्य में 'ने' और (ख) वाक्य में 'को' संबंध तत्व जुड़ा हुआ है। संबंध तत्व के जुड़ने के बावजूद प्रकृति तत्व 'सांप' एवं संबंध तत्व 'ने' अथवा 'को' स्पष्ट रूप से अलग दिखाई पड़ते हैं साथ ही न तो 'सांप' के रूप में और न ही 'ने' अथवा 'को' के रूप में कोई विकार अर्थात परिवर्तन उत्पन्न हुआ है। अतः ये वाक्य अश्लिष्टत्व की प्रकृति को अभिव्यक्त करते हैं।

अश्लिष्ट भाषाएं प्रायः प्रत्यय प्रधान होती हैं अर्थात संबंध बताने के लिए प्रायः प्रकृति तत्व में प्रत्यय (Affix) जोड़ा जाता है। प्रत्यय यदि प्रकृति के आगे अर्थात पूर्व जोड़ा जाता है तो भाषाएं 'पूर्वयोगी', प्रत्यय यदि प्रकृति के मध्य में जोड़ा जाता है तो भाषाएं 'मध्ययोगी' एवं प्रत्यय यदि

प्रकृति के अत में जोड़ा जाता है तो भाषाए 'अतयोगी' कही जाती हैं। अफ्रीका की बाटू भाषाए पूर्वयोगी भाषाए हैं। यद्यपि संस्कृत अश्लिष्ट भाषा नहीं है तथापि इसमें धातु में पूर्वयोग का उदाहरण मिल जाता है। संस्कृत में धातु के पूर्व प्रत्यय 'अ' जोड़ने से भूत काल का बोध होता है। यथा, पठ = पढ़ना और अपठत = पढ़ा।

मुडा परिवार की भाषाए मध्ययोगी भाषाए हैं। मुडा परिवार की सथाली भाषा में 'दल' का अर्थ है 'मारना' एवं 'दपल' शब्द का अर्थ है 'परस्पर मारना'। कहना न होगा कि 'दपल' शब्द के मध्य पड़ा हुआ—प—प्रत्यय ही 'परस्पर' का सबध बनाता है। मध्ययोग के उदाहरण हिंदी में भी मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ 'दौड़ना' का अर्थ है 'खुद दौड़ना' किंतु 'दौड़ाना' का अर्थ है दूसरे से दौड़ने का काम करवाना। 'दौड़ना' के मध्य आया हुआ—आ—प्रत्यय ही क्रिया को प्रेरणार्थक बनाता है।

हिंदी तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाए मुख्य रूप से अतयोगी हैं। हिंदी में लिंग, वचन, कारक, काल, अर्थ आदि अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिए 'अत प्रत्यय' का ही प्रयोग होता है। यथा 'राम' में 'ने' अत प्रत्यय जोड़ने से 'रामने' रूप बनता है। यहा 'ने' प्रत्यय से 'कर्ता' का अर्थ ज्ञात होता है।

श्लिष्ट योगात्मक भाषाए

यह पहले ही कहा जा चुका है कि श्लिष्ट का अर्थ है 'चिपका हुआ'। श्लिष्ट भाषाओं में सबध तत्व प्रकृति तत्व से चिपका रहता है, अर्थात सबध तत्व के जुड़ने से प्रकृति तत्व अथवा सबध तत्व अथवा दोनों तत्वों में विकार अथवा परिवर्तन आ जाता है। लेकिन फिर भी दोनों तत्वों की स्पष्ट अनुभूति होती है। उदाहरणार्थ हिंदी में'—इक' एक प्रत्यय है। 'धर्म' में —इक जोड़ने पर 'धार्मिक' बनता है। मूलरूप शब्द 'धर्म' में —इक' जोड़ने पर 'धर्म' में विकार आ गया है और 'धर्म' का 'धार्म' बन गया है। 'धर्म' एव 'धार्मिक' शब्दों से यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि 'धर्म' में'—इक' प्रत्यय जुड़ा हुआ है। इस प्रकार यह उदाहरण भाषा की श्लिष्ट प्रकृति का द्योतक है। श्लिष्ट भाषाओं को विभक्ति-प्रधान भाषाए भी कहते हैं क्योंकि ऐसी भाषाओं में सबध बतलाने का मुख्य काम विभक्तियों द्वारा होता है।

श्लिष्ट भाषाए भी दो प्रकार की होती हैं। एक ऐसी भाषाए होती हैं जिनमें सबध तत्व प्राय अत में रहते हैं। ऐसी भाषाओं को 'बहिर्मुख' कहते हैं। संस्कृत, हिंदी, ऐसी ही भाषाए हैं। दूसरे प्रकार की श्लिष्ट भाषाओं में

संबंध तत्व मध्य में कहीं भी जुड़ जाता है। ऐसी भाषाओं का 'अन्तर्मुख' कहते हैं। अरबी भाषा अंतर्मुख भाषा है। अरबी में तीन व्यंजन ध्वनियों के मध्य स्वरों के माध्यम से संबंध तत्व की अभिव्यक्ति की जाती है। जैसे क त ब' तीन-व्यंजनी धातु में से 'किताब = 'लिखित रचना', कातिब' = 'लिखनेवाला अर्थात विद्यार्थी', मक्तब' = 'जहां लिखने का काम सिखाया जाय अर्थात 'स्कूल' आदि विभिन्न अर्थ विभिन्न स्वरों के माध्यम से अभिव्यक्ति किए जा सकते हैं।

प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं

तीसरे प्रकार की योगात्मक भाषाओं को प्रश्लिष्ट भाषाएं कहते हैं। इन भाषाओं में संबंध तत्व प्रकृति से ऐसे चिपक जाता है कि दोनों को एक-दूसरे से अलग कर पाना कठिन होता है। ऐसी भाषाओं में अनेक शब्द परस्पर चिपककर एक शब्द का सा रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार की भाषाओं को समास प्रधान भाषाएं भी कहा जाता है क्योंकि समास के द्वारा एक से अधिक शब्द एक-दूसरे से मिलकर सर्वथा भिन्न शब्द का निर्माण कर लेते हैं। संस्कृत मुख्य रूप से प्रश्लिष्ट भाषा ही है। संस्कृत का एक उदाहरण देखिए सृज' + 'क्तिन्' = 'सृष्टि' में से 'सृज्–' धातु और '–ति' संबंध तत्व को अलग कर पाना कठिन है। प्रश्लिष्टता का एक अच्छा उदाहरण सिंधी का भी लिया जा सकता है। सिंधी में मू हुनखे मार्यो। 'मैंने उसका मारा'। यह पूरा वाक्य प्रश्लिष्ट होकर मार्योमासि बन सकता है जिसका अर्थ भी ठीक यही है 'मैंने उसे मारा'। मार्योमासि में मार्यो– क्रिया के पीछे –मा एवं '–सि' प्रत्यय जोड़े गए हैं जो क्रमशः मू एवं हुनखे' रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

आवश्यकता पड़ने पर उपर्युक्त उपवर्गों के और अधिक भेद उपभेद किए जा सकते हैं।

भाषाओं की सामान्य प्रवृत्ति प्रश्लिष्ट से अश्लिष्ट होने की है। संस्कृत प्रश्लिष्ट योगात्मक भाषा थी। प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाएं मुख्य रूप से श्लिष्ट थीं हिंदी एवं अन्य आधुनिक आर्य भाषाएं श्लिष्ट से अश्लिष्ट की ओर बढ़ रही हैं, अर्थात हिंदी में कुछ विशेषताएं श्लिष्ट भाषाओं जैसी हैं एवं बहुत सी विशेषताएं अश्लिष्ट भाषाओं जैसी हैं। किसी भी भाषा में अश्लिष्टता श्लिष्टता तथा प्रश्लिष्टता के उदाहरण मिल सकते हैं किंतु उसकी मुख्य प्रवृत्ति के अनुसार ही उसका वर्ग निर्धारित किया जाता है।

४ पारिवारिक वर्गीकरण

दूसरे प्रकार का वर्गीकरण पारिवारिक वर्गीकरण है। इस वर्गीकरण का मुख्य आधार भाषाओं के मध्य पाया जाने वाला ऐतिहासिक संबंध है।

प्रत्येक भाषा किसी एक विशेष मानव समुदाय द्वारा प्रयुक्त होता है। इस कारण स्वाभाविक यही है कि एक मानव समुदाय की भाषा का दूसरे समुदाय की भाषा से कोई समानता न हो किंतु अनेक बार ऐसा देखने को मिलता है कि कई भाषाएं एक-दूसरे से बहुत अधिक समानता दिखाती हैं ऐसी स्थिति में यह सोचना पड़ता है कि उनमें इस प्रकार की समानता क्यों है। विभिन्न भाषाओं में समानता निम्नलिखित कारणों से संभव है

(क) आकस्मिक
(ख) शिशु शब्दावली
(ग) अनुकरणात्मक शब्दावली
(घ) भावाभिव्यंजक शब्दावली
(ङ) भाषाई आगत
(च) समान उद्‌गम स्रोत

(क) आकस्मिक समानता

संसार में हजारों भाषाएं हैं तथा प्रत्येक भाषा में हजारों लाखों शब्द हैं। ऐसी स्थिति में कभी-कभी परस्पर भिन्न भाषाओं के कुछ शब्दों में उच्चारणगत एवं अर्थगत समानता दिखाई पड़ जाती है। उदाहरणार्थ अमेरीका की एक जन जाति की भाषा हाटेन्टाट' में 'दिशि शब्द का अर्थ है 'दस'। इस दिशि' शब्द की उच्चारण अथवा अर्थ की दृष्टि से हिंदी के 'दस' अथवा संस्कृत के दश' से समानता दिखाई पड़ती है। यह समानता आकस्मिक है। आकस्मिक समानता का प्रमाण यह होता है कि वह बहुत ही थोड़े एवं असंबंधित शब्दों में दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए हाटेनटाट के दिशि' एवं हिंदी के 'दस' में समानता दिखाई देती है किंतु हाटेनटाट एवं हिंदी की अन्य संख्याओं में कोई समानता दिखाई नहीं पड़ेगी।

(ख) शिशु शब्दावली मे समानता

प्रत्येक भाषा में ऐसे कुछ शब्द होते हैं जिनका प्रयोग शिशुओं द्वारा अपने सगे संबंधियों को संबोधित करने के लिए होता है। विभिन्न भाषाओं में ऐसे

कुछ शिशु शब्द मिल ही जाते हैं जिनमें उच्चारण एवं अर्थ की समानता दृष्टिगोचर होती। ऐसा देखा गया है कि अम्मा, मा मम्मा, बा, आपा, अबा, बाबा पापा मामा जैसे शब्द बहुत सी भाषाओं में हैं। समानता रखने वाले ऐसे शब्दों की संख्या किन्हीं भी दो असंबंधित भाषाओं में बहुत थोड़ी होती है और ये शब्द शिशु शब्दावली तक ही सीमित रहते हैं।

(ग) अनुकरणात्मक शब्दों के कारण समानता

अनुकरण (पशु-पक्षियों की बोली के आधार पर बने शब्द) के आधार पर बने शब्द बहुत-सी भाषाओं में समानता रखते हैं। उदाहरणार्थ चीनी भाषा में बिल्ली को म्याऊ कहा जाता है। शिशु शब्दावली के समान ही किन्हीं भी दो असंबंधित भाषाओं में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम होती है।

(घ) भावाभिव्यंजक शब्दावली में समानता

असंबंधित भाषाओं में भी कुछ ऐसे समान शब्द मिल जाते हैं जिनमें तीव्र भावों की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरणार्थ आह! आह!, जैसे भावाभिव्यंजक शब्द हिंदी अंग्रेजी तथा अन्य कई भाषाओं में मिल जाते हैं। ऐसे शब्दों की संख्या बड़ी सीमित होती है।

(ङ) भाषाई आगत के कारण समानता

विभिन्न भाषाओं में सबसे अधिक समानता आगत या उधार लिए हुए शब्दों के कारण होती है। भाषाओं में आदान-प्रदान का गुण होता ही है। जब भी दो भाषाएं एक-दूसरे के संपर्क में आती हैं, एक दूसरे को अवश्य प्रभावित करती हैं। इस प्रभाव का आवश्यक परिणाम होता है एक दूसरे से शब्द ग्रहण करना। ऐसे ग्रहण किए हुए शब्दों को ही आगत कहा जाता है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के संपर्क के कारण अंग्रेजी के अनेक शब्द हिंदी में आ गए हैं जिससे अंग्रेजी एवं हिंदी के कई शब्दों में समानता दिखाई पड़ सकती है।

आगत शब्द प्रायः सांस्कृतिक शब्दावली में स्थान पाते हैं। भाषा की मूल शब्दावली (सामान्य व्यक्ति द्वारा जीवन निर्वाह हेतु प्रयोग में लाए जानेवाले शब्द) में सामान्य रूप से आगत शब्दों का समावेश नहीं होता।

(च) समान उद्गम स्रोत

उपर्युक्त समस्त समानताओं को अलग करने पर भी यदि भाषाओं में प्रभावशाली समानता दिखाई पड़े और वह समानता कुछ सांस्कृतिक शब्दों तक

ही सीमित न हो अर्थात वह उन भाषाओं की मूल शब्दावली के बहुत बडे अंश में दिखाई पडने के अतिरिक्त भाषाओं की व्याकरणात्मक एव ध्वन्यात्मक संरचनाओं में भी दृष्टिगोचर हो, तब ऐसी समानता केवल उत्पत्ति का एक स्रोत होने के कारण ही सभव है। इस सभावना (कि भिन्न भाषाए सभव है एक ही स्रोत से उत्पन्न हुई हो) पर ही पारिवारिक वर्गीकरण का आधार है।

३ ५ परिवारो की रचना

भाषाओं की पारिवारिक धारणा के पश्चात यह जान लेना आवश्यक है कि भाषाओं के परिवार किस प्रकार बनते है।

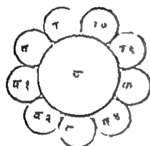
तात्विक दृष्टि से किन्ही भी दो व्यक्तियो की भाषा समान नही होती, पर भाषा क्योंकि सामाजिक वस्तु एव विचार सपर्क का माध्यम है, इस कारण भिन्नता के बावजूद एक सबद्ध समुदाय के समस्त व्यक्ति एक दूसरे की भाषा समझते है। यह इसलिए सभव होता है क्योंकि समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति अपनी व्यक्ति बोली की विशिष्टताओं का सरक्षण करने की अपेक्षा, सबकी सामान्य विशिष्टताओ का सरक्षण करने का अनायास प्रयत्न करता है। जबतक कोई समुदाय भौगोलिक दृष्टि से सबद्ध, सामाजिक दृष्टि से सगठित एव सख्या की दृष्टि से सीमित रहता है तब तक उसकी भाषा में कम परिवर्तन आता है एव उस समुदाय की भाषा एक ही बनी रहती है किंतु जब वह असबद्ध विघटित एव विस्तृत होने लगता है तब उसकी भाषा मे भेदक तत्व बढने लगते है एव एक समय ऐसा आता है जब एक समुदाय अनेक समुदायों में विभाजित हो जाता है। तब प्रत्येक समुदाय अपने आप में सबद्ध हो जाता है तथा एक समुदाय की भाषा दूसरे समुदाय की भाषा से भिन्न होने लगती है। इन विभिन्न समुदायो के मध्य यदि सपर्क के साधन सुलभ एव पर्याप्त है तो भिन्नता के बावजूद उन समुदायो के लोग एक दूसरे की भाषा को बिना सिखाए भी समझ लेंगे। यह ऐसी स्थिति है जब एक भाषा की अनेक उपभाषाए अथवा बोलिया बन जाती है। कालातर में एक समुदाय का दूसरे समुदाय से सपर्क छूट जाता है। तब एक समुदाय जिस भाषा का प्रयोग करता है वह दूसरे समुदाय के लोगो की समझ में नही आती। इस प्रकार एक के स्थान पर अनेक भाषाए बन जाती है। समयान्तर में प्रत्येक समुदाय का विस्तार एव विघटन होता है तथा प्रत्येक समुदाय की भाषा की अनेक उपभाषाए अर्थात बोलिया बन जाती है। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती रहती है और सैकडों-हजारो

वर्षों के पश्चात् एक ही भाषा से अनेक भाषाएं बन जाती हैं। ये भाषाएं भिन्न होने पर भी संबंधित समझी जाती हैं तथा उन समस्त भाषाओं को एक ही परिवार अथवा वंश का मानकर उनको एक ही परिवार में रखा जाता है।

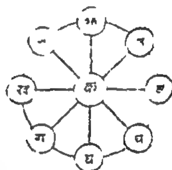
नीचे के चित्रों में भाषा-परिवार बनने की प्रक्रिया का वर्णन किया है—



चित्र—१



चित्र—२



चित्र—३

चित्र—१ एक समुदाय को इंगित करता है जिसकी भाषा 'क' है। चित्र—२ उस स्थिति को इंगित करता है जिसमें एक समुदाय विभिन्न उप-समुदायों में विभक्त हो गया और इस प्रकार 'क' भाषा की $क_1$, $क_2$ ..., आदि उपभाषाएं बन गई हैं। चित्र—३ उस स्थिति को दर्शाता है जिसमें एक समुदाय विभिन्न समुदायों में विभाजित हो गया है और इस कारण 'क' की विभिन्न उपभाषाएं स्वतंत्र भाषाएं बन जाती हैं। स्वतंत्र हो जाने पर भी वे भाषाएं संबंधित होने के कारण परस्पर जुड़ी रहती हैं।

भाषा वंश वृक्ष

भाषा परिवार की तुलना एक वृक्ष से की जा सकती है। जैसे किसी वृक्ष के एक ही तने से अनेक शाखाएं विकसित होती हैं वैसे ही एक ही मूल भाषा से अनेक भाषाएं उद्भूत होती हैं। इसी से परस्पर संबंधित भाषाओं को वृक्ष के रूप में दिखाया जाता है जिसे 'भाषा वंश वृक्ष' कहते हैं।

३ ६ पारिवारिक वर्गीकरण के सिद्धांत

सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि परस्पर भिन्न लगनेवाली भाषाओं को किन आधारों अथवा सिद्धांतों पर संबंधित भाषाएं मानकर एक ही परिवार के अंतर्गत रखा जाता है। अन्य शब्दों में यह पूछा जा सकता है कि वह कौन-सी प्रक्रिया है जिसका अनुसरण कर भाषाओं को अलग अलग परिवारों में रखा जाता है।

३ ६ १ पारिवारिक परिकल्पना

पारिवारिक वर्गीकरण की प्रक्रिया में सबसे पहले तो यह परिकल्पना की जाती है कि जिन भाषाओं का वर्गीकरण के लिए परीक्षण किया जा रहा है वे परस्पर संबंधित हो सकती हैं।

३ ६ २ स्थानीय निकटता

इस परिकल्पना का सर्वप्रथम आधार होता है स्थानीय निकटता। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जो भाषाएं एक दूसरे के निकट बोली जाती हैं वे एक ही परिवार की होंगी। बहुत बार यह अनुमान सही निकलता है किंतु यह आवश्यक नहीं है कि जो भाषाएं स्थान की दृष्टि से निकट हैं वे एक ही परिवार की हों और जो एक दूसरे से दूर हैं वे भिन्न परिवारों की हों। उदाहरणार्थ मराठी एवं कन्नड भाषाएं स्थान की दृष्टि से एक दूसरे के अत्यंत निकट हैं किंतु मराठी भारोपीय परिवार की भाषा है जबकि कन्नड द्रविड परिवार की भाषा है। दूसरी ओर हिंदी और रूसी का क्षेत्र बहुत दूर है किंतु वे एक ही परिवार की भाषाएं हैं। स्थान की निकटता की केवल इतनी ही उपयोगिता है कि इससे परीक्षण हेतु भाषाओं के चयन करने में सुविधा होती है।

३ ६ ३ मूल शब्दावली में समानता

भाषाओं के संबंधित होने की परिकल्पना को पुष्टि मिलती है जब उन भाषाओं की मूल शब्दावली में प्रभावशाली समानता दिखाई पड़ती है। मूल शब्दावली अन्य भाषाओं के शब्दों से या तो मुक्त रहती है अथवा बहुत ही कम प्रभावित होती है। इस शब्दावली में प्राकृतिक सामान्य पदार्थ (सूर्य,

पेड़, आकाश, धरती आदि), खाने-पीने की सामान्य वस्तुओं (मुख्य अनाज, सब्जियाँ आदि), मुख्य रंगों (लाल, काला, सफेद आदि), सामान्य पशु-पक्षियों (घोड़ा, गाय, कौआ, चिड़िया आदि) के वाचक शब्द आ जाते हैं। १० तक संख्याएँ, मुख्य क्रियाएँ, सर्वनाम आदि शब्द भी मूल शब्दावली में गिने जाते हैं।

मूल शब्दावली के परीक्षण के लिए निम्नलिखित विधि का अनुसरण करना चाहिए। सबसे पहले परीक्षणार्थ ली गई भाषाओं की मूल शब्दावली की सूचियाँ तैयार करनी चाहिए। फिर उन सूचियों की तुलना करते हुए सजात- (Cognate) उच्चारण-अर्थ की समानता रखनेवाले शब्दों का पता करना चाहिए। फिर उन सजात शब्दों में प्रयुक्त अनुरूप ध्वनियों (Corresponding Sounds) की तुलना करनी चाहिए और देखना चाहिए कि अनुरूप ध्वनियों में नियमित संबंध है अथवा नहीं। यदि भाषाएँ संबंधित होंगी तो उनकी मूल शब्दावलियों में बहुत अधिक मात्रा में सजात शब्द होंगे तथा उनकी ध्वनियों में नियमित संबंध दिखाई पड़ेगा।

३ ६ ४ व्याकरणात्मक समानता

मूल शब्दावली में प्रभावशाली समानता दृष्टिगोचर होने पर परीक्षणार्थ ली गई भाषाओं की व्याकरणात्मक संरचनाओं की तुलना करनी चाहिए। भाषाओं में संपर्क स्थापित होने पर आदान-प्रदान अवश्य होता है किंतु यह आदान-प्रदान मुख्य रूप से शब्दावली तक ही सीमित रहता है। प्रत्येक भाषा का व्याकरणात्मक ढाँचा प्राय अपरिवर्तित रहता है। यदि व्याकरणात्मक ढाँचे में दूसरी भाषा के प्रभाव के कारण परिवर्तन होगा भी तो वह बहुत ही सीमित मात्रा में होगा। उदाहरणार्थ हिंदी ने उर्दू के माध्यम से सैकड़ों फारसी-अरबी के शब्द ग्रहण किए हैं तथा अंग्रेजी के हजारों शब्द हिंदी में आ गए हैं किंतु हिंदी के व्याकरणात्मक ढाँचे पर इस भाषाई आगत (Linguistic Borrowing) का बहुत ही कम प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ हिंदी में फारसी का खबर (= समाचार) का प्रयोग तो होता है किंतु इसका बहुवचन हिंदी व्याकरण के नियमानुसार खबरें, खबरों आदि बनता है न कि फारसी व्याकरण के अनुसार 'अख़बार' (हिंदी में 'अख़बार' शब्द 'समाचार-पत्र' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यह उसका अर्थ-परिवर्तन है)। वैसे ही अंग्रेजी शब्द 'बस' एवं 'क्लास' का हिंदी में बहुवचन अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार 'बसिज़' (Buses) एवं

'ग्लासिज' (Glasses) नहीं होता, किंतु हिंदी व्याकरण के अनुसार 'वर्से' 'बसा', 'ग्लासा' आदि होता है। अत व्याकरणात्मक समानता केवल एक स्रोत होने पर ही सभव है। यदि भाषाए सचमुच सबधित हैं तो उनकी सपूर्ण व्याकरणात्मक सरचना में समानता दृष्टिगोचर होगी। यह समानता शब्द निर्माण की पद्धति (अर्थात मूल शब्द में उपसर्ग, परसर्ग आदि लगाकर विभिन्न शब्द बनाना। यथा 'कर' धातु से कर्ता, कर्म, करना, क्रिया, कारक कृत आदि शब्द बने है), शब्द विकार (अर्थात शब्दों में विभक्ति प्रत्यय आदि लगाकर वाक्य में प्रयोग करना। यथा 'मैं' से 'मने', 'घोडा' से घोडे— 'खा' से खाऊ आदि) एव वाक्य रचना पद्धति (अर्थात वाक्य को जोडने एव वाक्य में विभिन्न शब्दों का परस्पर सबधित करने की विधि। यथा हिंदी वाक्य में 'कर्ता सर्व प्रथम, कर्म मध्य में एव क्रिया अत में) में दृष्टिगोचर होगी।

व्याकरणात्मक अपवाद, व्याकरणात्मक समानता के सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण होते है। उदाहरणार्थ हिंदी में 'जाना' क्रिया के वर्तमान एव भविष्य काल के समस्त रूप 'जा'—धातु से बनते है (यथा—जाता, जाऊगा आदि) किंतु भूतकाल में अपवाद-स्वरूप 'ग' का प्रयोग होता है (यथा—गया आदि)। हिंदी एव मराठी की व्याकरणात्मक सरचनाओ की तुलना करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि मराठी में भी यही स्थिति है। मराठी में 'जाना' (जाणें) क्रिया के वर्तमान एव भविष्यकाल के रूप तो 'जा-' से विकसित है (यथा— जातो, जाता आदि) किंतु भूतकाल के रूप 'ग-' से ही आरभ होते है (यथा— गेला, गेल्या आदि)। भाषाओ म ऐसे अपवाद तभी सभव होते है जबकि उनकी व्याकरणात्मक रचनाओ में प्रभावशाली समानता हो।

३ ६ ५ ध्वन्यात्मक समानता

भाषाओ का एक परिवार में रखने का अतिम एव निर्णायक तत्व है भाषाओ में पाई जानेवाली ध्वन्यात्मक समानता।

ऐसा देखा गया है कि सबधित भाषाए भी जब सैकडा हजारों वर्षों के लिए एक-दूसरे से दूर रहती है, तब उनकी व्याकरणात्मक सरचनाओ में भी बहुत अतर पड जाता है। उदाहरणार्थ आज हिंदी और अंग्रेजी के व्याकरणात्मक ढाचे में बहुत अतर है, जबकि दोनों एक ही परिवार की भाषाए है। इसी कारण भाषाओं के सबध का निर्णय करने के लिए व्याकरणात्मक तुलना के पश्चात उनकी ध्वन्यात्मक सरचनाओ की तुलना करनी चाहिए। यदि अन्य समानताओ के साथ भाषाओं की ध्वन्यात्मक सरचनाओं में भी समानता दिखाई पडे तब

यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि वे भाषाएं संबंधित हैं अर्थात् एक ही स्रोत से उत्पन्न हुई हैं और इस कारण एक ही परिवार की हैं।

ध्वन्यात्मक समानता का अर्थ यह नहीं है कि परीक्षित भाषाओं में ध्वनियां एक जैसी हों। समानता एवं एकरूपता में बड़ा अंतर होता है। ध्वन्यात्मक एकरूपता दो स्थितियों में संभव है। एक तो परीक्षित भाषाएं भिन्न न होकर एक ही भाषा हों (एक ही भाषा की बोलियां)। ऐसी स्थिति में पारिवारिक वर्गीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरा परीक्षित भाषाओं में ध्वनियों का आदान प्रदान हो गया हो। यह स्थिति भाषाई आगम की है, और भाषाई आगम के कारण उत्पन्न समानता पारिवारिक वर्गीकरण के लिए उपयुक्त नहीं होती। इस कारण भाषाई आगम से आई सामग्री को अलग करने के पश्चात् ही वर्गीकरण के लिए भाषाओं की तुलना की जाती है।

समानता से तात्पर्य ऐसे नियमित संबंध से है जिसके आधार पर परीक्षित भाषाओं के मूल रूप (Proto form) की रचना की जा सकती है। यह समानता ध्वनियों की पूरी संरचना में होनी चाहिए। उदाहरणार्थ पंजाबी भाषा में हिंदी जैसी घोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियां (घ, झ, ढ, ध, भ) नहीं हैं। इसके स्थान पर पंजाबी में तान (Tone) महत्वपूर्ण है। इस तान का प्रयोग अघोष अल्पप्राण स्पर्श ध्वनियां (क, च, ट, त, प) के साथ ही हो सकता है। इस कारण जहां हिंदी में क घ ध्वनियां परस्पर व्यतिरेकी या विरोधात्मक संबंध रखती हैं (यथा कोडा 'चाबुक' घोडा 'एक विशेष प्राणी') वहां पंजाबी में क क ध्वनियां परस्पर व्यतिरेकी या या विरोधात्मक संबंध रखती हैं (यथा— कोडा 'चाबुक' एवं 'कांडा एक विशेष प्राणी')।

उपर्युक्त विवेचन से हिंदी एवं पंजाबी की ध्वनि व्यवस्थाएं असमान दिखाई देती हैं किंतु तुलना करने पर उनमें समानता दिखाई पड़ती है। वास्तव में हिंदी एवं पंजाबी की ध्वनियों में नियमित संबंध है जिसे इस प्रकार सूत्रित किया जा सकता है।

हिंदी घोष + महाप्राण = पंजाबी तान

अतः क + घोष + महाप्राण (=घ) = क + ˋ (=कˋ)

उदाहरण—घोड़ा = कांडा

प + घोष + महाप्राण (= भ) = प + ˋ (= प)

उदाहरण—भाई = पाई

इस प्रकार भाषाओं के सबधित होने का अनुमान मूल शब्दावली के सजात रूपों की समानता द्वारा पुष्ट होकर, व्याकरणात्मक समानता से निश्चयात्मक बनकर, ध्वन्यात्मक समानता से तथ्य के रूप में सिद्ध हो जाता है तथा बाह्य रूप से असबद्ध लगनेवाली भाषाए सबधित होकर विभिन्न परिवारों में विभक्त हो जाती है।

३ ७ ससार के भाषा-परिवार

पूर्व परिच्छेद में यह बताया गया है कि विभिन्न भाषाओं की सरचनाओं में पाई जानेवाली समानता के आधार पर ससार की समस्त भाषाओं को अलग-अलग भाषा-परिवारों में विभाजित किया गया है किंतु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि ससार की समस्त भाषाओं का स्पष्ट, पूर्ण एव अतिम वर्गीकरण हो चुका है। वास्तविकता यह है कि अभी तक ससार की कुछ ही भाषाओं का सतोषजनक अध्ययन हुआ है। अभी भी सैकडों नही, हजारों ऐसी भाषाए हैं, जिनके सबध में भाषावैज्ञानिक कुछ भी नही जानते। ऐसी स्थिति में यह सभव ही नही है कि भाषाओं के प्रस्तुत वर्गीकरण को पूर्ण एव अतिम समझा जाय। फिर परिवारों की सख्या के सबध में भी समस्त विद्वान एकमत नही है। रेइ (Reiss) जैसे विद्वान जहा ससार की भाषाओं का केवल एक ही परिवार मानते हैं, वहा फ्रेडरिक मूलर जैसे विद्वान भाषा-परिवारों की सख्या एक सौ तक मानते है। दस, तेरह, अठारह, परिवार माननेवाले विद्वान अधिक है। अधिक विद्वान परिवारों की सख्या बारह, तेरह, चौदह, सख्याओं में से कोई एक सख्या स्वीकार करते हैं। ये परिवार निम्नलिखित हैं १ भारोपीय, २ सामी अथवा समेटिक, ३ हामी अथवा हमटिक, ४ बाटू, ५ द्रविड, ६ चीनी-तिब्बती, ७ यूराल-अल्ताई ८ मलय-पालीनेशी, ९ काकेशी, १० आस्ट्रिक, ११ जापानी-कोरियाई, १२ अमेरीकी।

उपर्युक्त परिवारों के अतिरिक्त बुशमन, सुडानी, पापुई, आस्ट्रेलियाई आदि परिवारों के नाम भी लिए जा सकते है। इन परिवारों को कुछ विद्वान अन्य परिवारों के साथ जोडते है तो कुछ दूसरे इन्हें स्वतत्र परिवारों के रूप में मानते है।

कुछ विद्वान इस विचार के है कि उपर्युक्त समस्त परिवारों में से बहुत से परिवार ऐसे है जो एक परिवार की अपेक्षा एक से अधिक परिवारों के वर्ग है। यह बात बहुत सीमा तक ठीक भी है उदाहरणार्थ अमेरिकी

परिवार में लगभग चार सौ भाषाए ह, जो निश्चित रूप से एक नहीं कई परिवारों की ह । बाधा केवल यह ■ कि इन भाषाओं का विधिवत अध्ययन नहीं हुआ ह जिससे इन भाषाओं के अलग अलग परिवार निश्चित हो सकें ।

आगामी परिच्छेदों म उपर्युक्त परिवारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा ह ।

३ ७ १ भारोपीय परिवार

यह परिवार समस्त भाषा परिवारों में महत्वपूर्ण ह । अत आगामी अध्याय में इस परिवार का विशेष वर्णन किया गया है ।

३ ७ २ सामी परिवार

सामी अथवा सैमेटिक परिवार की भाषाए अफ्रीका एव एशिया दोनों खंडों में बोली जाती ह । ऐसा माना जाता ह कि हजरत 'नोह के बड़े पुत्र 'सैम' के नाम पर ही इस परिवार का नाम समेटिक पड़ा ह ।

क्षेत्र

इस परिवार का क्षेत्र विस्तार अफ्रीका एव एशिया दोनों खंडों तक है । इसकी भाषाओं का अधिक प्रयोग एशिया में ही होता ह । अफ्रीका में मोराको से स्वेज नहर तक इस परिवार की भाषाए फैली हुई ह ।

मुख्य शाखाए एव भाषाए

इस परिवार की मुख्य शाखाए ह—असीरियन, बबीलियन फिनिशियन एव आरमाइक । प्राचीन भाषा हिब्रू (बाइबिल की मूल भाषा) एव प्रसिद्ध भाषा अरबी इसी परिवार की भाषाए ह ।

साहित्य

अरबी ससार की अत्यत समृद्ध भाषाओं में स एक ह । अरबी भाषा एव साहित्य का प्रभाव ससार की बहुत-सी भाषाओं पर पड़ा ह । कीलाक्षरों में लिखे असीरियन एव बबीलियन के उदाहरण ईसा से ढाई-तीन हजार वर्ष पूर्व के पाए जाते ह ।

विशेषताए

समेटिक परिवार की भाषाए मुख्य रूप से श्लिष्ट योगात्मक भाषाए ह ।

इस परिवार की भाषाओं में धातु प्राय तीन व्यजनो से होते हैं, जिनके अतगत स्वरो को जोडकर, विभिन्न शब्द बनाए जाते है (यथा—क त ब 'लिखना' धातु से 'किताब' 'लिखा हुआ', 'मकतब' 'लिखने का स्थान', 'कातिब' 'लिखनेवाला' आदि) ।

धातु में स्वर योग के अतिरिक्त कभी कभी शब्द निर्माण अथवा शब्द विकार के लिए प्रत्यय विभक्ति आदि का भी प्रयोग होता है। या यह प्रवृत्ति पुरानी अरबी में अधिक थी। आधुनिक अरबी श्लिष्ट से अश्लिष्ट की ओर बढ रही है, इस कारण उसमें विभक्तियो के स्थान पर स्वतत्र शब्दों का प्रयोग होने लगा है।

'जेरे इजाफ्त' का प्रयोग इस परिवार की एक मुख्य विशेषता है। इसमें दो सज्ञाओ के मध्य सबध दर्शानेवाले तत्व के लुप्त होने से एक प्रकार की ऐसी सामासिक रचना बनती है, जिसका अथ सबधित सज्ञाओ का क्रम बदलकर ही निकाला जा सकता है। यथा शेरे पजाब अर्थात पजाब का शेर'। अरबी के ही प्रभाव से 'जेरे इजाफत' का प्रयोग फारसी एव उर्दू में भी होने लगा है।

इस परिवार की भाषाओ में लिंग मुख्य रूप से व्याकरणात्मक है, प्राकृतिक नही। भारोपीय परिवार के पश्चात दूसरा प्रसिद्ध परिवार समेटिक परिवार है।

३ ७ ३ हामी परिवार

हामी परिवारिक को हमेटिक परिवार भी कहा जाता है। इस परिवार की सैमेटिक परिवार से इतनी अधिक निकटता एव समानता है कि कुछ विद्वान समेटिक और हमेटिक परिवारो को मिलाकर एक ही समेटिक-हैमेटिक परिवार मानते है। जसे समेटिक परिवार का नाम हजरत 'नोह' के बडे पुत्र 'सम' के आधार पर पडा है, वसे ही हमटिक परिवार का नाम हजरत 'नोह' के छोटे पुत्र 'हम' के नाम पर पडा हुआ बताया जाता है।

क्षेत्र

इस परिवार की भाषाओ का मुख्य क्षेत्र उत्तरी अफ्रीका है।

भाषाए

हमटिक परिवार की भाषाए अब प्राय विद्यमान नही है। जो विद्यमान है उन पर अन्य भाषाओ का बहुत अधिक प्रभाव है इस कारण उनकी गणना प्राय दूसरे परिवारो के अतगत होती है। इसकी दो मुख्य शाखाए है—'लेबियन' एव 'एथोपियन'।

साहित्य

प्राचीन मिस्री भाषा हमटिक परिवार की समझी जाती है, जिसके उदाहरण ईसा-पूर्व चार हजार वर्ष के मिलते हैं। इसकी कुछ भाषाओं में धार्मिक साहित्य उपलब्ध है। आजकल हमटिक के क्षेत्र में भी सैमटिक परिवार की भाषाओं का प्रयोग होता है।

विशेषताएं

यह पहले ही बताया जा चुका है कि हमटिक परिवार का सैमटिक परिवार से बहुत अधिक साम्य है, इस कारण दोनों की विशेषताएं भी प्रायः समान ही हैं। सैमटिक भाषाओं की विशेषताओं का उल्लेख ऊपर कर दिया गया है।

३.७.४ बांटू परिवार

बांटू शब्द का अर्थ है 'मनुष्य'। इस परिवार की भाषाओं में 'मनुष्य' के लिए 'बांटू' से मिलता-जुलता शब्द प्रयुक्त होता है। इसी से इस परिवार का नाम 'बांटू' पड़ गया है।

क्षेत्र

बांटू अफ्रीका खंड का मुख्य भाषा परिवार है। इस परिवार का मुख्य क्षेत्र मध्य एवं दक्षिण अफ्रीका है। जंजीबार द्वीप में भी इस परिवार की भाषाएं बोली जाती हैं।

भाषाएं

इस परिवार की लगभग डेढ़ सौ भाषाएं कही जाती हैं जिनमें मुख्य भाषाएं हैं—काफिर, जुलू, सेचुना, कांगा तथा जंजीबार द्वीप की प्रसिद्ध भाषा स्वाहिली।

साहित्य

इस परिवार की भाषाओं में साहित्य नहीं के बराबर है। स्वाहिली भाषा में थोड़ा-बहुत साहित्य मिलता है।

विशेषताएं

इस परिवार की भाषाएं मुख्य रूप से अश्लिष्ट पूर्व योगात्मक भाषाएं हैं।

इस परिवार की भाषाओं के शब्द प्रायः स्वरांत होते हैं, इस कारण इस परिवार की भाषाओं में संस्कृत के समान संगीतमयता मिलती है।

संयुक्त व्यंजना के अभाव के कारण इस परिवार की भाषाएं उच्चारण की दृष्टि से सरल एवं सुनने में मधुर लगती हैं। इस परिवार की भाषाओं में एक विशेष प्रकार की ध्वनियां होती हैं जिन्हें 'क्लिक' ध्वनियां कहते हैं।

३.७.५ द्रविड परिवार

द्रविड एक जाति विशेष का नाम है। उस जाति द्वारा बोली जानेवाली समस्त भाषाओं का सामूहिक नाम 'द्रविड परिवार' है। यों 'द्रविड' एवं 'तमिल' एक ही शब्द है। 'तमिल' 'द्रविड' का ही विकसित रूप है (द्रविड>द्रमिड>दमिल>तमिल) किंतु आज 'तमिल', इस परिवार की एक भाषा विशेष का नाम है। कुछ विद्वानों ने इस परिवार की भाषाओं को अन्य भाषा परिवारों से जोड़ने का प्रयत्न किया है किंतु उसमें वे सफल नहीं हुए हैं।

क्षेत्र

इस परिवार के बोलनेवाले मुख्य रूप से दक्षिण भारत में बसे हुए हैं। इसके अतिरिक्त भारत के पूर्वी भाग में बिहार एवं उड़ीसा तथा मध्य भारत में भी इस परिवार की कुछ भाषाएं बोली जाती हैं। भारत से बाहर दक्षिण में लंका द्वीप, पश्चिमोत्तर में बिलोचिस्तान में भी इस परिवार के लोग रहते हैं।

भाषाएं

इस परिवार की सर्वाधिक प्रसिद्ध भाषा 'तमिल' है। इसके अतिरिक्त अन्य मुख्य भाषाएं हैं—तेलुगु, मलयालम, कन्नड एवं तुलु। इन मुख्य भाषाओं के अतिरिक्त इस परिवार की कुछ और भाषाएं हैं—कुग, टुडा, कोड, गोंड, ओरांव, कुई, ब्राहुई।

साहित्य

साहित्य की दृष्टि से इस परिवार की 'तमिल' भाषा अत्यंत समृद्धशाली है। इसका साहित्य सातवीं शताब्दी से भी पूर्व का है। कुछ लोग इसके साहित्य को हजारों वर्षों का पुराना मानते हैं। साहित्य की दृष्टि से अन्य मुख्य भाषाएं हैं—तेलुगु, मलयालम एवं कन्नड।

विशेषताएं

इस परिवार की भाषाएं मुख्य रूप से अश्लिष्ट एवं योगात्मक भाषाएं हैं।

शब्द प्राय स्वरान्त होते हैं।

मूर्धन्य ध्वनियों की इस परिवार में प्रधानता है।

शब्द के आरंभ में सघोष ध्वनियों के प्रयोग का विधान नहीं है किन्तु स्वर-मध्य स्थिति में घोषत्व आवश्यक है (विशेषकर तमिल में)।

वचन दो किन्तु लिंग तीन होते हैं।

संज्ञाओं के सचेतन एवं अचेतन दो भेद होते हैं ('सचेतन' अर्थात जिनमें ज्ञान विवेक की शक्ति हो और 'अचेतन' अर्थात जिनमें ज्ञान विवेक की शक्ति न हो)।

द्रविड भाषाओं का भारतीय आर्य भाषाओं पर यथेष्ट मात्रा में प्रभाव पड़ा है। साथ ही द्रविड भाषाएं भी संस्कृत से बहुत अधिक प्रभावित हुई हैं।

३ ७ ६ चीनी-तिब्बती परिवार

चीनी तिब्बती परिवार का यह नाम चीन एवं तिब्बत देशों में उसकी प्रधानता के कारण पड़ा है। इस परिवार को एकाक्षरी परिवार भी कहा जाता है। यह नाम उसकी आकृतिगत विशेषताओं का द्योतक है।

क्षेत्र

इस परिवार की भाषाओं का मुख्य क्षेत्र चीन स्याम, तिब्बत एवं बर्मा है। वैसे भूटान एवं भारत के उत्तर पूर्व में भी इस परिवार के बोलनेवाले बसे हुए हैं।

भाषाएं

इस परिवार की मुख्य भाषा है चीनी (प्राचीन चीनी)। इसके अतिरिक्त थाई, तिब्बती बर्मी भाषाएं भी प्रसिद्ध भाषाएं हैं। भारत के उत्तर-पूर्व भाग की नागा बोलियां भी इसी परिवार की हैं।

साहित्य

इस परिवार की चीनी भाषा में संसार का बहुत प्राचीन साहित्य प्राप्त होता है। चीनी साहित्य की परंपरा का आरंभ ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष से मिलता है।

विशेषताए

इस परिवार की भाषाए अयोगात्मक हैं। इस कारण इस परिवार की भाषाओं में शब्दों के स्थान की प्रधानता होती है। वाक्य में स्थान विशेष के कारण ही कोई शब्द सज्ञा, क्रिया, आदि बनता है। स्थान परिवर्तित होने से शब्द का अर्थ बदल जाता है।

शब्द प्राय एक अक्षर (Syllable) के हैं। विभिन्न प्रकार की तानों (tones) के प्रयोग से एक ही शब्द से कई अर्थ अभिव्यक्त होते हैं।

अर्थ की स्पष्टता के लिए कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें 'रिक्त' शब्द कहा जा सकता है। ये शब्द धारणात्मक अर्थ न देकर मात्र व्याकरणात्मक अर्थ देते हैं।

ध्वनि-सरचना में अनुनासिकता का अधिक प्रयोग होता है।

३ ७ ७ यूराल-अल्ताई परिवार

यूराल एव अल्ताई पर्वतों के मध्य स्थित होने के कारण, इन भाषाओं के समूह का यह नाम पड गया है। कुछ लोग यूराल एव अल्ताई को अलग अलग परिवार मानते हैं। कुछ विद्वान इसमें से फिनिश एव तुर्की भाषाओं को अलग कर उन्हें अलग अलग परिवार मानना पसद करते हैं। अधिकतर विद्वान इन सबको मिलाकर यूराल-अल्ताई परिवार के स्थान पर यूराल अल्ताई वर्ग मानना उचित समझते हैं।

क्षेत्र

इस परिवार का क्षेत्र अत्यत विस्तृत है। इस परिवार की भाषाए यूराल एव अल्ताई पर्वतों के मध्य व्याप्त हैं। टर्की, हगेरी, फिनलैड, इस परिवार के कुछ प्रसिद्ध प्रदेश हैं।

भाषाए

इस परिवार की तीन प्रसिद्ध भाषाए हैं—फिनलैंड की फिनिश, हगेरी की मगियार एव टर्की की तुर्की। इसके अतिरिक्त तातारी, किरघीज उज्बेक, मगोल एव मचू भाषाए भी इसी परिवार से सबध रखती हैं।

साहित्य

फिनिश, मगियार एव तुर्की तीनों ही साहित्यिक भाषाए हैं। फिनिश का साहित्य सोलहवी शताब्दी के आसपास का है। तुर्की का साहित्य इससे अधिक

प्राचीन ह। तुर्की, अरबी एव फारसी से प्रभावित ह जब कि फिनिश पर भारोपीय भाषा-परिवार का पर्याप्त प्रभाव ह। तुर्की भाषा ने भी अरबी एव फारसी को प्रभावित किया ह। तुर्की का कुछ प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से एव कुछ फारसी उदू के माध्यम से हिंदी पर भी पडा ह। हिंदी में कई तुर्की के शब्द हैं।

विशेषताए

ये भाषाए आकृति की दृष्टि से अश्लिष्ट अतयोगात्मक ह। धातु के पीछे प्रत्यय जोडकर पदा की रचना की जाती ह।

स्वर सगति इन भाषाओं की एक और विशेषता ह जिसके कारण प्रत्यय के स्वरा में धातु के स्वरा के अनुरूप परिवतन हो जाता ह।

३ ७ ८ मलय-पालोनेशी परिवार

कुछ विद्वान इन्हें मलेनेशियन एव पालीनेशियन नाम के दो परिवारों में विभाजित करते हैं तो कुछ और विद्वान इन्हें दो से अधिक परिवारों में बाटते ह।

क्षेत्र

इस परिवार की भाषाए मलाया सुमात्रा, जावा, इडोनेशिया, बोर्नियो, फिजी, मडागास्कर आदि द्वीपों में बोली जाती ह।

भाषाए

इस परिवार की मुख्य भाषाए ह इडोनेशिया की मलय, फिजी की फिजीयन, जावा की जावानीज एव न्यूजीलैंड की मओरी।

साहित्य

मलय भाषा में प्राचीन साहित्य का अच्छा भडार ह। जावानीज एव मओरी भी साहित्यिक भाषाए ह।

विशेषताए

इस परिवार की भाषाए प्राय अश्लिष्ट योगात्मक ह। धातुओं से प्रत्यय जोडकर शब्द बनाये जाते ह।

बहुत-सी भाषाओं में स्वराघात महत्वपूण है।
कुछ भाषाओं में चार तक वचन ह।

३ ७ ९ काकेशी परिवार

यह वस्तुत सी भाषाओ का एक ऐसा समूह है जिसमें कुछ भाषाए तो परस्पर समानता रखती है, किंतु कुछ भाषाए यथेष्ट मात्रा में एक दूसरे से भिन्न है।

क्षेत्र

इस परिवार की भाषाओ के बोलनेवाले काकेशस पवत के निकटवर्ती स्थानों पर बसते है। ये पवत काला सागर एव कस्पियन सागर के मध्य स्थित है।

भाषाए

इस परिवार की अनेक भाषाए विभाषाए एव बोलिया है जिनमें जार्जिआ की जार्जियन प्रसिद्ध भाषा है।

साहित्य

इस परिवार की भाषाए प्राय बालचाल की है। जार्जियन भाषा में अवश्य कुछ साहित्य उपलब्ध है।

विशेषताए

ये भाषाए अश्लिष्ट एव श्लिष्ट के मध्य की है। धातुओ में विभक्ति एव प्रत्यय दोनों का प्रयोग होता है। इस परिवार की कुछ भाषाओ में छह लिंग है। कुछ भाषाओं में विभक्तियों की संख्या बहुत अधिक है।

३ ७ १० आस्ट्रिक परिवार

आस्ट्रिक का अर्थ है 'दक्षिण का'। इस परिवार की भाषाए दक्षिण द्वीप समूह में फैली हुई है।

क्षेत्र

इस परिवार की भाषाओं का एक समूह (जिसे 'मानख्मेर' कहते है) बर्मा, स्याम तथा निकोबार द्वीप-समूह में फैला हुआ है। दूसरे समूह की भाषाए (जिन्हे मुडा कहते है) मुख्य रूप से भारत के पूर्व-पहाडी भाग, बिहार एव मध्यप्रदेश के कुछ भागों एव खासी पहाडियो पर बोली जाती है।

भाषाए

इस परिवार की मुख्य भाषाए है—मान ख्मेर, मुडा, सथाली आदि।

साहित्य

मान एवं ख्मेर साहित्यिक भाषाएं हैं। अन्य भाषाएं प्रायः बोलचाल की हैं।

विशेषताएं

इस परिवार की भाषाएं मुख्य रूप से अश्लिष्ट योगात्मक हैं। धातु में प्रत्यय एवं उपसर्ग जोड़कर शब्द निर्मित किये जाते हैं। मुंडा भाषाएं जो कि भारत में बोली जाती हैं उन पर आर्य एवं द्रविड़ भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव है। साथ ही मुंडा भाषाओं ने भारत की अन्य भाषाओं को भी काफी प्रभावित किया है।

३ ७ ११ जापानी-कोरियाई परिवार

जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह मुख्य रूप से जापान एवं कोरिया की भाषाओं का परिवार है। कुछ लोग इन्हें 'अनिश्चित' के वर्ग में रखना उचित समझते हैं क्योंकि दोनों भाषा समूहों की भाषाओं के संबंध में निश्चय पूर्वक कहना कठिन है। कुछ विद्वान इन भाषाओं को चीनी तिब्बती अथवा यूराल अल्ताई परिवार में गिनना भी उचित समझते हैं। अधिक विद्वान कोरिया एवं जापान की भाषाओं का एक अलग ही परिवार मानना ठीक समझते हैं। इसी से यहां जापानी कोरियाई परिवार का उल्लेख किया जा रहा है।

क्षेत्र

कोरिया एवं जापान ही इस परिवार की भाषाओं का क्षेत्र है।

भाषाएं

इस परिवार की भाषाएं मुख्य रूप से कोरियाई एवं जापानी हैं।

साहित्य

जापानी, साहित्य की दृष्टि से संसार की समृद्ध भाषाओं में से एक है। जापानी का साहित्य सातवीं-आठवीं शताब्दी से मिलने लगता है।

विशेषताएं

कोरियाई भाषा पर चीनी का प्रभाव है। ये दोनों भाषाएं मुख्य रूप से अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएं हैं। शब्द रचना में प्रत्यय का प्रयोग होता है।

३ ७ १२ अमेरीकी परिवार

उत्तर अमेरीका एव दक्षिण अमेरीका के मूल निवासियो की लगभग ऐसी चार-सो भाषाए हैं, जिन्हें एक सामूहिक नाम 'अमेरीकी भाषाओ का वर्ग' दिया गया है। इन भाषाओं का कोई विशेष भाषा वैज्ञानिक अध्ययन नही हुआ है। निश्चित रूप से ये भाषाए एक नही अनेक परिवारो की होगी।

ये भाषाए प्राय बोलचाल की हैं। बहुत भाषाओ की कोई लिपि भी नही है। नाम मात्र का साहित्य भी एक आध भाषा का ही मिलता है।

जब तक इन भाषाओ का विधिवत अध्ययन नही होता, तब तक इनके सबध में अधिक कुछ कह सकना सभव नही है।

कुछ विद्वान उपर्युक्त परिवारो के अतिरिक्त, एक 'अनिश्चित' परिवार भी गिनाते है किन्तु इसकी कोई विशेष उपयोगिता नही है क्योकि निश्चित रूप से तो कुछ ही भाषाओ के लिये कहा जा सकता है। बहुत अधिक भाषाओ का तो अध्ययन ही नही हुआ है। वे भी एक प्रकार से 'अनिश्चित' समूह के ही अतर्गत आती है। इस स्थिति में अनिश्चित परिवार का क्षेत्र समस्त निश्चित परिवारो से अधिक विस्तृत होगा।

३ ८ भारत के भाषा-परिवार

भारत में मुख्य रूप से जिन दो परिवारो की भाषाए बोली जाती हैं, वे है—भारोपीय परिवार एव द्रविड परिवार।

प्राय सपूर्ण उत्तर भारत में भारोपीय परिवार की, (भारतीय शाखा) भाषाए बोली जाती है। इनमे मुख्य है—हिंदी, बगला, बिहारी, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती, सिंधी, एव पजाबी।

सपूर्ण दक्षिण भारत में द्रविड परिवार की भाषाए बोली जाती है। इस परिवार की मुख्य भाषाए है—तमिल (तमिलनाडु), तेलुगु (आध्र प्रदेश), कन्नड (मैसूर) एव मलयालम (केरल)। द्रविड परिवार की कुछ भाषाए भारत के अन्य भागो—बिहार में 'ओराव' तथा मध्य प्रदेश में 'गोंडी' में भी बोली जाती है।

इन दो मुख्य परिवारो के अतिरिक्त दो अन्य परिवारों की भाषाए भी भारत में बोली जाती है। ये परिवार है—चीनी तिब्बती परिवार एव आस्ट्रिक परिवार।

चीनी तिब्बती परिवार की भाषाओं के बोलनेवाले पूर्वी पहाड़ी भाग (असम के निकट) तथा उत्तर के पहाड़ी भाग (हिमालय के निकटवर्ती प्रदेश) में बसते हैं। इस परिवार की जो मुख्य बोलियां भारत में बोली जाती हैं, वे हैं—लुशई, गारो, अक आदि।

चौथे परिवार आस्टिक की भाषाएं भारत के पूर्व एवं मध्य भाग में बोली जाती हैं। इनमें मुख्य भाषाएं हैं—मुंडारी, संथाली, हो खड़िया।

इन चार परिवारों की भाषाओं के अतिरिक्त दो भाषाएं ऐसी भी हैं, जिनको किसी भी परिवार में नहीं रखा जा सकता। ये भाषाएं हैं—कश्मीर के एक स्थान की भाषा 'बरुशास्की' तथा दूसरी भाषा है अंडमान द्वीप में बोली जानेवाली 'अंडमानी'। इन दोनों भाषाओं को किसी भी परिवार में रखने का प्रयास सफल नहीं हुआ है।



स्मरण संकेत

३ १ भाषाओं में पाई जाने वाली समानता के आधार पर भाषाओं को विभिन्न समूहों में बाटने को भाषाओं का वर्गीकरण कहते हैं ।

३ २ वर्गीकरण के दो आधार हैं रचनागत समानता एव ऐतिहासिक सबध ।

३ ३ आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार रचनागत समानता है । इस आधार पर भाषाए अयोगात्मक एव योगात्मक (अश्लिष्ट, श्लिष्ट, प्रश्लिष्ट) होती हैं ।

३ ४ पारिवारिक वर्गीकरण का आधार भाषाओं में पाया जाने वाला ऐतिहासिक सबध है । भाषाओं में पाई जाने वाली समानता के अनेक कारण होते हैं ।

३ ५ प्रत्येक भाषा-समुदाय विघटित होकर अनेक समूहों में विभाजित हो जाता है तथा उनकी भाषा अनेक उपभाषाओं में विभाजित हो जाती है । ये उपभाषाए कालांतर में स्वतत्र भाषाए बन जाती हैं । इस प्रकार एक ही भाषा से विकसित अनेक भाषाओं का एक परिवार बन जाता है ।

३ ६ पारिवारिक वर्गीकरण के सिद्धात—
स्थान की निकटता, मूल शब्दावली में समानता, व्याकरणात्मक समानता, ध्वन्यात्मक समानता ।

३ ७ ससार के मुख्य भाषा परिवार हैं—
भारोपीय, सामी, हामी, बांटू, द्रविड, चीनी तिब्बती, यूराल, अल्ताई मलय-पालिनेशी, काकेशी, आस्ट्रिक, जापानी-कोरियाई, अमेरीकी ।

३ ८ भारत के मुख्य भाषा परिवार हैं भारोपीय एव द्रविड़ । दो अन्य परिवार हैं चीनी तिब्बती एव आस्ट्रिक ।

●

४ भारोपीय परिवार एवं आर्य भाषाएं



- भारोपीय परिवार का महत्व
- भारोपीय परिवार के नाम की समस्या
- भारोपीय भाषा एव उसका क्षेत्र
- भारोपीय भाषा की सरचना
  - —ध्वन्यात्मक सरचना
  - —व्याकरणात्मक सरचना
- भारोपीय परिवार का विभाजन
  - —केंतुम समुदाय (ग्रीक, इटालिक, केल्टिक, जर्मनिक, तोखारी)
  - —सतम समुदाय (बालटो-स्लाविक, आर्मेनियन, अल्बेनियन, आर्य)
- आर्य उपपरिवार
  - —ईरानी शाखा
  - —दरद शाखा
  - —भारतीय शाखा
- भारतीय भाषाए
  - —प्राचीन काल
  - —मध्य काल
  - —आधुनिक काल
- आधुनिक आर्य भाषाओ का वर्गीकरण
- आधुनिक आर्य भाषाओ का परिचय



४ १ भारोपीय परिवार का महत्व

भारोपीय परिवार, जिसे अब कुछ विद्वान 'भारत हिट्टाईट' कहना अधिक उचित समझते हैं ससार का सर्वाधिक प्रसिद्ध परिवार है।

इस परिवार की प्रसिद्धि के कई कारण ह। एक तो यह परिवार बहुत बडे भू भाग में फला हुआ है तथा ससार में सबसे अधिक सख्या इस परिवार की भाषाए बोलने वालों की ह। इसके सिवाय इस परिवार में लैटिन, ग्रीक, सस्कृत जसी भाषाए हैं, जो साहित्य की दृष्टि से ससार की सबसे अधिक समृद्ध भाषाए ह। इस परिवार की सास्कृतिक परपरा इतनी उत्कृष्ट है कि और कोई भी परिवार इसकी समानता नही कर सकता।

४ २ नाम की समस्या

नाम की दृष्टि से, आरभ से लेकर यह परिवार विवादास्पद रहा है। कभी इस परिवार को 'इडो जर्मनिक' परिवार कहा गया, क्योंकि भारत एव जर्मनी इस परिवार की सीमाए ह (आज भी जर्मनी में कई विद्वान इसी नाम का प्रयोग करते ह)। यह नाम इसलिए छोड दिया गया क्योंकि इस नाम के कारण यूरोप एव एशिया की कई भाषाए इस परिवार के बाहर रह जाती थीं। यही बात 'इडो केल्टिक' की है।

कुछ दिनों तक इस परिवार का नाम 'आर्य' परिवार चला। यह छोटा एव किसी सीमा तक उपयुक्त नाम था किन्तु इस नाम का भी आगे चलकर परित्याग करना पडा क्योंकि इस नाम से यह भ्रामक धारणा उत्पन्न होती थी कि इस परिवार के बोलनेवाले सब आर्य जाति के हैं। आगे चलकर इस परिवार के एक उपपरिवार (भारत ईरानी) को आर्य कहा जाने लगा, जो अधिक उपयुक्त था।

सैमेटिक हैमेटिक के समान कुछ दिनों तक इस परिवार को जैफेटिक' परिवार भी कहा गया। इसका आधार बाइबिल में किया गया मानव जाति का वर्गीकरण ह। इस नाम का कोई तार्किक आधार नही था, इस कारण यह चल ही नहीं पाया।

इस परिवार का सब से अधिक प्रचलित नाम 'भारोपीय' परिवार रहा ह। यह नाम भारतीय-यूरोपीय का मिश्रित रूप ह। यह नाम भौगोलिक स्थिति पर आधारित ह। इसका अर्थ ह भारत एव यूरोप की भाषाओं का समूह। यह नाम भी पूर्ण निर्दोष नही ह। इस नाम से दो भ्रामक धारणाए उत्पन्न होती ह। एक तो यह कि भारत एव यूरोप में केवल इसी परिवार

की भाषाएं बोली जाती है। दूसरी यह कि इस परिवार की भाषाएं भारत एवं यूरोप के सिवाय अन्य किसी स्थान पर नहीं बोली जाती। भारत एवं यूरोप में इस परिवार के सिवाय अन्य परिवारों की भाषाएं भी बोली जाती हैं। भारत में भारोपीय परिवार के अतिरिक्त द्रविड़ चीनी तिब्बती एवं आस्ट्रिक परिवारों की भाषाएं भी बोली जाती हैं तथा यूरोप में भी इस परिवार के अतिरिक्त अन्य परिवारों की भाषाएं बोली जाती हैं। फिर इस परिवार की भाषाएं भारत एवं यूरोप तक ही सीमित नहीं हैं। एशिया की कई भाषाएं (ईरानी आदि) इसी परिवार की हैं।

कुछ दिनों से इस परिवार के लिए एक नया नाम प्रचलित होने लगा है। यह नाम है 'इंडो हिट्टाइट' अथवा 'भारत हित्ती परिवार'। इस नये नाम का आधार है एशिया माइनर में प्राप्त हिट्टाइट नामक भाषा के अवशेष। ऐसा माना जाता है कि हिट्टाइट मूल भारोपीय भाषा की परवर्ती विकसित भाषा न होकर उसकी समकालीन थी। इस कारण उसे भारोपीय परिवार की एक शाखा नहीं माना जा सकता। यो इंडो हिट्टाइट नाम भी प्रचलित होने लगा है किंतु अब भी बहुत अधिक प्रयोग 'भारोपीय' नाम का ही होता है।

४ ३ मूल भारोपीय भाषा एवं उसका क्षेत्र

वे समस्त भाषाएं जिनके समूह का नाम 'भारोपीय' (अथवा भारत हिट्टाइट) परिवार है, वे जिस मूल भाषा से उत्पन्न हुई हैं उस भाषा की लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है। प्राचीन भाषाओं ग्रीक, लैटिन, संस्कृत के तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा वैज्ञानिकों ने उस भाषा की पुनर्रचना (*Reconstruction*) की है। यही भाषावैज्ञानिकों द्वारा निर्मित-कल्पित भाषा, 'भारोपीय भाषा' कहलाती है।

उस मूल भारोपीय भाषा के स्थान एवं काल के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। भारोपीय भाषा एवं उसके बोलनेवालों के मूल स्थान के संबंध में कुछ विद्वानों का विचार है कि वह मूल स्थान भारत था। ये विद्वान प्रायः भारतीय हैं। इन लोगों के मत का आधार प्राचीन भारतीय साहित्य (वेद, पुराण आदि) है। यह मत भाषावैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित न होने के कारण तर्कसंगत नहीं है।

भारोपीय भाषा के मूल स्थान को भारत से बाहर माननेवालों में से कुछ इसका मूल स्थान यूरोप में बताते हैं, कुछ एशिया में इसके मूल स्थान की

कल्पना करते हैं। बहुत से विद्वान यूरोप एवं एशिया के बीच की इसकी स्थिति को स्वीकार करते हैं। लोकमान्य तिलक ने उत्तरी ध्रुव के निकट उस मूल स्थान को माना है।

अधिकतर विद्वान यह मानते हैं कि ईसा से लगभग ढाई हज़ार वर्ष पूर्व एक जाति (जिसे 'विरोस' कहा जाता है) मध्य एशिया में यूराल-अल्ताई पर्वत के निकटवर्ती मैदान में निवास करती थी। इसी जाति की भाषा मूल भारोपीय भाषा थी। इस जाति की एक शाखा वहाँ से ईरान की ओर चली गई एवं वहीं बस गई। जहाँ से फिर एक समूह भारत की ओर चला आया। मध्य एशिया में जो शाखा रह गई थी वह भी कुछ समय के पश्चात् वहाँ से यूरोप की ओर चली गई एवं यूरोप के विभिन्न स्थानों पर इस शाखा के विभिन्न समुदाय बस गए। इस प्रकार मध्य एशिया की एक तरफ भारत एवं दूसरी ओर यूरोप तक उस जाति एवं भाषा का फैलाव हो गया। इसीसे इस परिवार की भाषाएँ भारत, एशिया एवं यूरोप में विद्यमान हैं।

४.४ भारोपीय भाषा की संरचना

भाषावैज्ञानिकों द्वारा निर्मित उस मूल भारोपीय भाषा की ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक संरचना का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

४.४.१ ध्वन्यात्मक-संरचना

(क) स्वर

भारोपीय भाषा में कई प्रकार के स्वर थे तथा उनकी संख्या भी पर्याप्त थी। इस भाषा में पाँच ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ऍ, ऑ, थे। इतने ही दीर्घ स्वर भी थे—आ, ई, ऊ, ए, आ। एक उदासीन अथवा अतिह्रस्व स्वर था—अ॑। कुछ अन्य ध्वनियाँ जो स्वरवत् प्रयुक्त होती थीं, वे थीं—ऋ, लृ, म्ॢ, न्ॢ। इनके भी ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों रूप थे। संयुक्त स्वरों की संख्या भी यथेष्ट थी। संयुक्त स्वरों की रचना में प्रथम सदस्य उपर्युक्त ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों में से कोई एक स्वर होता था (इ उ, ऋ लृ म, न् के सिवाय) एवं दूसरा सदस्य इ उ, ऋ, लृ म्ॢ, न्ॢ—स्वरों में से कोई एक स्वर होता था। यथा—अइ, एउ, ओउ, अऋ आदि।

य, र, ल, व ऐसी ध्वनियाँ थीं, जिनका प्रयोग आक्षरिक रचना के लिए स्वरवत् होता था।

स्वरों में अनुनासिकता का विधान नहीं था।

(ख) व्यंजन

इसमें प वर्ग (प फ ब भ म) त वर्ग (त थ, द, ध न) के अतिरिक्त तीन प्रकार की क वर्गीय ध्वनियां थीं—

(१) क ख ग घ

(२) क्य ख्य ग्य घ्य

(३) क्व ख्व ग्व घ्व

ये समस्त ध्वनियां कंठ से संबंधित थीं। (१) वर्ग की ध्वनियां कंठ्य (२) वर्ग की कंठ तालव्य एवं (३) वर्ग की कंठोष्ठ्य थीं। संस्कृत में (१) वर्ग की ध्वनियां स श ष—उष्म ध्वनियां में विकसित हुई हैं (२) वर्ग की ध्वनियों से च वर्ग की ध्वनियां (च छ ज झ) का विकास हुआ है एवं (३) वर्ग की ध्वनियां क वर्ग में विकसित हुई हैं।

भारोपीय		संस्कृत
क ख, ग, घ	>	स श ष
क्य ख्य ग्य घ्य	>	च, छ ज झ
क्व ख्व, ग्व घ्व	>	क ख, ग, घ

इसके अतिरिक्त य र, ल व, स ज व्यंजन ध्वनियां थीं।

ह के संभवत दो रूप थे—सघोष एवं अघोष।

संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग होता था।

ध्वन्यात्मक संरचना में स्वराघात का महत्व था।

४ ४ २ व्याकरणात्मक संरचना

ऐसा लगता है कि भारोपीय भाषा श्लिष्ट एवं अश्लिष्ट के मध्य की थी, जिसमें अर्थ तत्व एवं संबंध तत्व परस्पर घुले मिले रहते थे।

पद रचना, धातु में प्रत्यय जोड़कर की जाती थी। पद रचना जटिल थी।

व्याकरणात्मक शब्द संज्ञा, क्रिया एवं अव्यय अलग-अलग थे किंतु सर्वनाम एवं विशेषण संज्ञा के ही भाग थे। सर्वनामों में विविधता थी। शब्द रूपों में तीन पुरुष तीन लिंग तीन वचन एवं आठ कारकों का प्रयोग होता था। शब्दों का समास रचना भी होती थी।

क्रिया के चार काल एवं पांच भाव थे। क्रिया में महत्व, काल की अपेक्षा कार्य की पूर्णता-अपूर्णता की स्थिति को था। क्रियाएं दो प्रकार थीं—आत्मनेपदीय एवं परस्मैपदीय।

व्याकरणात्मक संरचना में सुर एवं स्वराघात का महत्व था। साथ ही शब्द के मध्य का स्वर-परिवर्तन, रचनात्मक महत्व रखता था।

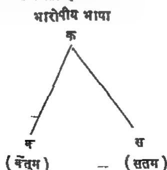
४.५ भारोपीय परिवार का विभाजन

यद्यपि एक परिवार की समस्त भाषाएं परस्पर संबंधित रहती हैं, तथापि कुछ भाषाएं एक दूसरे के अधिक निकट होती हैं। इस निकटता के आधार पर एक परिवार को फिर विभिन्न समुदायों, उपपरिवारों, शाखाओं आदि में विभाजित किया जाता है।

४.५.१ भारोपीय परिवार के समुदाय—केंतुम एवं सतम

भारोपीय परिवार को 'केंतुम' एवं 'सतम', दो समुदायों में विभाजित किया जाता है। इस विभाजन का मुख्य आधार है—कंठ्य ध्वनियों का विकास।

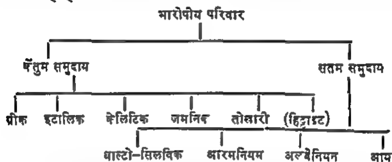
भारोपीय भाषा में जो (१) वर्ग की जो कंठ्य ध्वनियां थीं, वे कुछ भाषाओं में 'क' वर्गीय रहीं (क, ख आदि) पर कुछ अन्य भाषाओं में ये ध्वनियां संघर्षी (स, श, ष) बन गई। उदाहरणार्थ भारोपीय भाषा का शब्द 'दक' ग्रीक में 'दक' है एवं संस्कृत में 'दश'। वे भाषाएं जिनमें ये ध्वनियां 'क वर्गीय' बनी रहीं, उन्हें 'केंतुम' समुदाय में रखा गया एवं जिन भाषाओं में ये ध्वनियां संघर्षी 'स', 'श' बन गई थीं उन्हें 'सतम' समुदाय में रखा गया। नीचे की तालिका इस परिवर्तन को स्पष्ट करती है।



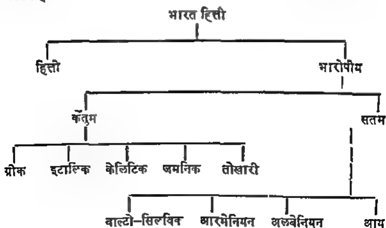
केंतुम सतम, नाम देने का मुख्य कारण यह है कि इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है अर्थात् १००। 'केंतुम' शब्द लैटिन भाषा का है एवं 'सतम' अवेस्ता का। ऐसा सोचा गया कि जिन भाषाओं में '१००' संख्या के लिए प्रयुक्त शब्द 'क' या उससे मिलती जुलती ध्वनि रखता है वे भाषाएं 'केंतुम'

वर्ग की हुई एवं जिन भाषाओं में '१००' संख्या के लिए प्रयुक्त शब्द में श, स, ध्वनि होगी, वे भाषाएं 'सतम' समुदाय की होंगी। इस प्रकार भारोपीय परिवार की समस्त भाषाएं इन दो समुदायों में बांट दी गई।

ऊपर जिन 'केंतुम' एवं 'सतम' समुदायों का वर्णन किया गया है, उनमें से प्रत्येक समुदाय में अनेक उपपरिवार हैं। नीचे इन उपपरिवारों की तालिका दी जा रही है।



जैसा कि पहले ही बताया गया है कुछ विद्वान 'हिट्टाइट' को एक अलग उपपरिवार मानकर उसे केंतुम समुदाय में गिनते हैं किंतु बहुत से विद्वान उसे भारोपीय परिवार का उपपरिवार न मानकर हिट्टाइट एवं भारोपीय को एक ही भाषा (जिसे इंडो हिट्टाइट अथवा भारत हित्ती कहा जा सकता है) के दो समकक्ष वर्ग मानते हैं। इस मत को स्वीकार करने पर तालिका इस प्रकार होगी।



आगामी परिच्छेदों में उपर्युक्त उपपरिवारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

४ ५ २ केंतुम समुदाय के उपपरिवार

(क) ग्रीक उपपरिवार

ग्रीक केंतुम समुदाय का प्राचीन एव प्रसिद्ध उपपरिवार है। इसे 'हेलेनिक' भी कहते है। इस उपपरिवार का विस्तार ग्रीस, क्रीट, साइप्रस आदि स्थानो तक है। ग्रीक इस उपपरिवार की सर्वाधिक प्रसिद्ध भाषा है। ग्रीस की सस्कृति एव वहा का साहित्य बहुत पुराना है। ग्रीक के प्रसिद्ध कवि होमर ने ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व 'इलियड' एव 'ओडिसी' नामक महाकाव्यों की रचना की थी। यूरोप के साहित्य एव सस्कृति पर ग्रीक के साहित्य एव वहा की सस्कृति का बडा प्रभाव पडा है। प्लेटो एव अरस्तू जसे महान विचारक एव सिकन्दर जसे विश्व विजेता इसी ग्रीस ने उत्पन्न किए है।

ग्रीक की अन्य प्रसिद्ध भाषा थी 'एटिक' जो विकसित होकर 'कोइने' कहलाई। वर्तमान ग्रीक का विकास इसी 'कोइने' से हुआ है। डोरक भी इस उपपरिवार की प्रसिद्ध भाषा थी।

प्राचीन ग्रीक की रचना का सस्कृत से बहुत साम्य है।

(ख) इटालिक उपपरिवार

इटालिक उपपरिवार को 'लटिन' उपपरिवार भी कहते है क्योकि इस उपपरिवार की सबसे अधिक प्रसिद्ध भाषा लटिन है। 'लटिन' रोमन-कथलिक सप्रदाय की धर्म भाषा एव यूरोप की सास्कृतिक भाषा है। यूरोप में उसका वही स्थान है जो भारत में सस्कृत का है।

ईसा पूर्व ५०० के आस पास लैटिन के शिला लेख मिलने लगते है।

प्राचीन लटिन, मध्ययुग में विकसित होकर सपूर्ण रोमन साम्राज्य की राज्य भाषा बन गई। उसी मध्यकालीन लटिन से आधुनिक लटिन का विकास हुआ है।

इस उपपरिवार की प्राचीन भाषाओ 'ओस्कन' एव 'अम्ब्रियन' का परवर्ती विकास नही मिलता।

इस उपपरिवार की अन्य मुख्य भाषाए है—फ्रेंच (फ्रास), पुर्तगाली (पुर्तगाल), स्पैनिश (स्पेन)।

(ग) केल्टिक उपपरिवार

इस उपपरिवार की प्राचीन भाषा केल्टिक थी, जो कभी मध्य यूरोप की मुख्य भाषा थी। आज इसकी परंपरा का पता नहीं लगता। केल्टिक का साहित्य ईसा की पांचवीं शताब्दी के आस-पास मिलता है।

इस परिवार की इस समय मुख्य भाषाएं हैं—आयरलैंड की 'आयरिश' एवं वेल्स की भाषा 'वेल्श'।

इसके अतिरिक्त मानद्वीप की 'मान', स्काटलैंड की 'स्काच' ब्रिटेन एवं फ्रांस में बोली जाने वाली 'ब्रिटेनी' एवं प्राचीन भाषा 'गाल' भी इसी उपपरिवार की भाषाएं हैं।

(घ) जर्मनिक उपपरिवार

भारोपीय परिवार का यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपपरिवार है। इस उपपरिवार को 'ट्यूटानिक' भी कहते हैं। अंग्रेजी इसी उपपरिवार की भाषा है, जो प्रयोग की दृष्टि से आज विश्व की सबसे महत्वपूर्ण भाषा है।

इस उपपरिवार की सबसे प्राचीन भाषा 'गाथिक' है जो आज लुप्तप्राय है। गाथिक की सबसे प्राचीन रचना (बाइबिल का अनुवाद) ईसा की चौथी शताब्दी की है।

इस उपपरिवार की अन्य प्रसिद्ध भाषाएं हैं—जर्मन (जर्मनी), डनिश (डेनमार्क) नार्वेयन (नार्वे), स्विडिश (स्वीडन) डच (नीदरलैंड)। इस उपपरिवार की प्रसिद्ध भाषा अंग्रेजी का विकास निम्न जर्मन की एक शाखा आंग्ल-सैक्सन से हुआ है।

इस उपपरिवार की अनेक भाषाएं, साहित्य की दृष्टि से संसार की प्रसिद्ध भाषाएं हैं।

इस उपपरिवार की भाषाओं में भारोपीय भाषा की ध्वनियों का महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ था, जिस परिवर्तन के आधार पर ग्रिम, ग्रासमन एवं वर्नर के ध्वनि नियम आधारित हैं।

(ङ) तोखारी उपपरिवार

केंतुम समुदाय के इस उपपरिवार का पता बीसवीं शताब्दी में तब लगा जब पूर्वी तुर्किस्तान से प्राप्त कुछ पत्रों एवं ग्रंथों का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि यह भाषा भारोपीय परिवार की भाषा थी।

इस भाषा को बोलनेवाली जाति 'तोखार' अथवा 'तोषार' कही जाती है,

इस कारण इस भाषा को 'तोखारी' कहा गया है।

तोखारी में प्राप्त सामग्री ईसा की प्रथम शताब्दी से भी पूर्व की है।

स्थान की निकटता के फलस्वरूप, तोखारी पर यूराल-अल्टाई भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

ऐसा माना जाता है कि यह भाषा ७वीं शताब्दी के निकट समाप्त हो गई।

हिट्टाइट अथवा हित्ती उपपरिवार

२०वीं शताब्दी के आरम्भ में एशिया माइनर के बोगाजकुई गांव की खुदाई से कुछ ऐसी सामग्री प्राप्त हुई जिसमें हिट्टाइट अथवा हित्ती भाषा का पता लगा। यह सामग्री मिट्टी की चौड़ी पट्टिकाओं पर कीलाक्षरों से लिखे अभिलेख हैं जिनका समय ईसा पूर्व २००० के लगभग आंका गया है।

इस भाषा पर यद्यपि समेटिक परिवार की सुमेरायन एवं अक्केडीयन भाषाओं का बहुत अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथापि यह भाषा निश्चित रूप से भारोपीय परिवार की भाषा है क्योंकि भारोपीय भाषा की कुछ विशेषताएं केवल हित्ती में ही दिखाई पड़ती हैं। इसकी प्राचीनता के कारण ही कुछ भाषा-वैज्ञानिक उसे भारोपीय भाषा का समकालीन मानते हैं।

४.५.३ सतम समुदाय के उपपरिवार

(च) बाल्टो सिलविक उपपरिवार

इस उपपरिवार की भाषाएं मुख्य रूप से चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, बुल्गेरिया में बोली जाती हैं।

कुछ विद्वान 'बाल्टो' एवं 'सिलविक' को दो अलग अलग परिवार मानते हैं किंतु बहुत से विद्वान इन्हें एक ही परिवार की दो शाखाएं मानते हैं।

'बाल्टो' शाखा की मुख्य भाषाएं हैं—लिथुआनियन एवं लेटिश। इनमें से लिथुआनियन भारोपीय परिवार की सबसे प्राचीन भाषा गिनी जाती है (यदि हित्ती को भारोपीय भाषा के समकालीन मानें तो)। लिथुआनियन में भारोपीय भाषा की बहुत-सी विशेषताएं सुरक्षित हैं।

सिलविक शाखा की मुख्य भाषा है 'रूसी'। इस शाखा की अन्य प्रसिद्ध भाषाएं हैं—'चेक' एवं 'पालिश'। ईसा की नवीं शताब्दी के निकट इस शाखा की कुछ साहित्यिक रचनाएं उपलब्ध होती हैं।

(छ) आर्मेनियन उपपरिवार

आरमेनिया की भाषा आरमेनियन है। यह भाषा, भारोपीय परिवार के 'सतम' समुदाय की होने के कारण, आर्य परिवार के निकट है साथ ही यह भाषा सामी परिवार की भाषाओं से प्रभावित है। इस भाषा पर ईरानी का भी यथेष्ट प्रभाव है।

आरमेनियन के प्राचीन साहित्य का पता नहीं लगता जो साहित्य मिल रहा है वह १०वी–११वी शताब्दी का है।

(ज) अल्बेनियन उपपरिवार

भारोपीय परिवार की यह एक ऐसी भाषा है जो बहुत से परिवारों की बहुत-सी भाषाओं से प्रभावित है। इस भाषा पर लैटिन, ग्रीक के अतिरिक्त तुर्की, अरबी, फारसी का भी प्रभाव है। इस भाषा का सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व का साहित्य प्राप्त नहीं होता।

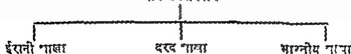
(झ) आर्य उपपरिवार

आर्य' सतम समुदाय का सबसे महत्वपूर्ण उपपरिवार है। इस उपपरिवार की संस्कृत भाषा संसार की अत्यंत प्राचीन भाषाओं में से एक है। विश्व में जो स्थान लैटिन एवं ग्रीक का है, वही स्थान संस्कृत का है। साहित्य की दृष्टि से यह भाषा संभवतः संसार की श्रेष्ठतम भाषा है।

इस उपपरिवार की तीन शाखाएं हैं—ईरानी, दरद एवं भारतीय। इस उपपरिवार से हमारी हिंदी का संबंध है। आगामी परिच्छेद में इस उपपरिवार का अधिक विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

४.६ आर्य उपपरिवार

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भारोपीय भाषा बोलनेवाली 'विरास' जाति का एक समूह अपना मूल स्थान छोड़कर ईरान की ओर चला गया। इस समूह के लोग अपने को आर्य कहते थे। निस्संदेह ईरान 'आर्य' शब्द से विकसित हुआ है। इसी समूह का एक भाग कालांतर में भारत की ओर चला आया। भारत की ओर आनेवाले इन आर्यों में से कुछ ईरान एवं भारत के मध्य के दरदिस्तान अर्थात पर्वतीय प्रदेश में ही रह गए। इस प्रकार आर्य कुल की तीन शाखाएं हैं—ईरानी शाखा, दरद शाखा एवं भारतीय शाखा।



४ ६ १ इरानी शाखा

ईरानी भाषाओं की तीन अवस्थाएं हैं—प्राचीन भाषाएं, मध्यकालीन भाषाएं एवं आधुनिक भाषाएं।

प्राचीन काल का समय ईसा से ४–५ शताब्दी पूर्व तक माना जाता है। इस काल की प्रमुख भाषाएं हैं—'अवेस्ता' एवं 'प्राचीन फारसी'। अवेस्ता की प्राचीनतम रचना का नाम भी 'अवेस्ता' ही है। यह ईरानियों का धर्मग्रंथ है। भारत में जो आदर वेदों को दिया जाता है वैसा ही आदर ईरानी 'अवेस्ता' को देते हैं। 'अवेस्ता' एवं भारत की प्राचीनतम रचना ऋग्वेद की भाषा में बहुत अधिक साम्य है। 'अवेस्ता' पर लिखी गई टीका 'ज़िंद' की भाषा भी प्राचीन काल के अंतर्गत आती है।

ईरानी का मध्यकाल, ईसा की पहली-दूसरी शताब्दी से आरंभ होता है। इस काल की प्रसिद्ध भाषा 'पहलवी' है, जिसका विकास प्राचीन फारसी से हुआ है।

ईरानी का आधुनिक काल ९–१० शताब्दी के आस पास शुरू होता है। आधुनिक ईरानी में लिखा फिरदौसी का 'शाहनामा' संसार के प्रसिद्ध महाकाव्यों में से एक है। आधुनिक ईरानी (जिसे फारसी कहा जाता है) पर अरबी एवं तुर्की का बहुत प्रभाव पड़ा है। आधुनिक ईरानी या फारसी के अतिरिक्त, आसती, कुर्दी, पश्तो एवं बिलोची भी आधुनिक ईरानी की ही बोलियां हैं।

४ ६ २ दरद शाखा

दरद का अर्थ 'पर्वत' है। अतः दरद शाखा की भाषाएं पर्वतीय प्रदेश में बोली जाती हैं। पामीर के दक्षिण-पूर्व एवं पंजाब के पश्चिमोत्तर में इस शाखा की भाषाएं बोली जाती हैं।

इस शाखा की 'शीना' भाषा प्राचीन दरद का प्रतिनिधित्व करती है। 'कश्मीरी' इस शाखा की प्रसिद्ध भाषा है। 'कश्मीरी' में संस्कृत के शब्द बहुत अधिक मात्रा में हैं। १४वीं शताब्दी से कश्मीरी का साहित्य मिलने लगता है।

४ ६ ३ भारतीय शाखा

भारतीय शाखा आर्य कुल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण शाखा है। हिंदी का इसी शाखा से संबंध है, अतः आगामी परिच्छेद में इसका विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

४ ७ भारतीय भापाए

भारतीय आय भापाओ का इतिहास लगभग साढे तीन हजार वर्षों का इतिहास ह अर्थात भारतीय आय भापाओ का इतिहास ईसा स लगभग १५०० वप पूव से आरभ होता ह।

भापागत विशेपताओ एव विभिन्नताओ के कारण इस दीघ काल को तीन विकास-खडो म विभक्त किया जाता ह।

प्राचीन काल (ईसा पूव १५०० से ई० पू० ५०० तक)
मध्य काल (ईसा पूव ५०० से १००० ई० तक)
आधुनिक काल (ईसा १००० से अब तक)

४ ७ १ प्राचीन काल (प्राचीन भारतीय आय भापाए)

भारतीय आय भापाओ का प्राचीन काल ईसा पूव १५०० से ई० पू० ५०० तक माना जाता ह। इस काल को *वदिक-सस्कृत अथवा केवल सस्कृत* काल भी कहा जा सकता ह। विकास की दृष्टि से इस काल की भापा के दो रूप ह—वैदिक भापा अथवा वदिक सस्कृत तथा सस्कृत अथवा लौकिक सस्कृत। वदिक सस्कृत वेदो की भापा का नाम ह जिसका प्राचीनतम रूप ऋग्वद में ह। ऋग्वद सभवत ससार की प्राचीनतम प्रामाणिक रचना ह। वेदो की रचना विभिन्न समयो में विभिन्न स्थानो पर विभिन्न ऋपियो द्वारा हुई ह, इस कारण वेदो की भापा म विविधता ह। वदो की भापा साहित्यिक एव लोक भापा का मिश्रित रूप ह।

वदिक भापा का दूसरा रूप, वेदो की परवर्ती रचनाओ ब्राह्मणग्रथो एव उपनिपदो म मिलता ह। इन रचनाओ की भापा, वदिक भापा से स्पष्ट रूप से परिवर्तित लगती ह।

वदिक भापा का युग ई० पू० १००० तक माना जाता ह। इस समय तक आर्यों की सत्ता मध्य देश में स्थापित हो चुकी थी और व अब पूव एव दक्षिण की ओर अग्रसर हो रहे थ। इससे जहा आर्यों की सत्ता का विस्तार हुआ, वहा आर्यों की भापा में भी काफी विकास हुआ अर्थात विभिन्न स्थानीय भापाओ के सपक स भारतीय आर्यों की भापा क विभिन्न स्थानीय रूप बनने लगे। यह स्थिति लगभग एसी ही थी, जसी कि आज हिंदी की ह। आज विभिन्न क्षत्रीय भापाओ क सपक स हिंदी के विविध रूप निर्मित हो रह ह। आज कवल पूर्वी हिंदी एव पश्चिमी हिंदी जस रूप ही नही ह, बवइया हिन्दी पजाबिया

हिंदी, गुजराती हिंदी जैसे रूप भी पनप रहे ह। आय भाषा की उस बढती हुई भिन्नता से चिंतित होकर पाणिनि ने वैदिक भाषा का परिनिष्ठीकरण किया (पाणिनि का सस्कृत व्याकरण 'अष्टाध्यायी')। इससे उसका एक रूप स्थिर हो गया एव वह सस्कार-युक्त होकर सस्कृत कहलाई। आय पश्चिमोत्तर से पूव एव दक्षिण की ओर बढे थे, अत आय भाषा के पूर्वी एव दक्षिणी रूप ही स्थानीय भाषाओ के प्रभाव से अधिक प्रभावित थे। इसलिए पाणिनि ने सस्कृत के उदीच्य अर्थात उत्तरी रूप को आदश रूप स्वीकार किया एव अन्य रूपो को 'शिष्ट प्रयोग' से बाहर अथवा अपवादों के भीतर रखकर प्राचीन आय भाषा को एसी स्थिरता प्रदान की कि वह जन भाषा न बनकर देव भाषा बन गई।

यद्यपि सस्कृत का काल ईसा से पूव ५०० तक ही माना जाता ह तथापि सस्कृत का प्रचार, प्रसार एव प्रभाव आज तक है।

प्राचीन आर्य भाषा की विशेषताए

प्राचीन आय भाषा में १३ स्वर ध्वनिया थी, जिसमें से ९ मूल स्वर थे (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ एव लृ) तथा ४ सध्य स्वर थे (ए ऐ, ओ, औ)। 'ऐ' एव 'औ' का उच्चारण क्रमश 'आई' एव 'आउ' होता था। भाषा में स्वराघात का महत्व था, जो तीन प्रकार का होता था (उदात्त, अनुदात्त एव स्वरित)। प्राचीन काल की भाषा में अपश्रुति का प्रयोग होता था, अर्थात शब्दों के मध्य स्वरों के परिवतन से अथ परिवर्तित हो जाता था (उदाहरणाथ, 'अप्नोमि' मैं प्राप्त करता हू', 'आप्नुम' 'हम प्राप्त करत ह')।

व्यजनों के पाच वग बन चुके थे। कवग, चवग (भारोपीय भाषा के एक कवग का विकास), टवग (सभवत आर्येतर प्रभाव क कारण) तवग एव पवग। इनके अतिरिक्त चार अधस्वर (य, र, ल, व) एव तीन उष्म (श, ष, स) तथा एक महाप्राण (ह) ध्वनिया थी। एक अनुनासिक ( ) एव एक विसग ध्वनि( ) भी थी। वदिक भाषा में लुण्ठित ळ, ळ्ह, जिह्वामूलीय ४ एव उपध्मानीय फ जैसी ध्वनिया थी जो सस्कृत में लुप्त हो गई।

शब्दों के रूप लिंग (तीन), वचन (तीन) एव कारक (आठ) के आधार पर बनते थे। विशेषण सज्ञा के समान ही परिवर्तित होते थे। सवनामो के रूपों में यथेष्ट विविधता थी। शब्द निर्माण में प्रत्ययो का प्रयोग होता था। शब्दों की सामासिक रचना का विधान था।

क्रिया रूपों का परिवर्तन वचन (तीन), पुरुष (तीन), पद (दो आत्मने, परस्म), काल—जिन्हें लकार कहते थे—(दस), वाच्य (तीन) के आधार पर होता था। धातुओं के विभिन्न समूह थे—जिन्हें गण (दस) कहते थे। क्रिया का रूपांतर भी प्रत्ययों के द्वारा होता था, जो अनेक थे। शब्द प्रत्यय एवं क्रिया प्रत्यय अलग अलग थे।

प्राचीन भाषा शब्द भंडार की दृष्टि से समृद्ध थी तथा उसमें नवीन शब्दों के निर्माण की असीम शक्ति थी।

४ ७ २ मध्य काल (मध्य कालीन भारतीय आर्य भाषाएं)

मध्यकालीन आर्यभाषाओं की अवधि ई० पू० ५०० से १००० ई० तक मानी जाती है। विकास की दृष्टि से इस काल के तीन सोपान माने जाते हैं। प्रथम सोपान ई० पू० ५०० से ईसा का प्रथम शताब्दी तक, द्वितीय सोपान ईसा की प्रथम शताब्दी से ५०० तक और तृतीय सोपान ५०० ई० से १००० ई० तक।

साधारण रूप से प्रथम सोपान को 'पालि काल', द्वितीय सोपान को 'प्राकृत काल' एवं तृतीय सोपान को 'अपभ्रंश काल' कहा जाता है। कुछ विद्वान इस पूरे मध्ययुग को प्राकृत काल कहकर पालि को 'प्रथम प्राकृत', प्राकृतक को द्वितीय अथवा साहित्यिक प्राकृत एवं अपभ्रंश को 'तृतीय प्राकृत' कहना उचित समझते हैं। इसका कारण यह है कि संस्कृत शिष्ट जनों की परिनिष्ठित एवं साहित्यिक भाषा थी। संस्कृत के सिवाय बाकी जो भी भाषाएं थी वे संस्कार युक्त न होने के कारण मूल अथवा प्राकृत थी।

४ ७ २ १ प्रथम सोपान-पालि अथवा प्रथम प्राकृत

भारतीय आर्य भाषा का मध्यकाल, भगवान बुद्ध द्वारा 'जन भाषा' में दिए गए वचनों से आरंभ होता है। यही 'जन भाषा' 'पालि अथवा प्रथम प्राकृत' कहलाती है।

'पाली' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक धारणाएं हैं। यहां कुछ का उल्लेख किया जाता है।

पालि < पंक्ति (बुद्ध के वचनों की पंक्ति-पंक्तिया)
पालि < पल्लि (अर्थात ग्राम अथवा ग्रामीण भाषा)
पालि < पाटलिपुत्र (मगध की भाषा होने के कारण ऐसा अनुमान किया गया)

पालि < परियाय (= प्रवचन)

पालि < पाइल < प्राकृत

सबसे अधिक मान्य एवं तर्कपूर्ण व्युत्पत्ति यह है कि 'पालि' 'पा–' धातु (= रक्षा करना) में '–लि' प्रत्यय लगाकर बनाया गया शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'रक्षा करती है'। पालि से बुद्ध भगवान के वचनों की रक्षा हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं।

पालि के क्षेत्र के संबंध में भी बड़ा विवाद है। सामान्य धारणा यह है कि भगवान बुद्ध के वचनों की वाणी होने के कारण उसका क्षेत्र मगध रहा होगा, किन्तु पाली एवं मागधी के लक्षणों में अंतर है। पूर्व में प्राप्त अशोक के मागधी शिलालेखों से भी पालि भिन्न है। पालि के लिए जिन अन्य क्षेत्रों की कल्पना की गई है वे हैं कलिंग (इसका आधार कलिंग में प्राप्त खंडगिरि के अभिलेखों से पालि की समानता है) उज्जैन (इसका आधार अशोक के पुत्र महेंद्र का उज्जैन में हुआ पालन-पोषण एवं महेंद्र के द्वारा ही बुद्धवचनों का संग्रह त्रिपिटक सिंहल ले जाना है), विंध्य प्रदेश (इसका कारण पालि में प्राप्त विंध्य प्रदेश की भाषा पैशाची की विशेषताएं हैं)। अधिक मान्य यह है कि पालि मध्य देश की भाषा पर आधारित साहित्यिक भाषा थी।

संस्कृत से पालि में हुए परिवर्तनों को समझने से आधुनिक हिन्दी के विकास को समझने में सुविधा होगी। संस्कृत से पालि में परिवर्तन हुए, उन्हें देखने से ज्ञात हो जाता है कि आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के बीज पालि में ही पड़ चुके थे। इन परिवर्तनों में सरलीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है। यहाँ पालि में हुए कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का उल्लेख किया जाता है। संस्कृत के 'ऐ', 'औ' संध्यक्षर पालि में मूल स्वर 'ए' 'ओ' में परिवर्तित हो गए। ऋ, लृ, जैसी ध्वनियाँ समाप्त हो गईं। तीन ऊष्म ध्वनियाँ (श, ष, स) के स्थान पर केवल 'स' रह गई। स्वराघात का प्रयोग समाप्त हो गया। संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग समाप्त प्राय हो गया।

शब्द रूपों में सरलता आई किंतु इससे शब्द रूपों में अनेकता आ गई। शब्द व्यंजनांत न होकर स्वरांत हो गए। तीन वचनों के बदले दो वचनों का प्रयोग होने लगा। आठ कारकों के स्थान पर छह कारक रह गए, लकारों की संख्या दस से घटकर आठ रह गई एवं पदों में से आत्मनेपद का लोप हो गया।

४ ७ २ २ अभिलेखीय प्राकृत

मध्यकाल के प्रथम सोपान (पालि युग) एवं द्वितीय सोपान (प्राकृत युग)

के मध्य जो अन्य भाषा के नमूने मिलते हैं, उनमें महाराजा अशोक के अभिलेख (गिरनार, कालसी आदि) की भाषा महत्त्वपूर्ण है। ये अभिलेख भारत के पूर्वी, मध्य भाग एवं पश्चिमोत्तरी भागों में प्राप्त हुए हैं। यद्यपि समस्त अभिलेखों पर पूर्वी भाषा का प्रभाव लक्षित होता है तथापि ये अभिलेख तत्कालीन भाषा रूपों की प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। इनमें से मुख्य अभिलेख हैं शहबाजगढ़ी, मानसेरा (पश्चिमोत्तर भाग), गुजरात के गिरनार, मथुरा के निकट कालसी (मध्य भाग) एवं कलिंग (पूर्वी भाग) में प्राप्त जौगढ़ के अभिलेख। इन अभिलेखों से स्थानीय भाषा रूपों (पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशीय एवं पूर्वी) का ज्ञान होता है।

इन अभिलेखों की भाषा का विकासक्रम पालि के समान ही है। दोनों में अंतर यह है कि पालि जहाँ परिनिष्ठित होने के कारण एकरूपी भाषा है वहाँ अभिलेखों की भाषा संबंधित स्थानीय भाषाओं की अभिव्यक्ति करती है।

पालि के समान ही अभिलेखों की भाषा में भी सरलीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है।

४.७.२.३ अश्वघोषीय प्राकृत एवं निय प्राकृत

इसी काल की दो अन्य प्राकृतों का उल्लेख करना आवश्यक है। इनमें से एक है घोष के नाटकों की प्राकृत जिसमें भी अभिलेखीय प्राकृत के समान पश्चिमोत्तरी मध्यदेशीय एवं पूर्वी भाषाओं के रूप मिलते हैं।

एशिया के 'निय' प्रदेश में प्राप्त कुछ पत्रों की भाषा 'निय प्राकृत' कही जाती है। इसका मूल आधार 'पश्चिमोत्तरी प्राकृत' के ढंग का है किन्तु भौगोलिक स्थिति के कारण उस पर निकटवर्ती भाषाओं ईरानी, तुखारी आदि का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

४.७.२.४ द्वितीय सोपान—प्राकृत अथवा साहित्यिक प्राकृत

मध्यकाल के द्वितीय सोपान (ईसा के प्रथम ५०० वर्षों) को प्राकृत-काल की संज्ञा दी जाती है। प्राकृत शब्द का संबंध 'प्रकृति' से है, जिसका अर्थ है 'साधारण', 'मूल', 'अकृत्रिम' आदि। इस दृष्टि से संस्कृत संस्कार युक्त एवं कृत्रिम थी जबकि प्राकृत संस्कार मुक्त एवं अकृत्रिम थी। संस्कृत आचार्यों की भाषा थी एवं प्राकृत जनसाधारण की। 'प्राकृत' की एक व्युत्पत्ति प्राक् + कृत = पहले की भी मानी जाती है जिसका अर्थ यह लिया जाता है कि वह संस्कृत

से भी पहले की थी एव उसका ही सस्कार-युक्त रूप सस्कृत है। या 'प्राकृत' शब्द का प्रयोग सपूर्ण मध्यकाल की भाषाओं के लिए भी किया जाता है किंतु मध्यकाल के द्वितीय सोपान की भाषाओं के लिए 'प्राकृत' शब्द एक प्रकार से रूढ़ हो गया है। इन भाषाओं का प्रयोग सस्कृत रचनाओं में भी मिलता है, जहा इनका प्रयोग कम शिष्ट एव निम्नश्रेणी के व्यक्ति करते हैं।

इस विवेचन से ऐसा बोध होता है कि ये भाषाए सस्कृत की अपेक्षा असस्कृत भाषाए थी किंतु मध्यकाल के दूसरे सोपान की जिन प्राकृत भाषाओं का विवेचन किया जाता है वे वास्तव में साहित्यिक भाषाए बन चुकी थी। यही कारण है कि इस दूसरे सोपान को प्राकृत काल अथवा साहित्यिक प्राकृत काल कहा जाता है।

४ ७ २ ५ प्राकृत के भेद

प्राकृत भाषाओं के, अनेक दृष्टियों से, अनेक भेद किए जाते हैं, किंतु उनके प्रसिद्ध भेद हैं—मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री एव पैशाची। प्राकृतों का विवेचन करनेवाले प्रथम आचार्य 'वररुचि' ने अर्धमागधी का उल्लेख नहीं किया है। हेमचंद्र ने अर्धमागधी (आर्ष) के साथ एक 'चूलिका पैशाची' का भी वर्णन किया है। नीचे इन प्राकृतों का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(क) मागधी प्राकृत

मागधी मूल रूप से मगध की भाषा थी। देश के पूर्वी भाग में स्थित होने के कारण, यह अपनी अन्य समकालीन भाषाओं से अधिक परिवर्तित थी। 'र' ध्वनि का अभाव ('र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग) एव समस्त ऊष्म ध्वनियों के स्थान पर केवल 'श' (स, श, ष > श) का प्रयोग, मागधी की निजी विशेषताए हैं।

मागधी का प्रयोग प्राय सस्कृत नाटकों में ही मिलता है (कम शिष्ट पात्रों द्वारा प्रयुक्त)। उसकी अपनी साहित्यिक रचनाओं का अभाव सा है।

(ख) शौरसेनी प्राकृत

शूरसेन प्रदेश (मथुरा का निकटवर्ती प्रदेश) की भाषा शौरसेनी कहलाती है। यह मध्य-देश की भाषा होने के कारण, अन्य प्राकृतों की अपेक्षा कम परिवर्तित है इसलिए सस्कृत से इसकी समीपता और प्राकृतों की अपेक्षा अधिक है। आधुनिक हिंदी (पश्चिमी) के विकास में मुख्य रूप से शौरसेनी

प्राकृत से ही जुड़े हुए हैं। इस भाषा का प्रयोग भी संस्कृत नाटकों में ही मिलता है।

(ग) अर्धमागधी प्राकृत

अर्धमागधी मागधी एवं शौरसेनी प्राकृत के मध्य भाग की भाषा है। इसी कारण इसमें मागधी एवं शौरसेनी दोनों प्राकृतों की कुछ विशेषताएं प्राप्त हो जाती हैं।

अर्धमागधी जैन आचार्यों के धर्मोपदेश एवं ग्रन्थ रचना की भाषा थी। वे इसे 'आर्षी' कहते थे तथा इसे समस्त भाषाओं की आदि भाषा मानते थे।

अर्धमागधी की मुख्य विशेषताएं हैं—र ल दोनों ध्वनियों का प्रयोग, तीन ऊष्म ध्वनियों (स, श, ष) के स्थान पर एक ही 'स' ध्वनि का प्रयोग तथा स्वर मध्यग 'य' श्रुति का प्रयोग (सागर > सायर)।

(घ) महाराष्ट्री प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत, समस्त प्राकृतों में विकसित एवं साहित्यिक भाषा है। वैयाकरणों ने इसे सब प्राकृतों में मुख्य एवं आदर्श माना है। इसी के वर्णन के संदर्भ में अन्य प्राकृतों का वर्णन किया गया है।

'सेतुबंध' गाहा सत्तसई जैसी रचनाएं महाराष्ट्री प्राकृत में ही हैं।

महाराष्ट्री के संबंध में मुख्य समस्या यह है कि यह किस स्थान की भाषा थी। नाम से ऐसा बोध होता है कि यह वर्तमान महाराष्ट्र की भाषा रही होगी। इसकी पुष्टि इस बात से की जाती है कि वर्तमान मराठी के विकास के बीज महाराष्ट्री प्राकृत में विद्यमान हैं। किंतु महाराष्ट्री प्राकृत एवं शौरसेनी प्राकृत में बहुत अधिक समानता है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। आरंभ से लेकर मध्य देश की भाषा प्रमुख रही है। इससे ऐसा लगता है कि महाराष्ट्र शब्द एक प्रदेश विशेष का द्योतक न होकर उस बड़े भू भाग अर्थात राष्ट्र (महा + राष्ट्र) का द्योतक है जो विन्ध्य पर्वत के उत्तर में फैला हुआ है। अतः 'महाराष्ट्री' से तात्पर्य उस बड़े भाग की मध्यदेशीय भाषा से है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि मध्य देश की भाषा तो शौरसेनी थी, फिर महाराष्ट्री कैसे मध्य देश की भाषा होगी? इस प्रश्न का उत्तर यह हो सकता है कि शौरसेनी एवं महाराष्ट्री में कालगत अंतर है स्थानगत नहीं। महाराष्ट्री शौरसेनी का ही परवर्ती विकसित रूप है। इस बात की पुष्टि भाषावैज्ञानिक प्रमाण से होती है। स्वर मध्यग व्यंजन लोप का जो परिवर्तन महाराष्ट्री में पूर्ण हो गया है, वह शौरसेनी में अपूर्ण अवस्था में मिलता है। शौरसेनी में

स्वर मध्यग अघोष व्यजन ध्वनि सघोष में परिवर्तित होकर सुरक्षित है, किंतु महाराष्ट्री में स्वर मध्यग व्यजन ध्वनि पूर्ण रूप से लुप्त हो गई है। शौरसेनी में स्वर मध्यग महाप्राण व्यजन भी अभी सुरक्षित है किंतु महाराष्ट्री में, उस स्थिति में भी व्यजन लुप्त हो गया है केवल प्राणत्व रह गया है। उदाहरणार्थ सस्कृत 'कथयत' >शौरसेनी 'कधेदु' >महाराष्ट्री 'कहेउ'।

(इ) पैशाची प्राकृत

भारत के सुदूर पश्चिमोत्तर भाग में बोली जानेवाली भाषा को पैशाची प्राकृत का नाम दिया गया है। इस प्राकृत में साहित्य की रचना न के बराबर है। जिस एक रचना गुणाढ्य की बड्डकहा (बृहत्कथा) का उल्लेख किया जाता है उसका भी पैशाची में मूल पाठ नही मिलता।

वैयाकरणो ने पैशाची की एक मुख्य विशेषता यह बताई है कि उसमें स्वर मध्यग स्पर्श व्यजनो का लोप नही होता / पर गुणाढ्य की उपयुक्त रचना 'बड्डकहा' में 'थ' व्यजन का लोप है (—कथा>—कहा)।

४ ७ २ ६ प्राकृत की सामान्य विशेषताए

प्राकृत में हुए परिवर्तनो को देखने से ज्ञात होता है कि उनकी दिशाए प्राय वही है, जिनका सूत्रपात मध्यकाल के प्रथम सोपान अर्थात पालि' के समय हो चुका था।

जिन ध्वनियों का प्रयोग पालि में नही हुआ (ऋ, ल आदि) उनका प्राकृत में भी अभाव रहा, साथ ही पालि में प्रयुक्त ध्वनिया (ळ, ळ्ह) प्राकृत में भी प्रयुक्त हुइ (कुछ अपवाद छोडकर)। ऊष्म ध्वनिया के प्रयोग में भिन्नता है। कहीं केवल 'श' का प्रयोग होता है (यथा मागधी में) एव कही केवल 'स' का (अन्य प्राकृतो में)। न का विकास ण' में होता हुआ दिखाई पडता है। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था स्वर मध्यग सघोष व्यजनो का लोप (विशेषकर महाराष्ट्री में)।

व्यजनात शब्दो का प्राय अभाव है। कारको में कमी के कारण शब्द रूपो में कमी हुई वचन दो ही रहे। पालि के समान ही स्वराघात का प्रयोग नही था। आत्मनेपद समाप्तप्राय था। लकारो की सख्या में कमी हुई। तद्भव शब्दो की सख्या बहुत बढ गई। देशज शब्दो का विकास होने लगा।

इस प्रकार आधुनिक आर्य भाषाओ के विकास का जो बीज पालि में दृष्टिगोचर होता है प्राकृत भाषाओ में वह अकुरित होता हुआ दिखाई पडता है

४ ७ २ ७ तृतीय सोपान—अपभ्रंश

'अपभ्रंश' का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट अथभ्रष्ट बिगड़ा हुआ आदि। 'अवहत्थ', अवहट्ट अवहठ आदि शब्दों का मूल भी अपभ्रंश है। अपभ्रंश का अर्थ आभीरोक्ति' भी लिया जाता है।

अधिकतर विद्वानों का विचार है कि अपभ्रंश, प्राकृत एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के मध्य की स्थिति है अर्थात आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास का प्रत्यक्ष संबंध अपभ्रंश से है। इस धारणा के अनुसार प्राकृत भाषाओं के साहित्यिक बन जाने से जो बोलचाल की भाषा रही उसे ही अपभ्रंश कहा गया है। अतः प्रत्येक प्राकृत का एक अपभ्रंश रूप रहा होगा तथा आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास का संबंध किसी न किसी अपभ्रंश से अवश्य होना चाहिए।

अपभ्रंश का काल मोटे रूप से ई० ५०० से १००० ई० तक माना जाता है। दूसरी ओर कुछ विद्वानों (यथा डॉ० हरदेव बाहरी) का विचार यह है कि न तो 'अपभ्रंश' प्राकृत एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के मध्य की स्थिति है और न ही आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश से हुआ है। इनकी मान्यता है कि अपभ्रंश प्राकृत भाषाओं के समकालीन एक प्रकार की प्राकृत थी (चण्ड, हेमचन्द्र विश्वनाथ आदि विद्वानों ने अपभ्रंश की गणना प्राकृतों में ही की है) जिसका क्षेत्र था गुजरात राजस्थान सिंध। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि मार्कण्डेय ने तीन ही अपभ्रंश भाषाएं गिनाई हैं—नागर (गुजरात में बोली जाती थी) उपनागर (राजस्थान में प्रयुक्त होती थी) एवं व्राचड (जो सिंध की भाषा थी)। यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि राजस्थान गुजरात आदि क्षेत्रों में गुर्जर एवं आभीर प्रभावशाली एवं सत्ताधारी जातियां रही हैं। उनकी सत्ता के साथ ही उनकी भाषा का भी विस्तार हुआ जिसके फलस्वरूप भारत की अन्य भाषाओं पर इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है।

उपर्युक्त मत पूर्ण रूप से तर्करहित नहीं है किंतु इस मत के मानने में मुख्य बाधा यह है कि अपभ्रंश का स्वरूप प्राकृत का समकालीन न होकर उसका परवर्ती एवं विकसित रूप है। फिर यह मानना भी कठिन है कि पश्चिमोत्तर की भाषा सारे देश में प्रधान बन गई। इतिहास साक्षी है कि प्रधानता सदैव मध्यदेशीय भाषा की रही है।

'अपभ्रंश' शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग सर्वप्रथम भामह के 'काव्यालंकार' एवं चंड के 'प्राकृत लक्षणम्' में मिलता है। अपभ्रंश का प्राचीनतम रूप भरत के

नाट्य शास्त्र (३०० ई०) में मिलता है। कालिदास की 'विक्रमावशी' रचना में इसके कुछ उदाहरण मिलते हैं।

अपभ्रंश के भेदों के संबंध में कुछ मतभेद हैं। मारकंडेय ने 'प्राकृत सर्वस्व' में इसके नागर, उपनागर एवं व्राचड भेद माने हैं। नमि साधु ने भी तीन ही भेद गिनाए हैं किंतु वे हैं—उपनागर आभीर एवं ग्राम्य। याकोबी इसके चार भेद (पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी) मानते हैं। तगारे इनमें से उत्तरी का स्वीकार न कर शेष तीन भेद स्वीकार करते हैं। नामवर सिंह इसके दो ही भेद मानते हैं (पूर्वी एवं पश्चिमी)। यों कुछ विद्वान् इसके २७ भेद तक मानते हैं।

अपभ्रंश की रचनाओं में बहुत प्रसिद्ध रचनाएं हैं—रइधू का 'करकंड चरिउ', धर्मसूरि का 'जंबूस्वामी रासा', पुष्पदंत का 'आदिपुराण', सरह का 'दोहा कोष', स्वयंभू का 'पउम चरिउ'।

४ ७ २ ८ अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं

अपभ्रंश में वे ही परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जिनका आरंभ पालि, प्राकृत में दिखाई पड़ता है। पालि, प्राकृत संस्कृत से भिन्न होते हुए भी आधुनिक भाषाओं के निकट नहीं थीं किंतु अपभ्रंश भाषा आधुनिक भाषाओं के समीप है।

अपभ्रंश की मुख्य विशेषता है अयोगात्मकता, जिसके कारण विभक्तियां शब्दों से जुड़ने के बदले परसर्गों के समान अलग से प्रयुक्त होने लगती हैं। यथा करण कारक के लिए 'सहु', संबंध कारक के लिए 'केर', अधिकरण के लिए 'मज्झ' आदि। इसी प्रवृत्ति के कारण क्रिया में काल एवं भाव सूचक प्रत्ययों के स्थान पर सहायक क्रियाओं का प्रयोग होने लगा तथा वाक्य में शब्दों का स्थान निश्चित होने लगा।

अपभ्रंश की दूसरी मुख्य विशेषता सरलीकरण की प्रवृत्ति थी। इसके कारण कारकों के रूप कम हो गए (संस्कृत में ८ कारक थे, प्राकृत में ६ और अपभ्रंश में मात्र ३)। द्विवचन एवं नपुंसक लिंग समाप्त हो गए। शब्द भंडार में तद्भव शब्दों की वृद्धि के साथ विदेशी शब्दों का आगमन हुआ।

स्वराघात का अभाव ही रहा। उकार की प्रधानता हो गई। अंतिम स्वरों का ह्रस्वीकरण एवं लोप की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। संयुक्त व्यंजन से द्वित व्यंजन फिर उसके स्थान पर स्वर-दीर्घीकरण की प्रवृत्ति (कर्म>कम्म> काम) भी विद्यमान है।

४ ७ ३ आधुनिक काल

आधुनिक काल का आरंभ १०वीं शताब्दी से माना जाता है। यों आधुनिक आर्य भाषाओं का स्पष्ट अर्थात् साहित्यिक रूप १४वीं–१५वीं शताब्दी से निकट दिखलाई पड़ता है। साहित्यिक रूप ग्रहण करने में ४–६ शताब्दियों का समय आवश्यक होता है इसी धारणा के आधार पर आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति १०वीं शताब्दी के आस-पास मानी जाती है।

जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है आधुनिक आर्य भाषाओं के साहित्य में प्रयोग का समय १४वीं–१५वीं शताब्दी है अतः १०वीं से लेकर १४वीं शताब्दी तक का समय मध्य काल के अंतिम सोपान (अपभ्रंश काल) एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के मध्य की कड़ी है जिसे संक्रमण काल' संक्रांति काल अथवा पूर्व आधुनिक काल कहा जा सकता है। इस काल की भाषा में दुहरी प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है एक ओर अपभ्रंश की परंपरा का आग्रह दूसरी ओर अपभ्रंश की उस परंपरा से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से बढ़ने का प्रयास।

इस युग को 'अवहट्ठ काल' भी कहा जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस समय पद्य में 'अवहट्ट भाषा (अपभ्रंश का ही विकसित रूप) में रचनाएं हो रही थी। ऐसा समझा जाता है कि उत्तर भारत के अन्य भागों में भी संक्रमणकालीन भाषा का प्रचलन होगा। उन्हें भी अवहट्ठ की संज्ञा दी जा सकती है। यों अवहट्ठ' शब्द उस समय की पूर्व की भाषा का अर्थ देने के लिए रूढ़ हो गया है।

विद्यापति की रचनाएं (कीर्तिलता, कीर्तिपताका आदि) अवहट्ठ में हैं।

'संक्रमण काल' की रचनाओं में क्षेत्रीय भाषाओं का स्पष्ट रूप उभर कर नहीं आया। उनकी कुछ विशेषताओं की कुछ झलक ही इन रचनाओं में मिल पाती है। इसका कारण संभवतः यह है कि संक्रमण काल में एक ऐसी काव्य भाषा का निर्माण हो चुका था जिससे उस समय की समस्त क्षेत्रीय भाषाएं प्रभावित थी।

इस काल की मुख्य रचनाएं हैं—संनेहरासय (संदेशरासक), प्राकृत-पैंगलम, पुरातन प्रबंधसंग्रह उक्तिव्यक्तिप्रकरण वर्णरत्नाकर, चर्यापद एवं ज्ञानेश्वरी।

संक्रमण काल की इन रचनाओं में जहां अपभ्रंश की प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं वहां उन प्रवृत्तियों का भी स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है जिनके विकसित

होने से आधुनिक आर्य भाषाएं मध्यकालीन अपभ्रंश भाषा से भिन्न हो गयी। उदाहरणार्थ स्वर संकोच की प्रवृत्ति आधुनिक आर्य भाषाओं की एक विशेषता है। यह प्रवृत्ति सन्देशरासक तथा अन्य रचनाओं में मिलती है। (उदाहरणार्थ– अंधकार > अंधआर > अंधार, इय > इअ > ई)। ऐसे ही नपुंसक लिंग का अभाव, विभक्तियों के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग, विभिन्न कारकों में ऋजु रूप (प्रातिपदिक) का प्रयोग, संयुक्त क्रियाओं का बाहुल्य आदि जो आधुनिक आर्य भाषाओं की विशेषताएं हैं उनके पर्याप्त उदाहरण संक्रमण काल की रचनाओं में मिलते हैं।

४८ आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

आधुनिक आर्य भाषाओं के वर्गीकरण का सूत्रपात तब से होता है जब हार्नले (१८८० ई०) ने आर्यों के भारत आगमन के ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर भीतरी एवं बाहरी भाषाओं का उल्लेख किया था।

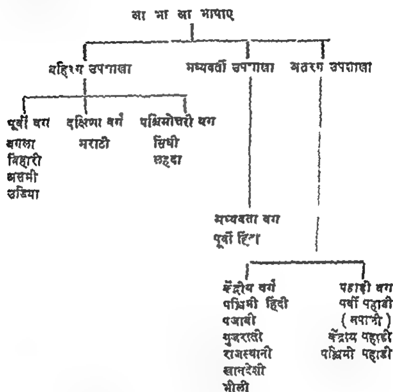
हार्नले के विचारानुसार, आर्य, दो भिन्न समयों एवं दो भिन्न स्थानों से, भारत में आए। प्रथम बार आनेवाले आर्य पश्चिमोत्तरी रास्ते से भारत में प्रविष्ट हुए, जबकि बाद में आनेवाले आर्य उत्तर के पर्वतों को लांघकर भारत में पहुंचे। दूसरी बार आनेवाले आर्यों के दबाव के कारण पहले आये हुए आर्य मध्य देश से हटकर मध्य देश के पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में फैल गये तथा नवागतुक आर्य मध्य देश में बस गए। इस कारण मध्यदेशीय अथवा केन्द्रीय एवं बाहरी आर्यों की भाषा में भिन्नता उत्पन्न हो गई।

आर्यों के आगमन एवं भारत में बसने संबंधी हार्नले के इस सिद्धांत से मतभेद होने के बावजूद ग्रियर्सन, हार्नले के आर्यों की भीतरी एवं बाहरी भाषा संबंधी धारणा से सहमत थे तथा उन्होंने उपर्युक्त धारणा के आधार पर भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। अपने उस वर्गीकरण का उन्होंने पुनः एक लेख के द्वारा संशोधन भी किया। ग्रियर्सन के इस वर्गीकरण का आधार भीतरी एवं बाहरी भाषाओं में पाई जानेवाली ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक भिन्नता है।

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण की आलोचना करते हुए सुनीतिकुमार चटर्जी ने उसे अवैज्ञानिक एवं अस्वाभाविक बताया है। साथ ही उन्होंने अपना एक वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है। सुनीतिकुमार चटर्जी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण में किंचित संशोधन कर धीरेंद्र वर्मा ने एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। वर्गीकरण के विवेचन में हरदेव बाहरी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण का उल्लेख करना भी आवश्यक है। आगामी परिच्छेदों में इन वर्गीकरणों का विवेचन किया जा रहा है।

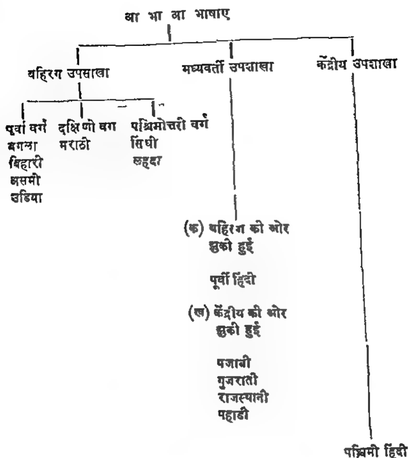
४ ८ १ ग्रियर्सन का वर्गीकरण

ग्रियसन ने आधुनिक आर्य भाषाओं को शाखाओं एवं वर्गों में इस प्रकार विभाजित किया था।



४ ८ २ ग्रियसन का संशोधित वर्गीकरण

'भारत का भाषा सर्वेक्षण' में प्रस्तुत, उपर्युक्त वर्गीकरण का, ग्रियसन ने, एक लेख द्वारा स्वयं संशोधन एवं विस्तृत विवेचन किया था। ग्रियर्सन ने अपने संशोधित वर्गीकरण में पश्चिमी हिंदी को केंद्र में रखा है तथा पश्चिमी हिंदी के संदर्भ में अन्य भाषाओं का स्थान निर्धारित किया है। इस वर्गीकरण में उन्होंने भीली एवं खानदेशी को स्वतंत्र भाषाएं नहीं माना है। ग्रियसन का संशोधित वर्गीकरण इस प्रकार है।



४ ८ ३ ग्रियर्सन के वर्गीकरण का आधार

ग्रियर्सन के वर्गीकरण का आधार बहिरंग एवं अंतरंग भाषाओं में पाई जानेवाली निम्नलिखित मुख्य भाषागत भिन्नताएं थीं। यहां केवल बहिरंग भाषाओं की विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है। अंतरंग भाषाओं में उन विशेषताओं का अभाव समझना चाहिए।

बहिरंग भाषाओं में—

(क) ह्रस्वांत—इ—उ विद्यमान हैं

(ख) इ > ए, उ > ओ

(ग) ल > र, ड > ड़, र

(घ) म्ब > म
(ङ) स > ह
(च) ग ष स > घ/ह
(छ) द > ड
(ज) महाप्राण (ख, छ आदि) > अल्प प्राण (क, च आदि)
(झ) पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए—ई प्रत्यय का प्रयोग
(ञ) बहिरंग भाषाएं अश्लिष्ट से पुनः श्लिष्ट होने की प्रक्रिया में से गुजर रही है।

४.८.४ चटर्जी द्वारा की गई आलोचना

सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के उपर्युक्त आधार को निराधार सिद्ध करते हुए दिखाया है कि ग्रियर्सन ने बहिरंग भाषाओं की जिन भाषागत विशेषताओं का उल्लेख किया है वे समस्त विशेषताएं भीतरी अर्थात अंतरंग भाषाओं में भी विद्यमान हैं।

अंतरंग भाषाओं में भी—

(क) शब्दान्त—इ —उ विद्यमान है
(यथा—फिरि अकालु)
(ख) इ > ए उ > ओ
(यथा—विल्व > बेल पुष्कर > पोखर)
(ग) ल > र ड > ड़ र
(यथा—बिजली > बिजुरी)
(घ) म्ब > म
(यथा—जम्बु > जामुन)
(ङ) स > ह
(यथा—करिष्यति > करिहइ)
(च) ग ष स > ग/ह

मराठी बहिरंग भाषा है किंतु उसमें सहा (= षष्ठ) जैसे प्रयोग हैं।
ब्रज के करिष्यति > करिहइ का उदाहरण ऊपर दिया ही गया है।

(छ) द > ड
(यथा—दष्टि > डाठि)
(ज) महाप्राण > अल्पप्राण

(यथा—भगिनी > बहन)

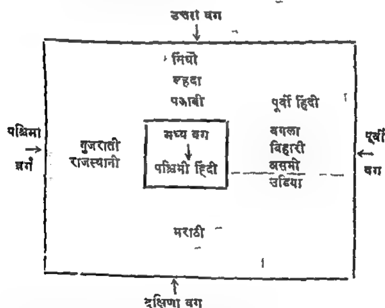
(इ) पुंल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए—ई प्रत्यय का प्रयोग

(यथा—लड़का लड़की)

(ई) बहिरंग भाषाओं में श्लिष्टता का कारण यह है कि प्रायः समस्त आधुनिक आर्य भाषाओं में विभक्ति जोड़ने के अवशेष रहे हुए हैं। यह उनके विकास के अगले चरण का द्योतक नहीं है, जिसके आधार पर उन्हें भीतरी भाषाओं से अलग माना जाय।

४.८.५ चटर्जी का वर्गीकरण

ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना करते हुए चटर्जी ने अपना एक सरल वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है।



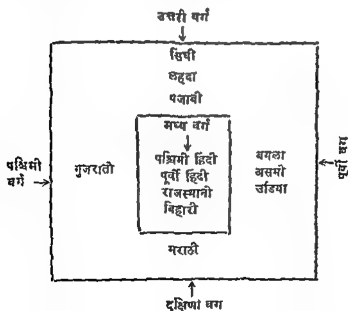
४.८.६ चटर्जी के वर्गीकरण की आलोचना

चटर्जी के वर्गीकरण पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह वर्गीकरण भाषागत आधार पर न होकर भौगोलिक है। फिर भी यह वर्गीकरण ग्रियर्सन के वर्गीकरण से कोई मूलभूत एवं तात्विक भिन्नता भी नहीं रखता। चटर्जी के वर्गीकरण से भाषाओं के परस्पर निकटता भिन्नता का कोई बोध नहीं

होता। उदाहरणार्थ बंगला की अपेक्षा राजस्थानी पश्चिमी हिंदी के अधिक निकट है किंतु इस वर्गीकरण में यह बात नहीं होती। मराठी गुजराती से एक ही अलग दिखाई गई है जब बंगला में जबकि मराठी, बंगला की अपेक्षा गुजराती के बहुत अधिक निकट है। इस प्रकार चटर्जी के वर्गीकरण में यह काम भी सिद्ध नहीं होता जो कि किसी सीमा तक ग्रियर्सन के समाधित वर्गीकरण में होता है। फिर चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को निराधार सिद्ध करने के लिए जो उदाहरण दिए हैं वे सब 'अपवाद' रूप में हैं और 'अपवाद' तो नियम को सिद्ध ही करते हैं। अतः इस बात में कोई संदेह नहीं है कि ग्रियर्सन का आधार निर्दोष न होने पर भी भीतरी एवं बाहरी भाषाओं की भाषागत प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालता है।

४.८.७ धीरेंद्र वर्मा का वर्गीकरण

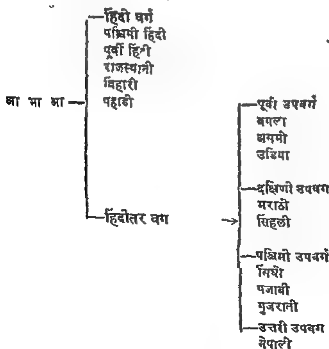
धीरेंद्र वर्मा का वर्गीकरण एक प्रकार से चटर्जी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण का संशोधित रूप है जिसमें मुख्य अंतर केवल इतना ही है कि मध्य वर्ग में केवल पश्चिमी हिंदी के स्थान पर, पश्चिमी हिंदी से संबंधित भाषाओं अर्थात् पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी को भी रखा गया है। धीरेंद्र वर्मा का वर्गीकरण इस प्रकार होगा।



धीरेंद्र वर्मा के वर्गीकरण की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें पश्चिमी हिंदी से संबंधित भाषाओं को एक साथ रखा गया है इससे उनकी परस्पर निकटता तथा अन्य भाषाओं से उनकी आपेक्षिक दूरी का कुछ बोध अवश्य हो जाता है।

४ ८ ८ हरदेव बाहरी का वर्गीकरण

बाहरीजी ने अपने वर्गीकरण में आ० भा० आ० भाषाओं को दो वर्गों— 'हिंदी' एवं 'हिंदीतर' में विभाजित किया है। हिंदी वर्ग में उन्होंने पश्चिमी हिंदी के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी, पहाड़ी को रखा है। हिंदीतर वर्ग को फिर पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी एवं दक्षिणी वर्गों में विभाजित किया है। पूर्वी वर्ग में वे ही भाषाएं रखी हैं, जो धीरेन्द्र वर्मा ने रखी हैं। दक्षिणी वर्ग में मराठी के साथ सिंहली भाषा को रखा गया है। पश्चिमी वर्ग में सिंधी एवं पंजाबी के साथ गुजराती को भी रखा है तथा लहंदा को पंजाबी की उपभाषा माना है। उत्तरी वर्ग में नेपाली भाषा को रखा गया है। बाहरी के वर्गीकरण का रेखाचित्र इस प्रकार है।



बाहरी क वर्गीकरण का आधार भापागत विशेपताआ की अपेक्षा राजनीति साहित्य एव शिक्षा ह। पूर्वी हिंदी राजस्थानी बिहारी पहाडी का पश्चिमी हिंदी क साथ इसलिए रखा गया ह क्योकि जिन क्षेत्रा में य भापाए बोली जाती ह उन क्षेत्रा में हिंदी (अर्थात पश्चिमी हिंदी) ही शासन साहित्य एव शिक्षा की भापा ह। सिंहली को भारतीय आय भापाआ के साथ दिखलाने का कारण यह बताया गया ह कि सिंहल (सिलोन) कभी भारत का अग था। ऐसा ही कारण नेपाली के लिए भी ह। अत इस प्रकार के वर्गीकरण से और चाह जो भी जानकारी प्राप्त हो किंतु भापाओ की सरचनात्मक समानता भिन्नता का बोध नही हो सकता।

४ ८ ९ सीताराम चतुर्वेदी का वर्गीकरण

सीताराम चतुर्वेदी ने सबधवाचक परसर्गों के आधार पर आ० भा० आ० का वर्गीकरण करन का प्रयत्न किया ह। वर्गीकरण का यह आधार निश्चित रूप से भापावज्ञानिक ह। इस वर्गीकरण की कमी यह ह कि यह केवल एक ही प्रकार्यात्मक तथ्य (Functional Point) पर आधारित ह। यह सभव ह कि अन्य किसी प्रकार्यात्मक तथ्य के आधार पर भापाआ में परस्पर अधिव्यापकता (Overlapping) दिखाई पड।

उपर्युक्त विवचन स यह स्पष्ट हो जाता ह कि भापा वज्ञानिक आधार पर आ० भा० आ० का कोई आदश वर्गीकरण नही हो पाया ह। तथ्य तो यह ह कि चालीस वप पूव ग्रियर्सन न जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया था उसमें इधर उधर जोड-तोड करन के सिवाय इस दिशा में कोई उल्लखनीय काय नही हुआ ह। आवश्यकता इस बात की ह कि आ० भा० आ० के प्रामाणिक विवरण के आधार पर उनकी तुलना की जाय तथा विभिन्न भापाआ में पाए जानवाले समान प्रकार्यात्मक तथ्यो क द्वारा उनके अलग अलग समूह बनाय जाय। फिर आभ्यतर पुन रचना (Internal Construction) एव तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए उनक एतिहासिक सबध का निवारण करत हुए वर्गीकरण किया जाय। यह काय निश्चित रूप स कठिन भी ह एव जटिल भी फिर भी यह आशा की जा सकती ह कि भारतीय भापावज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्न शील होग एव निकट भविष्य में इस समस्या का कोई सतोपजनक समाधान प्रस्तुत करेंगे।

४ ८ १० आधुनिक आय भापाओ की विशेपताए

आधुनिक आय भापाओ के वर्गीकरण सबधी विवेचन में यह स्पष्ट कर दिया गया ह कि आधुनिक भारतीय आय भापाओ में समानता भिन्नता का एक जटिल सबध है। अत समस्त भापाओ में समान विशेपताओ का होना तो सभव ही नही ह। फिर भी ऐसी कुछ विशेपताओं का उल्लेख किया जा सकता ह जो प्रवृत्ति रूप में प्राय समस्त भापाओ में पायी जाती हैं। नीचे ऐसी कुछ मुख्य विशेपताओ का कथन किया जाता ह।

(क) आधुनिक भारतीय आय भापाए मूल रूप से अयोगात्मक ह। यह प्रवृत्ति अपभ्रश काल से शुरू हुई थी, जिसका विकास आधुनिक काल में हुआ है।

(ख) अयोगात्मकता की इस प्रवृत्ति के कारण विभक्तियो का स्थान मुख्य रूप से परसर्गों ने ले लिया ह।

(ग) इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप क्रिया के रूप परिवतन में काल भाव आदि की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्ययों के स्थान पर सहायक क्रियाओ का प्रयोग किया जाता ह।

(घ) शब्द रूपो एव धातु रूपो में बहुत कमी हो गई ह। सस्कृत में जहा शब्दों के २४ रूप बनते थे, आजकल २ से ६ रूप ही बनते ह।

(ङ) वचन दो ही रह गए ह।

(च) मराठी गुजराती के सिवाय अन्य भापाओ मे दो ही लिंग रह गए ह।

(छ) बहुत सी भापाओं में स्वराघात, वाक्यात्मक स्तर पर ही महत्त्वपूर्ण रह गया ह, शब्द के स्तर पर नहा।

(ज) विभिन्न भापाओ के सपक एव ज्ञान विज्ञान की नई विधाओ के कारण समस्त भापाओ के शब्द भडार में विदेशी भापाओ के शब्दो (फारसी अरबी, अग्रेजी आदि) के साथ सस्कृत के तत्सम शब्दो की भी पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हुई ह। साथ ही नए शब्दो के निर्माण की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती ह।

(झ) ध्वन्यात्मक सरचना में पर्याप्त विकास हो रहा ह। सयुक्त स्वर, मूल स्वर बनने की प्रक्रिया में ह। अन्य भापाओ के प्रभाव से नए स्वरो एव नए व्यजनो का आविर्भाव हो रहा ह।

(ञ) 'ऋ' का स्वरवत प्रयोग नही रहा ह। ष का प्रयोग भी उच्चारण में समाप्त हो चुका ह।

(ट) शब्दो के स्वरांत के स्थान पर व्यजनात होने की प्रवृत्ति बढ रही है।

(ठ) प्रत्येक भाषा में परिनिष्ठित रूप का निर्माण हो चुका है तथा प्रत्येक भाषा साहित्यिक कहलाने की अधिकारिणी बन गई है। बहुत-सी भाषाओं ने साहित्य न अपना' की अवस्था प्राप्त कर ली है।

४ ९ आधुनिक आर्य भाषाओं का परिचय

४ ९ १ सिंधी

सिंध प्रदेश की भाषा को सिंधी कहा जाता है। सिंध का संबंध संस्कृत सिंधु शब्द से है। हिंद, हिंदू, हिंदी शब्दों का मूल भी यही सिंध शब्द है।

भारत विभाजन से पूर्व सिंधी मुख्य रूप से सिंध प्रदेश की भाषा थी। देश विभाजन के कारण बहुत से हिंदू सिंध से भारत में आ गए हैं एवं भारत के विभिन्न प्रदेशों में फैल गये हैं। इस प्रकार आज सिंधी पाकिस्तान के सिंध प्रदेश के अतिरिक्त भारत के प्राय समस्त प्रदेशों में बोली जाती है।

सिंधी का संबंध व्राचड अपभ्रंश से जोड़ा जाता है। ग्रियर्सन ने सिंधी की छह उपभाषाएं गिनाई हैं—सिरायकी, विचोली, लाडी, लासी, थरली एवं कच्छी। इन सबमें विचोली परिनिष्ठित उपभाषा है।

अन्त स्फोटक (Implosive) ध्वनियां (ॻ ॼ ॾ ॿ) सिंधी की ध्वन्यात्मक संरचना की मुख्य विशेषता है। सिंधी में अरबी फारसी के बहुत से शब्द हैं।

१८४३ में सिंधी के लिए एक लिपि का निर्माण किया गया जिसका आधार अरबी लिपि था। उससे पूर्व सिंधी के लिए देवनागरी, वाणिकी (बनियों की) एवं गुरुमुखी लिपियों का प्रयोग होता था। भारत विभाजन के पश्चात भारत में आए हुए सिंधियों के एक वर्ग ने फिर से देवनागरी का प्रयोग करने के लिए प्रचार किया। इसके फलस्वरूप आज भारत में सिंधी दोनों लिपियों (अरबी-सिंधी एवं देवनागरी) में लिखी जाती है।

सिंधी का साहित्य नियमित रूप से १४वीं शताब्दी से मिलना आरंभ होता है। सिंधी साहित्य पर्याप्त मात्रा में समृद्ध है। शाह अब्दुल लतीफ सचल सामी दल्पत ववसि अजोज सिंधी के मुख्य कवि हो चुके हैं। गद्य लेखकों में कलीच बेग अहमल लालचंद अमरडिनामल जठमल उल्लेखनीय नाम हैं।

४ ९ २ लहंदा

लहंदा का शाब्दिक अर्थ है उतरता या ढलता। यह पश्चिम का सूचक है क्योंकि सूर्य पश्चिम में ही ढलता है। पंजाब के पश्चिमी भाग में बोली जाने

के कारण इस भाषा पर 'लहदा' नाम पडा है। इसे पश्चिमी पजाबी भी कहते ह ।

शाहपुर जिले की लहदा परिनिष्ठित गिनी जाती है। लहदा की उपभाषाओ में डेरा गाजी खा की मुलतानी मुख्य ह । इसके अतिरिक्त पोठवारी, अवाणकारी, पुछी, चिभाली आदि इसकी बोलिया ह ।

कुछ विद्वान लहदा को अलग भाषा न मानकर उसे पजाबी की ही एक उपभाषा मानते ह क्याकि पजाबी स उसकी बहुत अधिक समानता ह, किंतु अधिकतर विद्वान उसे स्वतत्र भाषा मानना उचित समझते ह ।

लहदा पर सिंधी एव काश्मीरी का काफी प्रभाव है। अरबी-फारसी के शब्द भी लहदा में पर्याप्त मात्रा में प्रयुक्त होते हैं।

लहदा गुरुमुखी और फारसी लिपियो म लिखी जाती ह। व्यापारी लोग 'लडा' नाम की लिपि का प्रयोग करते ह जो सिंधी की वाणिकी लिपि से मिलती जुलती ह ।

१४वी शताब्दी से लहदा का साहित्य मिलने लगता ह । गुरु नानक, सत फरीद, वारिसशाह आदि की रचनाए लहदा भाषा में ह ।

४.९ ३ पजाबी

'पजाब' प्रदेश की भाषा होने के कारण इसे 'पजाबी' कहा गया है। पजाब का अर्थ ह 'पाच आबो (नदियो—रावी, सतलज, व्यास, चिनाब और झेलम) का देश'।

-वर्तमान समय में यह पूर्व पजाब (भारत) एव पश्चिमी पजाब (पाकिस्तान) की भाषा ह । इसकी कुछ उपभाषाए (डोगरी आदि) का क्षेत्र जमू तक हैं।

पजाबी बोलनेवाले मुख्य रूप स सिक्ख ह इसी से इस सिक्खी, खाल्सी अथवा पूर्वी पजाबी (लहदा पश्चिम की भाषा ह—पजाबी पूर्व की) भी कहते ह। पजाबी का निखरा हुआ रूप अमृतसर के आसपास दिखाई पडता ह ।

पजाबी का साहित्य १३वी शताब्दी के आरभ से मिलना शुरू हो जाता है। गुरु नानक एव अन्य गुरुओ तथा सतो की वाणी का सग्रह 'गुरु ग्रथ साहब' पजाबी का प्रसिद्ध साहित्यिक एव धार्मिक ग्रथ ह। पजाबी लोक-साहित्य की परपरा काफी समृद्ध ह। पहले यहा उर्दू तथा फारसी लिपियो का प्रयोग होता था फिर देवनागरी के प्रयोग को पर्याप्त बढावा मिला। आजकल पजाबी मुख्य रूप स गुरुमुखी लिपि में लिखा जाता ह ।

४ ९ ४ गुजराती

गुजरात प्रदेश की भाषा होने के कारण यह गुजराती कहलाती है। गुजरात शब्द का संबंध 'गुर्जर' से माना जाता है। गुर्जर नामक जाति का प्रदेश ही 'गुजरात' है। गुजरात के अतिरिक्त बंबई में भी गुजराती भाषा बोली जाती है।

गुजराती की उपभाषाओं में सौराष्ट्री नागरी गोहिलवाड़ी एवं काठियावाड़ी मुख्य हैं। अहमदाबाद की गुजराती परिनिष्ठित एवं साहित्यिक गुजराती है।

गुजराती का साहित्य १२वीं शताब्दी से मिलना आरंभ होता है। हेमचंद्र के व्याकरण में प्राचीन गुजराती का दर्शन होता है। गुजराती के प्राचीन साहित्यकारों में नरसी मेहता प्रेमानंद शामलभट्ट दयाराम आदि के नाम लिए जा सकते हैं। आधुनिक साहित्यकारों में गोवर्धन राम त्रिपाठी नानालाल, के हयालाल मुंशी रमणलाल देसाई काका कालेलकर उमाशंकर जोशी आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

गुजराती की अपनी लिपि है जिसे गुजराती लिपि कहते हैं। यह देवनागरी से बहुत अधिक समानता रखती है।

८ ९ ५ मराठी

मराठी महाराष्ट्र की भाषा है जिसमें विदर्भ मराठवाड़ा कोंकण बरार आदि प्रदेश आ जाते हैं। बंबई पूना नागपुर मराठी के प्रसिद्ध केंद्र हैं।

मराठी का विकास महाराष्ट्री प्राकृत के अपभ्रंश रूप से माना जाता है। या यह बात अब भी विवाद का विषय है कि प्राकृत के साथ जुड़े उस 'महाराष्ट्र' का अर्थ आज के महाराष्ट्र से लिया जाय या उसका अर्थ महाराष्ट्र अर्थात् विस्तृत प्रदेश माना जाय।

मराठी की अनेक बोलियाँ हैं। पूना की मराठी को साधु अथवा परिनिष्ठित मराठी माना जाता है। कोंकण की मराठी द्रविड़ भाषाओं से प्रभावित है।

९–१०वीं शताब्दी से मराठी के अभिलेख प्राप्त होते हैं। १२–१३वीं शताब्दी से मराठी का साहित्य उपलब्ध होता है। प्राचीन काल के साहित्यकारों में नामदेव एवं ज्ञानदेव अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इसके पश्चात् तुकाराम रामदास राम जोशी जैसे साहित्यकार हुए। आधुनिक काल के रचयिताओं में अत्रे, खाडकर, फड़के, हरिनारायण आपटे आदि प्रसिद्ध हैं।

मराठी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। यों मराठी की मूल लिपि 'मोडी' है, जिसका प्रयोग अब भी दैनिक व्यवहार में किया जाता।

मराठी एव गुजराती की सरचनाओं में पर्याप्त समानता है।

मराठी में तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद्भव, द्रविड एव फारसी शब्दों की सख्या भी पर्याप्त मात्रा में है।

४ ९ ६ बगला

'बगला' का सबध मागधी प्राकृत' के अपभ्रश रूप से है। बगला अविभाजित बगाल की भाषा है। देश विभाजन के फलस्वरूप इसके दो भाग हो गए हैं। पूर्व का भाग पाकिस्तान में एव पश्चिम का भाग भारत में रहा। पूर्व का भाग स्वतत्र बगला देश के रूप में स्थापित हो चुका है।

बगला की दो मुख्य उपभाषाए है—पूर्वी बगला एव पश्चिमी बगला। पूर्वी बगला अब स्वतत्र बगला देश की भाषा है, जिसका केन्द्र है ढाका तथा पश्चिमी बगला, पश्चिम बगाल की उपभाषा है, जिसका केंद्र कलकत्ता है।

साहित्य समृद्धि की दृष्टि से आधुनिक आर्य भाषाओं में बगला का स्थान अत्यन्त महत्व पूर्ण है। अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं की अपेक्षा बगला साहित्य पश्चिम से अधिक प्रभावित हुआ इस कारण पश्चिम से प्रभावित अनेक साहित्यिक विधाओं का श्रीगणेश बगला से होता है। बगला के प्राचीन साहित्यकारों में भक्त कवि चडीदास एव चैतन्य महाप्रभु बहुत प्रसिद्ध है। आधुनिक प्रसिद्ध साहित्यकारों में राजा राम मोहन राय ईश्वरचद्र विद्यासागर, वकिमचद्र, रवीन्द्र-नाथ ठाकुर शरतचन्द्र ताराशकर आदि के नाम लिए जा सकते है।

बगला लिपि की देवनागरी से काफी निकटता है।

४ ९ ७ बिहारी।

उत्पत्ति की दृष्टि से 'बिहारी' का सबध भी मागधी प्राकृत से है।

बिहारी का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। बिहार तो इसका प्रदेश है ही इसके सिवाय उत्तर प्रदेश के कई भागों यथा—वाराणसी, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर आदि स्थानों पर भी इसका प्रयोग होता है।

बिहारी की तीन मुख्य बोलिया है—भोजपुरी, मैथिली एव मगही। इसमें मैथिली की साहित्यिक परपरा काफी पुरानी है। विद्यापति, जिन्हें मैथिली कोकिल भी कहते है, मैथिली के प्रसिद्ध कवि है। मैथिली की लिपि बगला लिपि से बहुत समानता रखती है।

भोजपुरी में लोक-साहित्य उपलब्ध है। आज-कल भोजपुरी साहित्य के विकास हेतु बहुत प्रयत्न हो रहे हैं। भोजपुरी साहित्य की परंपरा मुख्य रूप से मौखिक है। इसकी लिखित रचनाएँ 'कैथी' लिपि में हैं। आज कल भोजपुरी देवनागरी लिपि में भी लिखी जाने लगी है।

मगही की लिपि भी कैथी है। पर मगही में बहुत कम साहित्य प्राप्त होता है।

४ ९ ८ असमी अथवा असमिया

'असमी' 'असम' प्रान्त की भाषा है। इसका विकास 'मागधी प्राकृत' के पूर्व रूप से हुआ है।

संरचना की दृष्टि से यद्यपि असमी एवं बंगला में अन्तर है तथापि असमी की बंगला से काफी समानता है। बंगला भाषा एवं साहित्य का असमी पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इसका परिणाम यह निकला है कि असमी का अपना साहित्य बहुत अधिक नहीं है। असम में भी साहित्य का माध्यम एक प्रकार से बंगला ही है। सांस्कृतिक चेतना के फलस्वरूप अब असम में असमी का प्रचार प्रसार बढ़ रहा है।

असमी के भाषागत विभाजन का अध्ययन नहीं हुआ है इस कारण असमी की बोलियों का विवेचन करना कठिन है।

असमी की लिपि बंगला लिपि से बहुत अधिक मिलती-जुलती है।

असमी पर चीनी तिब्बती परिवार की भाषाओं का भी कुछ प्रभाव है।

४ ९ ९ उड़िया

'उड़ीसा' अथवा 'उत्कल' प्रदेश की भाषा को 'उड़िया' कहते हैं। इसे 'उत्कली' भी कहते हैं।

मागधी के दक्षिणी रूप से उड़िया का विकास हुआ है। उड़िया की भी बंगला से काफी निकटता है।

उड़िया के प्राचीन रूप का आभास पुराने शिलालेखों से होता है।

उड़िया भाषा की सीमाएं द्रविड़ भाषा (तमिल) एवं मराठी भाषा की सीमाओं से जुड़ी हुई हैं। इस कारण उड़िया में तमिल एवं मराठी के पर्याप्त शब्द विद्यमान हैं।

उड़िया की बोलियों का स्पष्ट रूप दिखलाई नहीं पड़ता, इसलिए स्थानीय भाषागत भेदों के बावजूद उसकी भाषाओं अथवा बोलियों का स्पष्ट उल्लेख कर सकना कठिन है।

उडिया का प्राचीन साहित्य, मुख्य रूप से कृष्ण भक्ति का है।
उडिया की अपनी एक स्वतंत्र लिपि है, जो बगला लिपि के काफी निकट है।

४ ६ १० राजस्थानी

'राजस्थान' की भाषा को 'राजस्थानी' कहते हैं। इसकी सीमाए एक ओर पजाबी एव दूसरी ओर गुजराती से मिलती हैं। राजस्थानी एव गुजराती में पर्याप्त निकटता है।

उत्पत्ति की दृष्टि से राजस्थानी का सबध भी शौरसेनी प्राकृत से है।

राजस्थानी विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है। इसकी कई बोलिया हैं, जिनमें से मेवाती, मालवी मारवाडी तथा जयपुरी प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त भीली एव खानदेशी भी राजस्थानी के अतर्गत ही रखी जाती हैं। तमिल क्षेत्र में एक ऐसा भाषाई रूप प्रयुक्त होता है जिसे 'सौराष्ट्री' कहते हैं। रचना की दृष्टि से 'सौराष्ट्री' भी राजस्थानी से समानता रखती है (इसकी समानता गुजराती से भी है)।

राजस्थानी की अपनी लिपि महाजनी है किंतु उसका प्रयोग दैनिक व्यवहार तक ही सीमित है। यहा साहित्य, शिक्षा एव शासन का माध्यम हिंदी है। इस लिए राजस्थानी को हिंदी की सहभाषा माना जा सकता है।

४ ९ ११ हिंदो

आगामी अध्याय में हिंदी के सबध में विस्तार से लिखा जा रहा है, इसलिए यहा उसका अत्यत सक्षिप्त परिचय ही दिया जा रहा है।

ग्रियसन ने पूर्वी हिंदी एव पश्चिमी हिंदी को दो अलग अलग भाषाओं के रूप में गिनाया है या इन्हें दो भिन्न भाषाए न मानकर एक ही भाषा के दो भिन्न रूप माना जा सकता है।

४ ९ ११ १ पश्चिमी हिंदी

'पश्चिमी हिंदी' का सबध शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रश रूप से है। यह एक प्रकार से पूरे मध्य देश की भाषा है। बागरू, खडी, व्रज कनौजी एव बुदेली इसकी बोलिया हैं। साहित्यिक खडी एव उर्दू इसके साहित्यिक रूप हैं। हिंदुस्तानी रूप में वह जनसाधारण के सपर्क का माध्यम है। वह स्वतत्र भारत की राजभाषा है तथा सपूर्ण भारत में एक मात्र सपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होने के कारण वह राष्ट्रभाषा भी है

भोजपुरी में लोक साहित्य उपलब्ध है। आज-कल भोजपुरी साहित्य के विकास हेतु बहुत प्रयत्न हो रहे हैं। भोजपुरी साहित्य की परंपरा मुख्य रूप से मौखिक है। इसकी लिखित रचनाएं 'कथी' लिपि में हैं। आज-कल भोजपुरी देवनागरी लिपि में भी लिखी जाने लगी है।

मगही की लिपि भी कथी है। या मगही में बहुत कम साहित्य प्राप्त होता है।

४९८ असमी अथवा असमिया

असमी असम' प्रान्त की भाषा है। इसका विकास 'मागधी प्राकृत' के पूर्व रूप से हुआ है।

संरचना की दृष्टि से यदि असमी एवं बंगला में अन्तर है तथापि असमी की बंगला से काफी समानता है। बंगला भाषा एवं साहित्य का असमी पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इसका परिणाम यह निकला है कि असमी का अपना साहित्य बहुत अधिक नहीं है। असम में भी साहित्य का माध्यम एक प्रकार से बंगला ही है। सांस्कृतिक चेतना के फलस्वरूप अब असम में असमी का प्रचार प्रसार बढ़ रहा है।

असमी के भाषागत विभाजन का अध्ययन नहीं हुआ है इस कारण असमी की बोलियों का विवेचन करना कठिन है।

असमी की लिपि बंगला लिपि से बहुत अधिक मिलती-जुलती है।

असमी पर चीनी तिब्बती परिवार की भाषाओं का भी कुछ प्रभाव है।

४९९ उड़िया

'उड़ीसा' अथवा 'उत्कल प्रदेश' की भाषा को 'उड़िया' कहते हैं। इसे 'उत्कली' भी कहते हैं।

मागधी के दक्षिणी रूप से उड़िया का विकास हुआ है। उड़िया की भी बंगला से काफी निकटता है।

उड़िया के प्राचीन रूप का आभास पुराने शिलालेखों से होता है।

उड़िया भाषा की सीमाएं द्रविड भाषा (तमिल) एवं मराठी भाषा की सीमाओं से जुड़ी हुई हैं। इस कारण उड़िया में तमिल एवं मराठी के पर्याप्त शब्द विद्यमान हैं।

उड़िया की बोलियों का स्पष्ट रूप दिखलाई नहीं पड़ता, इसलिए स्थानीय भाषागत भेदों के बावजूद उसकी भाषाओं अथवा बोलियों का स्पष्ट उल्लेख कर सकना कठिन है।

उडिया का प्राचीन साहित्य, मुख्य रूप से कृष्ण भक्ति का है।

उडिया की अपनी एक स्वतत्र लिपि ह, जो बगला लिपि के काफी निकट ह।

४ ६ १० राजस्थानी

'राजस्थान' की भाषा को 'राजस्थानी' कहते ह। इसकी सीमाए एक ओर पजाबी एव दूसरी ओर गुजराती से मिलती हैं। राजस्थानी एव गुजराती में पर्याप्त निकटता है।

उत्पत्ति की दृष्टि से राजस्थानी का सबध भी शौरसेनी प्राकृत से ह।

राजस्थानी विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई ह। इसकी कई बोलिया ह, जिनमें से मेवाती, मालवा, मारवाडी तथा जयपुरी प्रसिद्ध ह। इसके अतिरिक्त भीली एव खानदेशी भी राजस्थानी के अतगत ही रखी जाती ह। तमिल क्षेत्र में एक ऐसा भाषाई रूप प्रयुक्त होता ह जिसे सौराष्ट्री कहते ह। रचना की दृष्टि से 'सौराष्ट्री' भी राजस्थानी से समानता रखती ह (इसकी समानता गुजराती म भी ह)।

राजस्थानी की अपनी लिपि महाजनी ह किंतु उसका प्रयोग दनिक व्यवहार तक ही सीमित ह। यहा साहित्य, शिक्षा एव शासन का माध्यम हिंदी ह। इस लिए राजस्थानी को हिंदी की सहभाषा माना जा सकता है।

४ ९ ११ हिंदी

आगामी अध्याय में हिंदी क सबध में विस्तार से लिखा जा रहा है, इसलिए यहा उसका अत्यत सक्षिप्त परिचय ही दिया जा रहा ह।

ग्रियसन ने पूर्वी हिंदी एव पश्चिमी हिंदी को दो अलग अलग भाषाओ के रूप म गिनाया ह यो इन्हें दो भिन्न भाषाए न मानकर एक ही भाषा के दो भिन्न रूप माना जा सकता ह।

४ ९ ११ १ पश्चिमी हिंदी

पश्चिमी हिंदी का सबध शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रश रूप स ह। यह एक प्रकार स पूरे मध्य देश की भाषा ह। बागरू, खडी, ब्रज कनौजी एव बुदेली इसकी बोलिया ह। साहित्यिक खडी एव उर्दू इसके साहित्यिक रूप ह। हिंदुस्तानी रूप में वह जनसाधारण के सपर्क का माध्यम ह। वह स्वतत्र भारत की राजभाषा ह तथा सपूर्ण भारत में एक मात्र सपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होने के कारण वह राष्ट्रभाषा भी ह

पश्चिमी हिन्दी की साहित्यिक परपरा काफी प्राचीन एव समृद्ध ह । अपभ्रश के अतिम चरण स इसका विकास आरभ होता है । हिन्दी के प्राचीन काल में डिंगल के साथ पिंगल मध्य काल में ब्रज एव आधुनिक काल में खडी साहित्य का माध्यम रही ह ।

पश्चिमी हिन्दी की समस्त बोलियां देवनागरी लिपि म लिखी जाती ह ।

४ ९ ११ २ पूर्वी हिंदी

पूर्वी हिंदी का सबध अधमागधी प्राकृत स है । इस कारण एक ओर वह शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रश रूप से प्रभावित ह ता दूसरी ओर मागधी प्राकृत के अपभ्रश रूप स ।

पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र अवध प्रदेश ह । यह प्रदेश पश्चिमी हिन्दी एव बिहारी के क्षेत्रो के मध्य पडता ह । इस कारण पूर्वी हिंदी में पश्चिमी हिन्दी के साथ *बिहारी की विशेषताएं भी दिखलाई पडती ह ।*

हिंदी के मध्य काल में, ब्रज के साथ अवधी भी साहित्य का माध्यम रही है ।

पूर्वी हिंदी की समस्त बोलिया देवनागरी लिपि में लिखी जाती ह ।

४ ९ १२ पहाडी

पहाडी भाषाओ का क्षत्र ह हिमालय की तराई अथवा घाटी । यह क्षेत्र पूव स पश्चिम तक फला हुआ ह । स्थान के आधार पर ही पहाडी भाषाओ के तीन समूह किए गए ह—पूर्वी पहाडी (नेपाली) मयध्यवर्ती पहाडी एव पश्चिमी पहाडी ।

ग्रियसन ने पहाडी भाषाओ को अलग से गिनाया ह किंतु अधिकतर विद्वान पहाडी को राजस्थानी के अतगत रखना उचित समझते ह ।

०

स्मरण सकेत

४ १ भारोपीय परिवार ससार का सबसे प्रसिद्ध एव महत्त्वपूर्ण भाषा परिवार है।

४ २ इस परिवार के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया गया है। सबसे ज्यादा प्रसिद्ध एव प्रचलित नाम 'भारोपीय' है।

४ ३ अधिकतर विद्वानों के मतानुसार भारोपीय भाषा बोलने वाले ईसा से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व मध्य एशिया में रहते थे।

४ ४ भारोपीय भाषा में ५ ह्रस्व स्वर (अ इ, उ, ए ओ) थे। इतने ही दीर्घ स्वर थे। एक उदासीन स्वर (अ॑) था। कुछ अन्य ध्वनियां भी स्वरों के समान प्रयुक्त होती थीं। सयुक्त स्वरों की सख्या बहुत थी। अनुनासिकता का प्रयोग नहीं होता था। व्यजनों में पवर्ग, तवर्ग के अतिरिक्त तीन प्रकार की कवर्गीय ध्वनियां थी। इसके सिवाय य, र ल, व, स, ज़, ह ध्वनिया भी था। सयुक्त व्यजनों का प्रयोग होता था। शब्द रूपों में काफी जटिलता थी। तीन लिंग, तीन वचन एव आठ कारकों का प्रयोग होता था। समास रचना का प्रयोग होता था। क्रिया का रूप काल एव भाव के आधार पर बदलता था। भाषा की सरचना में स्वराघात एव सुरों का महत्त्व था।

४ ५ भारोपीय परिवार को केंतुम एव सतम समुदायों में विभाजित किया जाता है। यह विभाजन, भारोपीय भाषा की 'क' ध्वनि के 'क' अथवा 'स' में विकसित होने पर आधारित है।

केंतुम समुदाय के उपपरिवार हैं—

ग्रीक इटालिक केल्टिक, जर्मनिक, तोखारी, (हिट्टाइट)।

सतम समुदाय के उपपरिवार हैं—

बाल्टो स्लाविक, आर्मेनियन, अल्बेनियन, आर्य।

४ ६ आर्य उपपरिवार की तीन शाखाएं हैं—

ईरानी शाखा दरद शाखा एव भारतीय शाखा।

४ ७ भारतीय भाषाओं के विकास के तीन काल हैं—

प्राचीन काल (वैदिक एव सस्कृत)

मध्य काल (पालि प्राकृत अपभ्रंश)

आधुनिक काल (हिंदी बगला, मराठी आदि)

४८ आधुनिक आर्य भाषाओं के वर्गीकरण का प्रथम प्रयास हार्नले द्वारा। ग्रियर्सन, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, हरदेव बाहरी एवं सीताराम चतुर्वेदी के वर्गीकरण।

४९ आधुनिक आर्य भाषाएँ —
सिंधी, लहँदा, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगला, बिहारी, असमी, उड़िया, राजस्थानी, हिंदी (पश्चिमी हिंदी एवं पूर्वी हिंदी) पहाड़ी।



९ हिंदी एवं हिंदी भाषा-मंडल

-
- 'हिंदी' नाम
- हिंदी का क्षेत्र
- हिंदी की उत्पत्ति
  - —आदि काल
  - —मध्यकाल
  - —आधुनिक काल
- हिंदी भाषा मडल
- हिंदी भाषा-मडल की भाषाए
  - —साधु हिंदी
  - —उर्दू
  - —हिंदी-उर्दू मे अतर
  - —हिंदवी, दक्खिनी, रेख्ता, रेख्ती
  - —हिंदुस्तानी
  - —पश्चिमी हिंदी एव पूर्वी हिंदी
  - —पश्चिमी हिंदी-पूर्वी हिंदी मे अतर
- पश्चिमी हिंदी की बोलिया
  - —ब्रज
  - —कन्नौजी
  - —बुदेली
  - —खडी
  - —बागरू
- पूर्वी हिंदी की बोलिया
  - —अवधी
  - —बघेली
  - —छत्तीसगढी
- भोजपुरी
- हिंदी शब्दावली

५ १ 'हिंदी' नाम

हिन्दी' शब्द का बहुप्रचलित प्रयोग दो अर्थों में होता रहा है—एक तो 'हिंदुस्तान के निवासी' के अर्थ में (हिंदी हैं, हम वतन है हिंदोस्ता हमारा—इकबाल) एवं दूसरा भाषा के अर्थ में। यों इसका प्रयोग हिंदुस्तान के लिए (ईरान के बादशाह नौशेरवा (५३१ ५७९ ई०) के आदेश से किये गये पंचतंत्र पर आधारित 'करटक और दिमनक' के अनुवाद 'कलीला व दिमना' में लिखा गया है कि यह अनुवाद ज्वान ए हिंदी' से किया गया है। यहा 'हिंदी' का अर्थ 'हिंदुस्तान' से है। 'जबान ए हिंदी' अर्थात हिंदुस्तान की जबान या भाषा) एवं हिंदुस्तान के मुसलमानों के लिए (अमीर खुसरो ने लिखा है बादशाह ने हिंदुओं को तो हाथी से कुचलवा डाला किंतु मुसलमान, जो हिंदी थे सुरक्षित रहें। यहा हिंदी का अर्थ हिंदुस्तान के मुसलमानों से है।) भी हुआ है।

भाषा के अर्थ में भी 'हिंदी' शब्द अनेक संदर्भों में प्रयुक्त हुआ है एवं अब भी होता है।

हिन्दी' का भाषा के रूप में विस्तृत अर्थ है 'हिंदुस्तान की भाषा'। जैसे 'जापानी' अर्थात जापान की भाषा, 'रूसी' अर्थात रूस की भाषा वैसे ही 'हिंदी' अर्थात हिंद (हिंदुस्तान या भारत) की भाषा।

इससे कम व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग संपूर्ण उत्तर भारत की भाषा के रूप में होता है।

शास्त्रीय विशेषकर भाषा शास्त्रीय दृष्टि से हिंदी के लिए उपयुक्त दोनों अर्थ ग्रहणीय नहीं समझे जाते। भाषा शास्त्रीय दृष्टि से हिंदी शब्द का प्रयोग निम्नलिखित स्थितियों में होता है।

(क) वह प्रदेश जिसमें बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश राजस्थान, पंजाब एवं हिमाचल प्रदेश के कुछ भाग आ जाते हैं, हिंदी प्रदेश कहा जाता है, अर्थात इस प्रदेश की भाषा को 'हिंदी' कहा जाता है। इस दृष्टि से हिंदी में बिहारी, पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी एवं पहाड़ी भाषाएं आ जाती हैं। सामान्य रूप से हिंदी का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। हिंदी' शब्द के इस प्रयोग से भाषावैज्ञानिक प्राय सहमत नहीं हैं।

(ख) उपयुक्त हिंदी प्रदेश में से बिहार राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों को अलग करने पर जो भू भाग बचता है, उस भू भाग के बोलचाल, शिक्षा एवं साहित्य की भाषा हिंदी है। इस प्रदेश में मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश आ जाते हैं। इस दृष्टि से हिंदी के अंतर्गत मात्र पश्चिमी

हिंदी एवं पूर्वी हिंदी का गिना जाता है। भाषा शास्त्री बहुधा हिंदी में इसी प्रयोग को मानते हैं।

(ग) हिंदी शब्द का एक सीमित प्रयोग उस परिनिष्ठित रूप के लिए होता है जो रूप 'राष्ट्रभाषा' के लिए स्वीकृत है तथा उपयुक्त हिंदी प्रदेश में साहित्य, शिक्षा एवं प्रशासकीय कार्यों का माध्यम है। यह रूप हिंदी की एक बोली—खड़ी पर आधारित है तथा 'साहित्यिक हिंदी' 'साधु हिंदी' 'परिनिष्ठित हिंदी' आदि नामों से पुकारा जाता है।

(घ) सुनीति कुमार चटर्जी का विचार है कि पश्चिमी हिंदी को ही वास्तव में हिंदी मानना चाहिए। उनके इस मत से अधिक विद्वान सहमत नहीं हैं।

५.२ हिंदी का क्षेत्र

हिंदी का क्षेत्र 'हिंदी' नाम के विस्तार एवं संकोच पर विस्तृत एवं संकुचित होता है। यदि 'हिंदी' शब्द विस्तृत अर्थ में लिया जाय (हिंदी = हिंद की भाषा) तो सारा हिंदुस्तान ही हिंदी का क्षेत्र है। अत्यंत सीमित अर्थ (केवल पश्चिमी हिंदी) ग्रहण करने पर उसका क्षेत्र दिल्ली, आगरा, मेरठ के आस-पास तक ही सीमित रह जायगा। सामान्य रूप से पश्चिमी एवं पूर्वी हिंदी के सम्मिलित क्षेत्र को हिंदी का क्षेत्र माना जाता है। ग्रियर्सन के अनुसार इस क्षेत्र की सीमाएं हैं—पश्चिम में अंबाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में वाराणसी तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट (मध्य प्रदेश) तक।

५.३ हिंदी की उत्पत्ति एवं विकास

भारतीय आर्य भाषाओं का मध्ययुग १० वीं शताब्दी के निकट समाप्त होता है तथा वहीं से आधुनिक आर्य भाषाओं का युग आरंभ होता है। अतः हिंदी सहित समस्त आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति का समय १० वीं शताब्दी के आस-पास माना जाता है। आरंभ के २-३ सौ वर्षों की अवधि को संक्रमण काल अथवा 'संधि काल' कहा जाता है क्योंकि इस अवधि की भाषा में मध्यकालीन अपभ्रंश भाषा के ह्रास एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के चिह्न एक साथ दृष्टिगोचर होते हैं।

यों तो हिंदी भाषा मण्डल की प्रत्येक सहभाषा के विकास की अपनी कहानी है किंतु सहभाषा होने के कारण उनके विकास की एक सामान्य कहानी भी है जिसे हिंदी के विकास की कहानी कहा जा सकता है। विकास की दृष्टि से

हिंदी की तीन स्पष्ट अवस्थाओं का बोध होता है। इन अवस्थाओं को काल की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार हिंदी के विकास के तीन काल माने जाते हैं।

(क) आदि काल (१००० ईसा–१५०० ईसा)
(ख) मध्य काल (१६०० ईसा–१८०० ईसा)
(ग) आधुनिक काल (१९०० ईसा–)

५ ३ १ आदिकाल

हिंदी का आदिकाल प्राय १००० ई० से १५०० तक माना जाता है। यह युग राजनैतिक दृष्टि से अशांति एवं उथल-पुथल का युग था, जो नई भाषा के विकास हेतु अनुकूल नहीं था।

इस काल की भाषा के मुख्य तीन रूप दिखलाई पड़ते हैं।

अपभ्रंशाभास रूप—अपभ्रंश से प्रभावित भाषा रूप, जिसमें सिद्धों, नाथों एवं जैनियों का धार्मिक साहित्य उपलब्ध होता है।

पिंगल रूप—स्थानीय भाषा एवं मध्य देश अथवा ब्रजभूमि की भाषा के मिश्रित रूप का नाम पिंगल है। पिंगल उस समय साहित्य में प्रयुक्त होने वाला मुख्य भाषा रूप है।

डिंगल रूप—अपभ्रंश एवं राजस्थानी के मिश्रित रूप को डिंगल कहा जाता है। चारणों की वीरगाथाओं की भाषा डिंगल है। बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो आदि रचनाओं की भाषा डिंगल ही है।

उपर्युक्त भाषा रूपों के अतिरिक्त इस काल के उत्तरार्ध में दो और भाषा-रूप दिखलाई पड़ते हैं। इनमें से एक रूप वह है जिसे पुरानी हिंदी या हिंदवी कहा जाता है। इस भाषा-रूप में अरबी फारसी शब्दों की अपेक्षाकृत अधिकता है। दूसरा रूप है पूर्व में विकसित पुरानी मैथिली का, जिसमें विद्यापति की रचनाएं मिलती हैं।

यह हिंदी का आरंभिक युग है अतः इस युग में विभिन्न बोलियों एवं उप-भाषाओं का स्पष्ट अंतर लक्षित नहीं होता। प्रत्येक भाषा रूप में अन्य रूपों का मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

अपभ्रंश की प्रायः समस्त ध्वनियां हिंदी में आ गई थीं। इसके अतिरिक्त इस काल में 'ऐ' एवं 'औ' जैसी संयुक्त स्वर ध्वनियां हिंदी में विकसित हुई। अपभ्रंश में तद्भव शब्दों की संख्या अधिक थी। आदिकालीन हिंदी में भी यही प्रवृत्ति विद्यमान रही। इस काल की भाषा में फारसी, अरबी, तुर्की आदि

मुसलमानी भाषाओं से अनेक शब्द आ गए जो मुसलमानों के साथ बढ़ते हुए संपर्क का परिणाम था।

इस काल की प्रमुख साहित्यिक रचनाएं हैं—चंद वरदायी का पृथ्वीराज रासो, नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो एवं जगनिक का आल्हा खंड। इसके अतिरिक्त इस काल में गोरखनाथ एवं अन्य सिद्धों तथा नाथों की रचनाएं, विद्यापति की मैथिली में लिखी हुई रचनाएं, ख्वाजा बंदा नवाज, ख्वाजा मसऊद, खुसरो आदि मुसलमान कवियों की हिन्दी की रचनाएं तथा उस काल के उत्तर भाग में कबीर आदि संतों की रचनाएं भी प्राप्त होती हैं।

इस काल की प्रामाणिक लिखित सामग्री बहुत कम मात्रा में मिलती है। जो लिखित रचनाएं उपलब्ध होती हैं वे प्रायः संदिग्ध हैं। अतः इस काल की भाषा का पूर्ण आधिकारिक परिचय प्राप्त कर सकना संभव नहीं है।

५.३.२ मध्य काल

हिंदी के विकास का मध्य काल प्रायः १६०० ई० से १८०० तक माना जाता है। यह मुगलों का शासन काल था। इस समय देश में राजनैतिक स्थिरता, व्यवस्था एवं शांति का वातावरण था, जिसके फलस्वरूप देशी भाषाओं को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस काल में पर्याप्त मात्रा में साहित्य का सृजन हुआ। साहित्य मुख्य रूप से पद्यात्मक था। काव्य ग्रंथों की टीकाओं के रूप में कुछ गद्यात्मक रचनाएं भी प्राप्त होती हैं।

इस काल में भाषा के जो दो मुख्य रूप विकसित हुए वे थे 'ब्रज' एवं 'अवधी'। ब्रज का विकास शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से हुआ था जबकि अवधी का संबंध अर्धमागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से था। इस प्रकार ब्रज हिंदी क्षेत्र के पश्चिम में एवं अवधी उसके पूर्वी क्षेत्र में विकसित हुई थी।

सूफी कवियों कुतुबन, मझन, जायसी एवं रामभक्त कवि तुलसीदास ने अवधी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है। अवधी को साहित्यिक भाषा का रूप देने का श्रेय तुलसी को ही है। अवधी का प्रचार मुख्य रूप से मध्य काल के मध्य तक ही रहा। ब्रजभाषा का प्रयोग न केवल पश्चिम में हुआ बल्कि वह संपूर्ण हिंदी क्षेत्र के साहित्य का माध्यम बन गयी थी। ब्रज का प्रयोग न केवल मध्य काल के अंत तक होता रहा अपितु आधुनिक काल में भी ब्रज भाषा की कई सुंदर रचनाएं प्राप्त होती हैं।

उपर्युक्त दो रूपों के अतिरिक्त खड़ी बोली पर आधारित 'दक्खिनी' का रूप भी विकसित हो चला था। 'दक्खिनी' का विकास दक्षिण में हुआ। मुसल्मान शासन के साथ, दिल्ली से मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली दक्षिण में पहुंच गयी। वहां उसे मुसल्मान शासकों के दरबार का आश्रय एवं मुसल्मान साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त हुआ। यही 'दक्खिनी' अथवा 'दक्खिनी हिंदी' १८वीं शताब्दी के आस पास उत्तर भारत में 'उर्दू' के रूप में विकसित हुई।

मध्य काल के पूर्वार्ध में मुख्य रूप से धार्मिक साहित्य की रचना हुई। अवधी मुख्य रूप से राम-साहित्य का माध्यम रही और व्रज कृष्ण साहित्य का। जायसी तुलसी, सूर, मीरा, इस समय के मुख्य कवि हैं। मध्य काल का उत्तरार्ध रीति साहित्य का समय है। केशव बिहारी, भूषण, देव आदि मुख्य रीतिकालीन कवि हैं जिन्होंने मुख्य रूप से व्रजभाषा में रचनाएं की।

इसी काल की 'दक्खिनी (उर्दू)' के मुख्य साहित्यकार हैं—कुली कुतुब शाह, नुसरती, वजही, वली आदि।

ध्वनियों की दृष्टि से इस काल की भाषा में क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का प्रयोग आरंभ हुआ। इसका एक मात्र कारण अरबी, फारसी के आगत शब्दों का शुद्ध उच्चारण करने की प्रवृत्ति थी। यह प्रवृत्ति मुख्य रूप से पढ़े लिखे लोगों में थी। शासकों की दरबारी भाषा फारसी होने के कारण फारसी का प्रचार प्रसार बढ़ा और इसके कारण हज़ारों की संख्या में फारसी, एवं फारसी के माध्यम से अरबी, तुर्की शब्द हिंदी में प्रविष्ट हुए। इस युग में धार्मिक साहित्य की प्रधानता रही इस कारण संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी बढ़ा। इस काल के उत्तरार्ध में यूरोपवासियों से भारत का संपर्क बढ़ा जिसके कारण अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी आदि यूरोपीय भाषाओं के कुछ शब्दों ने इस काल की भाषा में स्थान प्राप्त कर लिया।

५ ३ ३ आधुनिक काल

इस काल का आरंभ १९वीं शताब्दी के आस-पास होता है। १८वीं शताब्दी के मध्य में ही अंग्रेज़ों ने भारत में अपने पांव जमा दिये थे। अंग्रेज़ों के आगमन से भारत में पश्चिमी सभ्यता, पश्चिमी साहित्य एवं पश्चिमी भाषाओं का आगमन हुआ। शासन बदल जाने से फारसी का राजभाषा-पद जाता रहा। अंग्रेज़ों ने एक ओर अपनी अंग्रेज़ी को प्रोत्साहित किया तो दूसरी ओर यहां के लोगों से अपनापन स्थापित करने के लिए तथा शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए यहां की भाषाओं के विकास का प्रयत्न किया। अंग्रेज़ों

ने शासन की बागडोर मुसलमानों से ली थी अतः उर्दू के प्रति वे अपना एक विशेष उत्तरदायित्व अनुभव कर रहे थे। दूसरी ओर हिंदी मध्य देश की मुख्य भाषा के रूप में उनके सामने खड़ी थी। अतः कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कर उन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों के विकासार्थ प्रयत्न आरंभ किया। कर्मचारियों को हिंदी सिखाने के लिए तथा अपने धर्म प्रचार के लिए उन्हें गद्य की आवश्यकता थी। इस युग में गद्य की आवश्यकता इसलिए भी थी क्योंकि यह युग विभिन्न विचारों के प्रचार का युग था। गद्य के लिए उन्होंने ब्रज की अपेक्षा खड़ी बोली को अधिक उपयुक्त समझा। इस प्रकार इस युग के आरंभ में ही खड़ी बोली को ऊपर उभरने का अवसर प्राप्त हुआ।

आधुनिक काल के पूर्वार्ध में गद्य की भाषा खड़ी बोली रही किंतु पद्य की भाषा ब्रज ही बनी रही। उत्तरार्ध में पहुंचते-पहुंचते खड़ी बोली पद्य की भाषा भी बन गयी। और आज खड़ी बोली पर आधारित साधु हिंदी न केवल मध्य देश के संपूर्ण साहित्य का माध्यम है अपितु इस प्रदेश की शिक्षा, प्रशासन एवं शिष्ट समाज के सामाजिक वार्तालाप का माध्यम भी है। साथ ही उसे स्वतंत्र भारत की 'राष्ट्रभाषा' का गौरवमय पद भी प्राप्त हो चुका है।

'साधु हिंदी' के अतिरिक्त इस काल में अनेक सहभाषाओं उनकी उप-भाषाओं एवं बोलियों का विकास भी हुआ है। साहित्यिक हिंदी के साथ-साथ साहित्यिक उर्दू का प्रयोग भी होता रहा है।

इस काल की भाषा में तत्सम शब्दों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी है। ज्ञान विज्ञान के लिए निर्मित नये पारिभाषिक शब्दों का मूल आधार संस्कृत शब्दावली ही है। हिंदी ने अन्य भारतीय आर्य भाषाओं एवं आर्येतर भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किये हैं। अंग्रेजी के आगत शब्दों की संख्या तो बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त समर्थ साहित्यकारों ने अनेक नये शब्दों का निर्माण किया है। अंग्रेजी के प्रभाव से इस काल में ऑ (डॉक्टर) जैसी नवीन स्वर ध्वनि का आविर्भाव हो रहा है।

भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि इस काल के कुछ समर्थ साहित्यकार हैं। साहित्य की समस्त विधाओं का इस युग में पर्याप्त विकास हुआ है।

५.४ हिंदी भाषा-मण्डल

वास्तव में हिंदी किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है। सही अर्थों में हिंदी एक भाषा न होकर एक भाषा समूह है जिसमें अनेक भाषाएं, उपभाषाएं,

बोलियाँ, तथा उपबोलियाँ सम्मिलित हैं।

हिंदी समूह अथवा हिंदी परिवार के सदस्यों के संबंध में कुछ मतभेद अवश्य है। ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य विद्वान राजस्थानी एवं बिहारी को (चटर्जी पूर्वी हिंदी का भी) हिंदी के अंतर्गत रखने के पक्ष में नहीं है। पहाड़ी को भी वे हिंदी की अपेक्षा राजस्थानी के अंतर्गत रखना अधिक सही समझते हैं।

इधर डॉ० हरदेव बाहरी एवं कुछ दूसरे विद्वान इस पक्ष में हैं कि राजस्थानी, पहाड़ी एवं बिहारी को हिंदी के अंतर्गत ही माना जाय। इस संबंध में इन विद्वानों का मत है कि राजस्थान (राजस्थानी का प्रदेश), बिहार (बिहारी का प्रदेश) एवं हिमाचल प्रदेश (पहाड़ी का प्रदेश—नेपाल को छोड़कर) में साहित्य, शिक्षा, प्रशासन एवं पत्र-व्यवहार की भाषा हिंदी है। इनके विचार से स्वतंत्र भारत के संविधान की आठवीं सूची में उल्लिखित भाषाओं में राजस्थानी, बिहारी एवं पहाड़ी को इसीलिए अलग से नहीं गिनाया गया है क्योंकि इन भाषाओं को हिंदी के अंतर्गत माना गया है। डॉ० बाहरी के विचार से "राजस्थानी भाषा या बिहारी भाषा नाम की कोई चीज ही नहीं—इनकी कोई अपनी लिपि नहीं, साहित्य की अपनी परंपरा नहीं, शासन द्वारा कोई मान्यता प्राप्त नहीं, कोई एक स्वरूप नहीं, कोई सामान्य आदर्श नहीं।"

प्रश्न यह है कि दो भाषाओं की भिन्नता का निर्णय किस आधार पर होता है? साहित्य, लिपि, प्रशासकीय मान्यता, क्या ऐसे तत्व हैं जिनको भाषायी भिन्नता का आधार बनाया जा सके? भाषा शास्त्रीय दृष्टि से भाषायी भिन्नता का मुख्य आधार भाषाओं की संरचना (ध्वन्यात्मक संरचना एवं व्याकरणात्मक संरचना) में पायी जानेवाली भिन्नता होती है। साहित्य, लिपि एवं प्रशासकीय मान्यता भाषायी तत्व नहीं है। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण कच्छी भाषा है। कच्छ गुजरात प्रदेश का भाग है। कच्छी की न तो कोई लिपि है न उसकी कोई विशेष साहित्यिक परंपरा है और न ही उसे गुजरात शासन से मान्यता प्राप्त है। कच्छ में साहित्य, शिक्षा एवं प्रशासन का माध्यम गुजराती है किंतु, इससे कच्छी, गुजराती के अंतर्गत नहीं रखी जा सकती। निस्संदेह कच्छी गुजराती की उपभाषा अथवा बोली नहीं है। कच्छी, सिंधी की उपभाषा है।

मेरे इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि बिहारी तथा राजस्थानी को हिंदी से असंबंधित माना जाय, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उनका संबंध

भाषायी तथ्यों पर स्थापित होना चाहिए। इस संदर्भ में एक बात और कही जा सकती है। आज जैसी स्थिति बिहारी एवं राजस्थानी की है क्या वैसी ही स्थिति कुछ समय पूर्व पंजाबी की नहीं थी? कुछ वर्ष पूर्व तक पंजाब में हिंदी ही साहित्य, शिक्षा एवं प्रशासन की भाषा थी, किंतु इस कारण पंजाबी हिंदी की उपभाषा नहीं थी वह एक स्वतंत्र भाषा थी और है।

सही बात तो यह है कि आज जिन्हें हिंदी की बोलियाँ माना जाता है, उनमें से कुछ बोलियों के स्तर से ऊपर उठकर उपभाषाओं की स्थिति में पहुंच गयी हैं तथा यदि उन्हें आवश्यक प्रोत्साहन प्रदान किया जाय तो वे स्वतंत्र भाषाओं के रूप में विकसित हो सकती हैं। उदाहरण के लिए भोजपुरी को लिया जा सकता है। यदि पूर्वाग्रह को छोड़ दिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि भोजपुरी में एक भाषा बनने का सामर्थ्य है। यों भी बोली, उपभाषा, भाषा परस्पर संबंधित स्थितियाँ हैं उनमें कोई तात्त्विक भिन्नता अथवा अंतर नहीं है।

हिंदी भाषा समूह के संबंध में मतभेद की स्थिति इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि हम हिंदी को एक विशिष्ट भाषा मानने का प्रयत्न करते हैं। हमारे विचार से हिंदी एक भाषा नहीं, वरन् भाषा-समूह है जिसे 'हिंदी भाषा मंडल' कहना उचित होगा। इस मंडल के अंतर्गत आनेवाली भाषाओं का संबंध, भाषा-उपभाषा का न होकर सहभाषाओं का सा है। यह संबंध कुछ ऐसा ही है जैसा कि सौर मंडल में सूर्य और अन्य ग्रहों (मंगल, शुक्र आदि) का है। ये समस्त ग्रह एक ओर अपने आप में स्वतंत्र ग्रह हैं दूसरी ओर सूर्य से संबंधित होने के कारण परस्पर सहयोगी हैं। फिर जैसे ग्रहों के अपने उपग्रह होते हैं वैसे ही इनमें से प्रत्येक भाषा की अपनी उपभाषाएं एवं बोलियाँ हैं।

हिंदी भाषा-मंडल की सहयोगी भाषाएं हैं—पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, बिहारी, राजस्थानी एवं पहाड़ी। इस भाषा-मंडल का आधुनिक काल में केंद्रीय रूप वह है जिसे 'साधु हिंदी', 'साहित्यिक हिंदी', 'परिनिष्ठित हिंदी' आदि नामों से पुकारा जाता है तथा जो भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत है। उर्दू, हिंदुस्तानी इसी रूप के उपरूप हैं।

५.५ हिंदी भाषा-मंडल की भाषाएं

आगामी परिच्छेदों में हिंदी भाषा मंडल की भाषाओं का विवेचन किया जा रहा है। (राजस्थानी, बिहारी, पहाड़ी को छोड़कर जिनका परिचय पूर्व के अध्याय में दिया गया है।)

५ ५ १ साधु हिंदी

'साधु हिंदी' (परिनिष्ठित हिंदी) हिंदी भाषा मंडल का केंद्रीय रूप है। यही वह रूप है जिसे भारतीय संविधान में 'राष्ट्रभाषा' की संज्ञा दी गई है। 'साधु हिंदी' सहभाषी प्रांतों में अंतर प्रांतीय व्यवहार का माध्यम है। इन प्रांतों में यह साहित्य शिक्षा, प्रशासन के अतिरिक्त सामाजिक अवसरों पर शिष्ट समाज के वार्तालाप का साधन भी है। सामान्य रूप से 'हिंदी' कहने पर 'साधु हिंदी' का ही बोध होता है। साधु हिंदी की संरचना (ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक) का मुख्य आधार पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली है किंतु फारसी एवं अंग्रेजी के प्रभाव से उसकी ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणात्मक संरचनाओं में कुछ परिवर्तन-परिवर्धन (कुछ नवीन ध्वनियों का आविर्भाव एवं कुछ नये व्याकरणात्मक प्रयोगों का प्रचलन) हुआ है (संरचना के परिच्छेद में इसका वर्णन किया जा रहा है)। इसके शब्द भंडार का मूल स्रोत संस्कृत शब्दावली है। संस्कृत शब्दों के आधार पर अनेक नये शब्दों की रचना भी हुई है। यों इसमें फारसी अरबी के अतिरिक्त अंग्रेजी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्दों की भी काफी संख्या है। (अधिक विवरण 'शब्द भंडार' परिच्छेद में दिया जा रहा है)।

साधु हिंदी, देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। साहित्यिक समृद्धि एवं विचार अभिव्यक्ति की अनुपम क्षमता के कारण, साधु हिंदी का स्थान संसार की मुख्य एवं श्रेष्ठ भाषाओं में है।

५ ५ २ उर्दू

उर्दू, साधु अथवा परिनिष्ठित हिंदी रूप का एक उपरूप अर्थात् शैली है। 'उर्दू' तुर्की भाषा का शब्द माना जाता है जिसका अर्थ है 'पड़ाव', 'शिविर', 'फौजी पड़ाव,' 'खेमा' आदि। शाही पड़ाव को 'उर्दू-ए मुअल्ला' कहा जाता था। पड़ावों में प्रयुक्त होने के कारण यह भाषा जबान-ए उर्दू ए-मुअल्ला अथवा 'जबान-ए उर्दू' कही गयी, जो संक्षिप्त होकर 'उर्दू' रह गई।

उर्दू की उत्पत्ति के संबंध में यद्यपि अनेक मत प्रकट किये जाते हैं (उर्दू की उत्पत्ति ब्रज पंजाबी सिंधी से भी बताई जाती है) किंतु मान्य मत यह है कि इसका आधार भी दिल्ली के आस-पास की वही खड़ी बोली है जो साहित्यिक हिंदी का आधार है। दिल्ली में राजधानी होने के कारण मुसलमान शासकों ने दिल्ली व आस-पास की बोल-चाल की बोली को अपनाया तथा उसमें अरबी फारसी के पर्याप्त शब्दों का प्रयोग कर उन्होंने जिस काम चलाऊ भाषा को

जन्म दिया, वही आगे चलकर 'उर्दू' भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई। अतः उर्दू की उत्पत्ति तब से मानी जानी चाहिए जब से दिल्ली में इस्लामी शासन स्थापित हुआ। यह समय १२वीं शताब्दी में आरंभ होता है। इस्लामी शासन के साथ यह खड़ीबोली भाषा दक्षिण में पहुंची जहां दक्खिनी के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहां उसमें साहित्य की रचना आरंभ हुई। दक्खिनी के कवि 'वली' के उत्तर की ओर आने पर यह भाषा फिर उत्तर भारत में पहुंच गई तथा मुसलमान शासकों का आश्रय पाकर फलती फूलती रही। इस प्रकार उत्पत्ति की दृष्टि से उर्दू (साहित्यिक उर्दू), साहित्यिक हिंदी से प्राचीन है।

भाषायी संरचना को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू हिंदी से भिन्न भाषा नहीं है। इस दृष्टि से वह खड़ी हिंदी का एक ऐसा उपरूप अथवा शैली है जिसमें फारसी अरबी के शब्दों की संख्या पर्याप्त मात्रा में है तथा जिसके कुछ व्याकरणात्मक रूप (एवं कुछ स्थितियों में कुछ ध्वन्यात्मक रूप) भिन्न हैं एवं जो अरबी पर आधारित लिपि में लिखी जाती है।

५.५.३ हिंदी-उर्दू में अंतर

संरचनात्मक दृष्टि से भिन्न न होने पर भी हिंदी एवं उर्दू में कुछ भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं। संक्षेप में ये भिन्नताएं निम्नलिखित हैं—

(क) उर्दू में फारसी अरबी तुर्की भाषाओं के शब्दों की संख्या अधिक रहती है। इसके विपरीत हिंदी में संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्द अधिक मात्रा में हैं।

(ख) क़, ख़, ग़, ज़, फ़, जैसी व्यंजन ध्वनियों का उर्दू में प्रयोग होता है। उर्दू के ही प्रभाव से इन ध्वनियों का हिंदी में आगमन हो रहा है (इन ध्वनियों का प्रयोग उर्दू पढ़े लिखे व्यक्ति सावधानी पूर्वक बोलने पर ही कर पाते हैं)।

(ग) उर्दू में विसर्गांत शब्दों का पर्याप्त प्रयोग होता है ('मलिकः आइदः' आदि), हिंदी में विसर्गांत शब्दों की संख्या न के बराबर है। उर्दू के ऐसे शब्द हिंदी में आकारांत बन जाते हैं ('मलिकः' का मलिका आ.द का आइदा आदि)।

(घ) एक वचन से बहुवचन बनाने की पद्धति उर्दू एवं हिंदी में प्रायः समान है, किंतु उर्दू में कुछ ऐसे प्रयोग भी होते हैं जो हिंदी में नहीं होते। यथा—'मकान' का 'मकानात', 'हाकिम' का 'हुक्काम'। कुछ शब्द जो उर्दू में

बहुवचन है, हिंदी में एक वचन में प्रयुक्त होते हैं। यथा—'अखबार', खबर' का 'ववायद', कायद' का बहुवचन है किंतु हिंदी में अखबार' तथा 'ववायद' एकवचन के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं।

(ङ) लिंग बदलने की प्रक्रिया भी दोनों भाषाओं में प्रायः समान है किंतु उर्दू में कुछ नये रूप भी मिलते हैं। 'मलिक' से मलिका', 'खान' ■ 'खानम'। ऐसे कुछ रूप उर्दू के प्रभाव से हिंदी में भी प्रयुक्त होने लगे हैं।

(च) उर्दू में संबंध अभिव्यक्त करने के लिए जेर ए इजाफत का प्रयोग होता है जिसके अनुसार सबंधित शब्दों का क्रम बदल जाता है। यथा 'शेर ए पंजाब' अर्थात 'पंजाब का शेर'। हिंदी में इस प्रकार का प्रयोग नहीं होता।

(■) कुछ ऐसे उपसर्ग, प्रत्यय, अव्यय हैं जिनका प्रयोग उर्दू में होता है तो हिंदी में नहीं। (उर्दू—बा-वाअदब, बराय बराय मेहरबानी)।

(ज) हिंदी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है तब उर्दू अरबी लिपि (अरबी लिपि के आधार पर बनी हुई लिपि) में।

ऊपर जिन भिन्नताओं का उल्लेख किया गया है वे ऐसी नहीं हैं जिनके आधार पर उर्दू को अलग भाषा माना जाय।

५.५.४ हिंदवी, दक्खिनी, रेख्ता, रेख्ती

मुसल्मान शासकों द्वारा अपनायी गयी अरबी-फारसी शब्दों से युक्त दिल्ली के आस-पास की स्थानीय खड़ी बोली का उर्दू नाम तो १८वीं शताब्दी के आरंभ में पड़ा किंतु उसका आविर्भाव तो १२वीं शताब्दी के आरंभ में ही हो चुका था। 'उर्दू' कहलवाने से पहले यही भाषा, कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ, अनेक नामों से प्रचलित थी। उसका सबसे प्राचीन नाम 'हिंदवी अथवा हिंदुवी' है। इन्शा अल्ला खां ने अपनी रचना रानी केतकी की कहानी में जब यह लिखा था कि 'उसमें हिंदवी छुट और किसी भाषा का पुट नहीं है' तब उनका तात्पर्य संभवतः इसी हिन्दवी से था (यह नाम संभवतः १३-१४वीं शताब्दी तक रहा)।

१४वीं शताब्दी में मुसल्मानी शासन उत्तर से दक्षिण की ओर अग्रसर हुआ जिसके फलस्वरूप इस हिंदवी कहा जाने वाली भाषा का दक्षिण में प्रवेश हुआ। दक्षिण में उसे मुसल्मान शासकों के दरबार का आश्रय मिला तथा मुसल्मान साहित्यकारों का सहयोग। इस प्रकार इस भाषा रूप का साहित्य में प्रवेश हुआ। दक्षिण की इस साहित्यिक भाषा का दक्खिनी, 'दकिनी

अथवा 'दक्खिनी हिंदी' नाम दिए गये हैं। बंदानवाज निजामी आदि इसी दक्खिनी के कवि थे।

रेख्ता दक्खिनी एवं उर्दू के बीच की कड़ी है। 'दक्खिनी' का विकसित रूप, जिसका प्रचार दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक हुआ 'रेख्ता' कहा जाता है। १८वीं शताब्दी में 'दक्खिनी' के प्रसिद्ध कवि 'वली' ने 'रेख्ता' नाम की एक नवीन काव्य शैली को जन्म दिया। इस काव्य शैली के आधार पर ही उस भाषा रूप को भी रेख्ता कहा गया। 'वली' ने दक्षिण से उत्तर में आकर इसका प्रचार किया। १३वीं शताब्दी के आस पास निज़ी फरीद की कविता को भी रेख्ता के नाम से ही जाना जाता है।

'रेख्ता' एवं 'रेख्ती' में मुख्य अंतर यह था कि पुरुषों की भाषा को 'रेख्ता' कहा जाता था एवं स्त्रियों की भाषा को 'रेख्ती'। या स्त्रियों की भाषा होने के कारण 'रेख्ता' में अरबी फारसी के कठिन शब्द अपेक्षाकृत कम रहते थे।

१८वीं शताब्दी की 'रेख्ता' ही १९वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते उर्दू बन गयी।

५ ५ ५ हिंदुस्तानी

'हिंदुस्तानी' को सामान्य रूप से हिंदी एवं उर्दू के मध्य की ऐसी भाषा माना जाता है जिसमें हिंदी एवं उर्दू की अपेक्षा संस्कृत एवं फारसी-अरबी के कठिन शब्द कम होते हैं। इस दृष्टि से हिंदुस्तानी का आधार भी दिल्ली के आस-पास की बोल चाल की भाषा अर्थात खड़ी ही है। हिंदुस्तानी शब्द का प्रथम प्रयोग चाहे जब एवं जिस अर्थ में हुआ हो उसका प्रचार अंग्रेजों ने किया। इस हिंदुस्तानी के प्रयोग के कारण हिंदी को हिंदुओं से एवं उर्दू को मुसलमानों से संबद्ध किया जाने लगा।

हिंदी उर्दू से जोड़ी गयी इस धार्मिकता से प्रभावित होने के कारण ही गांधीजी ने 'राष्ट्रभाषा' के लिए हिंदी के स्थान पर हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग करना उचित समझा।

वास्तव में भाषा का कोई धर्म नहीं होता वह किसी धर्म से संबद्ध नहीं होती।

यह मानी हुई बात है कि संपूर्ण भारत में सामान्य रूप से जनता जिस 'संपर्क भाषा' का विभिन्न सामाजिक धार्मिक अवसरों पर प्रयोग करती है, उसका रूप साहित्यिक हिंदी की अपेक्षा हिंदुस्तानी के निकट है। किंतु

हिंदुस्तानी का एक भाषा के रूप म स्वीकार करना सही नही ह, क्याकि उसकी ध्वन्यात्मक एव व्याकरणात्मक सरचनाए हिंदी (साधु हिंदी) से भिन्नता नही रखती। इसी स उर्दू के समान ही हिंदुस्तानी को भी हिंदी (साधु हिंदी) का एक उपरूप मानना चाहिए।

५ ५ ६ पश्चिमी हिंदी एव पूर्वी हिंदी

हिंदी भाषा मडल की सहभाषाए जिनका परस्पर एव केंद्रीय रूप (साधु हिंदी) से अत्यत निकट सबध ह, वे ह पश्चिमी हिंदी एव पूर्वी हिंदी। वास्तव में ये दोनों सहभाषाए साधु हिंदी से मिलकर, हिंदी भाषा मडल का एक आतरिक मडल बनाती ह। यह पहले ही बताया जा चुका ह कि सामान्य रूप से पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी एव साधु हिंदी के सम्मिलित रूप को ही हिंदी कहा जाता ह।

५ ५ ७ पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी मे अतर

पश्चिमी हिंदी शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रश रूप स उद्भूत होने के कारण शौरसेनी से प्रभावित ह जबकि पूर्वी हिंदी अर्धमागधी के अपभ्रश रूप से विकसित हुई है। इसलिए पूर्वी हिंदी पर मागधी का प्रभाव तो ह ही, शौरसेनी के प्रभाव स भी वह मुक्त नही ह। भौगोलिक दृष्टि से जहा पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती पजाबी और मराठी से घिरी होने के कारण उनसे प्रभावित ह वहा पूर्वी हिंदी, बिहारी, उडिया और बगाली के बीच में होने के कारण उनसे प्रभावित ह। यही भौगोलिक तथा एतिहासिक भिन्नताए पश्चिमी और पूर्वी हिंदी को एक-दूसरे से अलग करती ह। नीचे इन भाषाओ म पायी जानेवाली कुछ भिन्नताओं का उल्लेख किया जाता ह।

(क) पश्चिमी हिंदी (प हिं) के 'ड' 'ढ के स्थान पर पूर्वी हिंदी (पू हिं) में 'र' तथा 'रह' का प्रयोग होता ह। यथा—प हिं—तोडे, पू हिं—तोरे।

(ख) पश्चिमी हिंदी में शब्द मध्यग 'ह' का प्राय लोप हो जाता है जबकि पूर्वी हिंदी में वह प्राय सध्यक्षररूप में सुरक्षित ह। यथा—प हिं –दिया, पू हिं—दहेमि।

(ग) पश्चिमी हिंदी क धातु के आदि का 'य' तथा 'व', पूर्वी हिंदी म परिवर्तित होकर ए तथा 'ओ हो जाता ह। कभी-कभी सध्यक्षररूप में 'ह'

का प्रयोग भी होता है। यथा—प हिं (व्रज)—यामें, वामें, पू हिं —एमें एहमें, ओमें, ओहमें।

(घ) पश्चिमी हिंदी में दो स्वर प्रायः एक साथ नही आते किंतु पूर्वी हिंदी में ऐसा कोई नियम नही ह। परिणाम स्वरूप पश्चिमी हिंदी के 'ए' तथा 'औ', पूर्वी हिंदी में 'अइ' तथा अउ' में परिवर्तित हो जाते ह यथा—प हिं—कह और, मौर, पू हिं क्रमश —कहइ अउर, मउर।

(ङ) पश्चिमी हिंदी के आकारात (व्रज के ओकारात) शा पूर्वी हिं में अकारात या व्यजनात हो जाते ह। यथा—प हिं—बडा (व्रज–बडो) पू हिं —बड या बड।

(च) पश्चिमी हिंदी में आकारात ान्दा का तियक ्प एकारात बनता ह जबकि पूर्वी हिंदी में ऐसा नही होता। यथा—

प हिं—घोडा	पू हिं—घोडा
तियक—घोडे	तियक—घोडा

(छ) पश्चिमी हिंदी की खडी बोली तथा व्रजभाषा के जो, सो आदि रूप पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी में जे जवन, से सवन आदि रूपा में प्राप्त होत ह।

(ज) पश्चिमी हिंदी में पुरुषवाचक सवनामों के सबध रूपा में मध्यग ए रहता ह जो पूर्वी हिंदी में परिवर्तित होकर आ हो जाता ह। यथा—प हि— मेरा पू हिं—मोर।

(झ) पश्चिमी हिंदी (खडी बोली) में 'हम पुरुषवाचक सवनाम बहु वचन (कभी कभी एक वचन के लिए भी) प्रयुक्त होता है, जबकि पूर्वी हिंदी में वह कवल एकवचन के लिए ह बहुवचन बनाने के लिए उसमें 'लाग जाडना अनिवाय ह।

(ञ) पश्चिमी हिंदी में ने' परसग का प्रयोग उसकी निजी विशेषता ह जिसका पूर्वी हिंदी में सवथा अभाव ह। यथा—प हि—उसन किया पू हि (अवधी)—उ दिहिसि।

(ट) पश्चिमी एव पूर्वी हिंदी क क्रिया रूपों में भी पर्याप्त अतर ह। उदाहरण के लिए भूत एव भविष्यकाल का लिया जा सकता ह।

भूतकाल में पश्चिमी हिंदी में सवनाम के अनुसार क्रिया रूप में परिवतन नही होता किंतु पूर्वी हिंदी में सवनाम क अनुरूप क्रिया क रूप में परिवतन हा जाता ह। यथा—प हि में मैंने– तुमने– उसने–, तीनो क साथ—'मारा

क्रिया रूप होगा किंतु पू हिं (अवधी) म मैंने—के पीछे—'मारेऊ' होगा किंतु तुमने—तथा उन्मन—के पीछे— मारिस' होगा।

भविष्यकाल में पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ह–का प्रयोग करने पर 'मारिहौं', 'मारिह' जसे रूप बनते ह किंतु पूर्वी हिंदी (अवधि) में–व– का प्रयोग कर मारिव , 'मारिब' जस रूप बनाये जाते ह।

५ ६ पश्चिमी हिंदी की बोलिया

पश्चिमी हिंदी की पाच मुख्य बोलिया गिनी जाती ह—ब्रज कन्नौजी बुंदेली खडी एव बागरू। इनमें से ब्रज कन्नौजी एव बुंदेली के मध्य बहुत अधिक समीपता ह। दूसरी ओर खडी एव बागरू परस्पर निकटता रखती ह।

५ ६ १ ब्रज

'ब्रज मडल की भाषा ही 'ब्रज कहलाती ह। यही वह प्रदेश ह जिसे कभी शूरसेन कहा जाता था। यह मथुरा, आगरा अलीगढ एव धौलपुर की प्रमुख बोली ह।

पश्चिमी हिंदी की यह प्रमुख बोली ह। ब्रज के अध्ययन म न केवल पश्चिमी हिंदी वरन पहाडी एव राजस्थानी भाषाओ के समझने में भी सहायता मिलती ह, क्योंकि शौरसेनी प्राकृत स विकसित बोलियो म ब्रज महत्वपूर्ण बोली ह।

हिंदी का मध्यकाल एक प्रकार से 'ब्रज युग' कहा जा सकता ह। अवधी की कुछ रचनाओ को छोडकर सपूर्ण भक्ति-साहित्य तथा पूरा रीति साहित्य ब्रज में ह। ब्रज की साहित्यिक धारा आधुनिककाल म भी प्रवाहित होती रही ह।

भुक्सा (ननीताल) अतर्वेदी (एटा बदायू बरेली) डागी (धौलपुर) आदि इसकी उपबोलिया ह। आगरा, मथुरा, अलीगढ की ब्रज को 'साधु-ब्रज' कहा जा सकता ह।

खडी बोली (साधु हिंदी) स तुलना करने पर ब्रज की निम्नलिखित विशेषताए दृष्टिगोचर होती ह—

(क) खडी बोली के आकारात शब्द प्राय ब्रज में ओकारात अथवा औकारात हो जाते ह। खडी बोली—दूआ, आया ब्रज—दूजो, आयो)।

(ख) खडी बोली (ख बो) के—ए —आ ब्रज व क्रमश —ऐ, औ बन जाते हैं (ख बो—में, को, ब्रज—मैं कौ)।

(ग) जहाँ खड़ी बोली के शब्द व्यजनात हो गये हैं वहाँ ब्रज में पुल्लिग शब्द उकारांत एवं स्त्रीलिंग इकारांत मिलते हैं (सुग सुगु दूर दूरि)।

(घ) सवनामों में म के स्थान पर हौं, का प्रयोग विशेष है।

(ङ) वतमान काल में सहायक क्रिया रूप है के स्थान पर हौं भूत काल में था' आदि रूपों के स्थान पर –हुतो', 'हतो तथा भविष्यत्काल में 'हैं है आदि प्रयुक्त होते है।

५ ६ २ कन्नौजी

कन्नौज प्रदेश की भाषा होने के कारण इसे कन्नौजी कहा गया है। इसके क्षेत्र में हरदोई, शाहजहांपुर, पीलीभीत फर्रुखाबाद इटावा कानपुर आ जाते है। क्षेत्र की दृष्टि से कन्नौजी अवधी एव ब्रज के मध्य पड़ता है। कन्नौजी की ब्रज से बहुत अधिक समीपता है इसी से कुछ लोग उसे ब्रज का उपबोली मानते है। यों कन्नौजी में निकटता के कारण कुछ विशेषताए अवधी की भी आ गयी है। उदाहरणाथ सप्रद परसग—रर अधिकरण परसग—मा–मह यह, वह सवनाम के स्थान पर ई ऊ अवधी के प्रभाव से ही कन्नौजी में आये है।

यहा ब्रज ही साहित्य का माध्यम रही है। अत कन्नौजी में साहित्य न के बराबर है।

५ ६ ३ बुदेली

बुदेलखड में बोली जाने के कारण इस भाषा रूप को बुदेली अथवा 'बुदेलखडी कहते है। बुदेली मुख्य रूप से बादा झांसी जालौन ग्वालियर (पूर्वी भाग), भोपाल (कुछ भाग) ओड़छा छिंदवाड़ा में बोली जाती है। बुदेली की भी ब्रज से बहुत अधिक निकटता है। इस कारण कन्नौजी के समान इसे भी ब्रज की एक उपबोली समझा जाता है।

बुदेलखड में भी साहित्य रचना के लिए मुख्य रूप से ब्रज का ही प्रयोग होता रहा है। विशुद्ध बुन्देली के साहित्यकारो में गगाधर एव इसुरी प्रसिद्ध है।

बुदेली में ब्रज के समान उकारात एव इकारात सज्ञाए नहीं है। बुदेली में ब्रज से कुछ भिन्न परसग भी प्रयुक्त होते है (यथा—केलाने, केकाजे=के लिए खा=को)। सहायक क्रिया के वतमान काल में अऊ, आय तथा भूतकाल में तो, ती जसे रूप बनते है।

बुदेली के बहुत से विशिष्ट प्रयोग एव शब्द हैं। इन विशिष्ट शब्दो एव

प्रयोगों के कारण ब्रजी में जो बुंदेलीपन आ जाता है, इससे यह भाषा रूप हिंदी की अन्य बोलियों से भिन्न लगता है।

५ ६ ४ खड़ी बोली

पश्चिमी हिंदी की मुख्य बोली 'खड़ी' है। 'खड़ी' नाम के संबंध में यद्यपि अनेक मत हैं किंतु मान्य मत यह है कि 'खड़ी', 'खरी' अर्थात परिनिष्ठित का अर्थ सूचित करता है। इस भाषा रूप के लिए सरहिंदी, हिंदुस्तानी, कौरवी आदि अन्य नाम भी प्रयुक्त हुए हैं किंतु इसका बहुप्रचलित नाम 'खड़ी' ही है। यह बोली सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, अंबाला, बिजनौर, रामपुर, आदि स्थानों की स्थानीय बोली है, जिसमें अरबी फारसी के शब्दों की पर्याप्त संख्या है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि साधु हिंदी, उर्दू अथवा हिंदुस्तानी का आधार यही खड़ी बोली है।

खड़ी को आकारांत बोली माना जाता है क्योंकि जो शब्द अवधी में व्यंजनांत तथा ब्रज में ओकारांत हैं वे खड़ी में प्रायः आकारांत होते हैं—जैसे, अवधी–करत ब्रज–करतो, खड़ी–करता। या अवधी–घोड़, ब्रज–घोरा, खड़ी–घोड़ा। स्वरों के मध्य, दीर्घ स्वर के पश्चात भी द्वित्व व्यंजन का अस्तित्व खड़ी की दूसरी मुख्य विशेषता है। यथा—'बट्टा', 'बाप्पू'। तिर्यक बहुवचन परसर्ग-ऊं भी विशेष है। यथा-मरद मरदूं, बेटी बेटयूं। भूतकाल एक वचन रूप 'रिह्या', 'उठ्या' (=रहा, उठा) अपूर्ण भूत 'मारन था', 'मारेया', आदि भी खड़ी के विशेष प्रयोग हैं।

५ ६ ५ बांगरू

इस बोली का यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि इसका प्रयोग 'बांगर' प्रदेश में होता है। बांगर, करनाल जिले के आस पास के क्षेत्र का नाम है। यों यह बोली करनाल के अतिरिक्त रोहतक, हिसार, जिंद, नाभा आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है।

बांगरू को जाटू तथा हरियानी भी कहा जाता है। बांगरू एवं खड़ी में इतनी अधिक निकटता है कि कुछ विद्वान बांगरू को खड़ी की एक उपबोली मानते हैं।

बांगरू की कुछ विशेषताएं हैं—तिर्यक, बहुवचन, आकारांत रूप। जैसे—घर घरां, संप्रदान परसर्ग 'कील्या' तथा अधिकरण परसर्ग 'मह, माह।'

सहायक क्रिया ह, 'हू' के स्थान पर 'स', 'से', 'सू' आदि का प्रयोग। वतमान काल में वकल्पिक रूप—ता/दा का प्रयोग, यथा—करता/करदा।

५ ७ पूर्वी हिंदी की बोलिया

पूर्वी हिन्दी का विकास अधमागधी प्राकृत स सबद्ध ह। जस अधमागधी, मागधी एव शौरसेनी प्राकृतों म माध्य का रूप थी वसे ही पूर्वी हिन्दी एक ओर शौरसेनी की उत्तराधिकारणी पश्चिमी हिन्दी स प्रभावित ह तो दूसरी ओर मागधी प्रसूत पूव का अन्य भाषाओं (बिहारी, बगला आदि) की विशेषताओं को भी अपने में *आत्मसात किये हुए ह।*

पूर्वी हिन्दी की मुख्य तीन बोलिया ह—अवधी, बघेली एव छत्तीसगढी। इन तीनों के मध्य पर्याप्त समानता ह।

५ ७ १ अवधी

अधमागधी प्राकृत से विकसित बोलियों में अवधी का प्रमुख स्थान है।

अवधी का सबध अवध प्रदेश से ह। अवधी को कोसली ऐव बसवाडी नामों स भी पुकारा जाता ह। या य दोनो एक प्रकार स उसकी उपबोलिया हैं। अवध प्रदेश में लखीमपुर गोंडा बाराबंकी, लखनऊ सीतापुर उन्नाव रायबरेली प्रतापगढ आदि स्थानों पर अवधी का प्रयोग होता ह।

हिंदी विकास के मध्यकाल काल में ब्रज के समान अवधी भी एक महत्वपूर्ण भाषा थी। जायसी एव तुलसी जसे समथ साहित्यकारों की रचना अवधी म ह।

अवधी की कुछ मुख्य विशेषताए य ह खडी जहा अकारान्त भाषा ह वहा अवधी यजनात (अथवा आकारात) भाषा ह। यथा—लडका, घोडा अवधी—घोर। साधु हिंदी के ए औ अवधी में सध्यस्वर अइ अउ ह। यथा—जइस (जसे), अउरत (औरत) श ष के स्थान पर अवधी में स' का ही प्रयोग होता ह। व के स्थान पर ब तथा 'य के स्थान पर ज' का उच्चारण होता ह। सज्ञा शब्दों के तीन-तीन रूप भी होत ह। यथा—घोर (= घोडा) का बहुवचन में घार घोरवा, घोरौना रूप बनत ह।

मूल रूप एव तियक रूप एक वचन म समान रहत ह। यथा-साधु हिंदी में मूल रूप 'घोडा एव तियक रूप घोड–(-से का आदि) रूप बनता ह किंतु अवधी में एक ही रूप 'घोर' रहेगा।

विशेषण मूल रूप में प्राय व्यजनात होते ह, यथा—नीक भल, थोर आदि।

सहायक क्रिया वतमान काल में 'ह ह क स्थान पर आर 'बार' तथा भूत काल में 'था, थ के स्थान पर 'भए 'रहे' आदि रूप बनत ह।

'देखना' 'करना' आदि रूप 'देखव', 'करव' बनते हैं। 'ब' का प्रयोग भविष्यकाल के लिए भी होता है, यथा—कहब = कहूँगा।

अवधी की सख्याए भी साधु हिंदी से भिन्नता रखती है।

५ ७ २ बघेली

बघेल खड में बोली जाने के कारण इसका नाम 'बघेली' पडा है। रीवा, बघेलखड का केंद्र है। बघेलखड से बाहर यह बोली दक्षिण में बालघाट, पश्चिम में बाग पूर्व में मिर्जापुर, बिलासपुर, छोटा नागपुर एव उत्तर में उत्तर प्रदेश एव मध्य प्रदेश की सीमा तक बोली जाती है।

वास्तव म बघेली अवधी से इतनी अधिक समानता रखती है कि बहुत से विद्वान उसे अवधी की उपबोली ही मानना उचित समझते है।

बघेली में साहित्य का प्राय अभाव है।

बघेली की कुछ विशेषताए है सर्वनामों में म्वा, मोही (= मुझे), त्वा, तोही (=तुम), विशेषण मे –हा का प्रयोग। यथा—नीक के स्थान पर नीकहा।

अवधी में भविष्यकाल में–ब'–की प्रधानता रहती है किंतु बघेली में –ह'–की प्रधानता रहती है, यथा—कहिहौं (= कहूँगा)।

बघेली में कुछ नये परसर्ग भी पाये जाते है, यथा—कर्म कारक के लिए 'कहा' तथा करण कारक के लिए 'तार' का प्रयोग।

५ ७ ३ छत्तीसगढी

छत्तीसगढ नामक प्रदेश की बोली होने के कारण ही इसे 'छत्तीसगढी' कहा जाता है। रायपुर बिलासपुर, रायगढ, खरागढ, उदयपुर के अतिरिक्त मध्य प्रदेश के बस्तर जिले म भी इस बोली का प्रयोग होता है।

छत्तीसगढी में साहित्य न के बराबर है।

छत्तीसगढी की मुख्य विशेषताए हैं '–मन' लगाकर बहुवचन की रचना करना यथा—मनुख (= मनुष्य)—मनुखमन (=बहुत मनुष्य)।

नियत रूप में कभी कभी '–अन जोडकर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति, यथा—बइला (= बैल) का बहुवचन, बइलन।

निश्चयार्थ क लिए हर का प्रयोग।

ध्वनियों में महाप्राणीकरण प्रवृत्ति। यथा—धौड (=दौड), झन (=जन)।

इसके अतिरिक्त छत्तीसगढी में अवधी से भिन्न कई प्रकार के परसर्गों का

प्रयोग होता है। यथा—कर्म कारक के लिए 'ला' तथा करण कारक के लिए 'ले' का प्रयोग।

छत्तीसगढ़ी को ही बालाघाट के निकट 'खल्टाही' अथवा 'खल्टाटी' कहते हैं।

५.८ भोजपुरी की स्थिति

भोजपुरी के संबंध में प्रायः दो प्रश्न पूछे जाते हैं। एक तो यह कि भोजपुरी बोली है अथवा भाषा। और दूसरा यह कि यदि भोजपुरी एक बोली है तो वह किस भाषा की बोली है—बिहारी अथवा हिन्दी की।

५.८.१ भोजपुरी बोली है अथवा भाषा ?

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर जानने से पहले भाषा एवं बोली के संबंध में कुछ सामान्य जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

वास्तव में भाषा एवं बोली में कोई तात्त्विक अंतर नहीं होता। एक व्यक्ति की वाणी को 'व्यक्ति-बोली' कहा जाता है। कुछ व्यक्तियों का समूह (जिनकी संख्या के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता) अपने स्थापित करने के लिए जिस वाणी का प्रयोग करता है उसे बोली कहा जाता है। ऐसी सब बोलियाँ जो परस्पर संबद्ध हैं तथा जो बिना सिखाए परस्पर समझी जाती हैं उनके समूह को भाषा कहते हैं। उन बोलियों के समूह में से जिस बोली को धर्म, राजनीति अथवा साहित्य की दृष्टि से अधिक महत्त्व प्राप्त हो जाता है वही भाषा कहलाने लगती है। मध्य युग में ब्रज को धर्म का आधार मिला और वह ब्रज बोली न रहकर 'ब्रज भाषा' बन गई। आधुनिक युग में खड़ी बोली को शासन का आश्रय मिल गया और आज हिंदी के नाम से जिस भाषा को जाना जाता है, वह खड़ी बोली ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा और बोली का मुख्य अंतर भाषावैज्ञानिक नहीं है। राजनीति, धर्म एवं साहित्य ही वे तत्त्व हैं जो किसी बोली को भाषा बनने में सहायक होते हैं।

इस दृष्टि से भोजपुरी एक बोली ही है। यों भोजपुरी का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है (बिहार से उत्तर प्रदेश तक) तथा उसके बोलने वालों की संख्या भी करोड़ों में है किंतु भोजपुरी न तो कहीं शिक्षा का माध्यम है और न ही वह किसी प्रदेश के राज-काज की भाषा है। उसका साहित्य भी अभी बाल्यावस्था में ही है। अतः इस बात में कोई संदेह नहीं कि अपनी वर्तमान स्थिति में भोजपुरी एक बोली ही है।

५ ८ २ भोजपुरी किस भाषा की बोली है ?

भोजपुरी के भाषायी संबंध को लेकर हमेशा एक विवाद चलता रहा है। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वेक्षण' में भोजपुरी को मैथिली एवं मगही के साथ, बिहारी की बोली दिखाया है। सुनीति कुमार चटर्जी, ग्रियर्सन के इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि भोजपुरी, पूर्व की बिहारी की अपेक्षा मध्य देश की हिन्दी से अधिक प्रभावित है। भोजपुरी को बिहारी की अन्य बोलियों एवं हिंदी से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजपुरी मध्य देशीय हिंदी से प्रभावित होने पर भी, भाषा की दृष्टि से हिन्दी की अपेक्षा मैथिली एवं मगही से अधिक निकटता रखती है। यहाँ यह न भूलना चाहिए कि जहाँ मध्य देशीय हिंदी का संबंध शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से है वहाँ भोजपुरी का नाता मागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से है। भोजपुरी का विकास मागधी प्राकृत के पश्चिमी रूप से हुआ है इस कारण वह कितनी ही बातों में, अर्ध-मागधी से विकसित पूर्वी हिंदी के साथ समानता दिखाती है फिर उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रयुक्त होने के कारण उसका हिंदी से प्रभावित होना स्वाभाविक है किंतु इससे वह हिंदी की बोली नहीं बन जाती। हाँ, अगर बिहारी को ही हिंदी के अंतर्गत माना जाय तो फिर बात दूसरी है।

भोजपुरी एवं मगही तथा मैथिली में जो भाषागत समानता है उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं। तीनों बोलियों में संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के कई रूप होते हैं जिनके अर्थ में बहुत कम अंतर रहता है। यथा—पोथि पोथिया, घोड़ा घोड़वा, बड़ा, बड़का, छोटि, छोटकी। 'नि', 'न्ह' लगाकर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति भी इन सबमें समान है। यथा—लरिका, (लईका) लरिकन, लरिकन्हि। भोजपुरी तथा मगही दोनों में ही 'क' 'कर' से संबंध का बोध होता है। यथा—केकर, ओकर। इन बोलियों के क्रिया रूपों में भी पर्याप्त समानता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भोजपुरी को बिहारी की बोली मानना ही उचित है।

५ ९ शब्दावली

वाक्य के ऐसे सार्थक खंड जो स्वतंत्रतापूर्वक उच्चरित हो सकें, सामान्य रूप से शब्द कहे जाते हैं। किसी भी भाषा के समस्त शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्द भंडार' अथवा 'शब्दावली' कहा जाता है।

प्रयोग होता ह। यथा—कम कारक क लिए 'ला' तथा करण कारक क लिए 'ले' का प्रयोग।

छत्तीसगढ़ी का ही बालाघाट क निकट 'खल्टाही' अथवा 'खल्टी' कहते ह।

५ ८ भोजपुरी की स्थिति

भोजपुरी क सबध में प्राय दो प्रश्न पूछे जाते ह। एक तो यह कि भोजपुरी बोली ह अथवा भाषा। और दूसरा यह कि यदि भोजपुरी एक बोली है तो वह किस भाषा की बोली ह—बिहारी अथवा हिंदी की।

५ ८ १ भोजपुरी बोली है अथवा भाषा ?

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर जानने से पहले भाषा एव बोली क सबध में कुछ सामान्य जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक ह।

वास्तव म भाषा एव बोली में कोई तात्विक अतर नही होता। एक व्यक्ति की वाणी को व्यक्ति-बोली' कहा जाता ह कुछ व्यक्तियो का समूह (जिनकी सख्या क सबध में कुछ नही कहा जा सकता) सपर्क स्थापित करने के लिए जिस वाणी का प्रयोग करता ह उस बोली कहा जाता ह। ऐसी सब बोलियाँ जो परस्पर सबद्ध ह तथा जो बिना विशेष प्रयास परस्पर समझी जाती ह, उनक समूह को भाषा कहते ह। उन बोलियो के समूह म से जिस बोली को धम राजनीति अथवा साहित्य की दृष्टि स अधिक महत्व प्राप्त हो जाता ह, वही भाषा कहलाने लगती ह। मध्य युग म ब्रज को धर्म का आधार मिला और वह ब्रज बोली न रहकर ब्रज भाषा बन गई। आधुनिक युग में खड़ी बोली को शासन का आश्रय मिल गया और आज हिंदी क नाम स जिस भाषा को जाना जाता ह, वह खड़ी बोली ही ह। कहने का तात्पर्य यह ह कि भाषा और बोली का मुख्य अतर भाषावैज्ञानिक नही ह। राजनीति धर्म एव साहित्य ही व तत्व है जो किसी बोली को भाषा बनने में सहायक होते ह।

इस दृष्टि से भोजपुरी एक बोली ही ह। यो भोजपुरी का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत ह (बिहार से उत्तर प्रदेश तक) तथा उसक बोलने वालो की सख्या भी करोडो में है किंतु भोजपुरी न तो कही शिक्षा का माध्यम ह और न ही वह किसी प्रदेश क राज-काज की भाषा ह। उसका साहित्य भी अभी बाल्यावस्था में ही ह। अत इस बात में कोई सन्देह नही कि अपनी वर्तमान स्थिति में भोज-पुरी एक बोली ही ह।

५८२ भोजपुरी किस भाषा की बोली है ?

भोजपुरी के भाषायी संबंध को लेकर हमेशा एक विवाद चलता रहा है। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वेक्षण' में भोजपुरी को मैथिली एवं मगही के साथ, बिहारी की बोली गिनाया है। सुनीति कुमार चटर्जी, ग्रियर्सन के इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि भोजपुरी, पूर्व की बिहारी की अपेक्षा मध्य देश की हिन्दी से अधिक प्रभावित है। भोजपुरी की बिहारी की अन्य बोलियों एवं हिंदी से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजपुरी मध्य देशीय हिंदी से प्रभावित होने पर भी, भाषा की दृष्टि से हिंदी की अपेक्षा मैथिली एवं मगही से अधिक निकटता रखती है। यहां यह न भूलना चाहिए कि जहां मध्य देशीय हिंदी का संबंध शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से है, वहां भोजपुरी का नाता मागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से है। भोजपुरी का विकास मागधी प्राकृत के पश्चिमी रूप से हुआ है, इस कारण वह कितनी ही बातों में, अर्धमागधी से विकसित पूर्वी हिंदी के साथ समानता दिखाती है, फिर उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रयुक्त होने के कारण उसका हिन्दी से प्रभावित होना स्वाभाविक है किंतु इससे वह हिन्दी की बोली नहीं बन जाती। हां, अगर बिहारी को ही हिंदी के अंतर्गत माना जाय तो फिर बात दूसरी है।

भोजपुरी एवं मगही तथा मैथिली में जो भाषागत समानता है उसके कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं। तीनों बोलियों में संज्ञा तथा विशेषण शब्दों के कई रूप होते हैं जिनके अर्थ में बहुत कम अंतर रहता है। यथा—पोथि, पोथिया, घोड़ा घोड़वा, बड़ा, बड़का, छोटि, छोटकी। 'नि', 'न्ह' लगाकर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति भी इन सबमें समान है। यथा—लरिका, (लईका) लरिकन, लरिकन्हि। भोजपुरी तथा मगही दोनों में ही 'क' 'कर' से संबंध का बोध होता है। यथा—केकर, ओकर। इन बोलियों के क्रिया रूपों में भी पर्याप्त समानता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भोजपुरी को बिहारी की बोली मानना ही उचित है।

५९ शब्दावली

वाक्य के ऐसे सार्थक खंड जो स्वतंत्रतापूर्वक उच्चरित हो सकें, सामान्य रूप से शब्द कहे जाते हैं। किसी भी भाषा के समस्त शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्द भंडार' अथवा 'शब्दावली' कहा जाता है।

प्रयोग होता है। यथा—कर्म कारक के लिए 'ला' तथा करण कारक के लिए 'ले' का प्रयोग।

छत्तीसगढ़ी को ही बालाघाट के निकट 'खल्टाही' अथवा 'खल्टाटी' कहते हैं।

५.८ भोजपुरी की स्थिति

भोजपुरी के संबंध में प्रायः दो प्रश्न पूछे जाते हैं। एक तो यह कि भोजपुरी बोली है अथवा भाषा। और दूसरा यह कि यदि भोजपुरी एक बोली है तो वह किस भाषा की बोली है—बिहारी अथवा हिंदी की।

५.८.१ भोजपुरी बोली है अथवा भाषा ?

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर जानने से पहले भाषा एवं बोली के संबंध में कुछ सामान्य जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

वास्तव में भाषा एवं बोली में कोई तात्त्विक अंतर नहीं होता। एक व्यक्ति की वाणी को 'व्यक्ति-बोली' कहा जाता है। कुछ व्यक्तियों का समूह (जिनकी संख्या के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता) संपर्क स्थापित करने के लिए जिस वाणी का प्रयोग करता है उसे बोली कहा जाता है। ऐसी सब बोलियाँ जो परस्पर संबद्ध हैं तथा जो बिना कठिनाई परस्पर समझी जाती हैं, उनके समूह को भाषा कहते हैं। उन बोलियों के समूह में से जिस बोली को धर्म, राजनीति अथवा साहित्य की दृष्टि से अधिक महत्त्व प्राप्त हो जाता है वही भाषा कहलाने लगती है। मध्य युग में ब्रज को धर्म का आधार मिला और वह ब्रज बोली न रहकर 'ब्रज भाषा' बन गई। आधुनिक युग में खड़ी बोली को शासन का आश्रय मिल गया और आज हिंदी के नाम से जिस भाषा को जाना जाता है, वह खड़ी बोली ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा और बोली का मुख्य अंतर भाषावैज्ञानिक नहीं है। राजनीति, धर्म एवं साहित्य ही वे तत्त्व हैं जो किसी बोली को भाषा बनने में सहायक होते हैं।

इस दृष्टि से भोजपुरी एक बोली ही है। यों भोजपुरी का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है (बिहार से उत्तर प्रदेश तक) तथा उसके बोलने वालों की संख्या भी करोड़ों में है किंतु भोजपुरी न तो कहीं शिक्षा का माध्यम है और न ही वह किसी प्रदेश के राज-काज की भाषा है। उसका साहित्य भी अभी बाल्यावस्था में ही है। अतः इस बात में कोई संदेह नहीं कि अपनी वर्तमान स्थिति में भोजपुरी एक बोली ही है।

५.८.२ भोजपुरी किस भाषा की बोली है ?

भोजपुरी के भाषायी सबंध को लेकर हमेशा एक विवाद चलता रहा है। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वेक्षण' में भोजपुरी का मैथिली एवं मगही के साथ, बिहारी की बोली दिखाया है। सुनीति कुमार चटर्जी, ग्रियर्सन के इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका विचार है कि भोजपुरी, पूर्व की बिहारी की अपेक्षा मध्य देश की हिंदी से अधिक प्रभावित है। भोजपुरी की बिहारी की अन्य बोलियों एवं हिंदी से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजपुरी मध्य देशीय हिंदी से प्रभावित होने पर भी, भाषा की दृष्टि से हिंदी की अपेक्षा मैथिली एवं मगही से अधिक निकटता रखती है। यहां यह न भूलना चाहिए कि जहां मध्य देशीय हिंदी का सबंध शौरसेनी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से है वहां भोजपुरी का नाता मागधी प्राकृत के अपभ्रंश रूप से है। भोजपुरी का विकास मागधी प्राकृत के पश्चिमी रूप से हुआ है, इस कारण वह कितनी ही बातों में, अर्ध-मागधी से विकसित पूर्वी हिंदी के साथ समानता दिखाती है, फिर उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रयुक्त होने के कारण उसका हिंदी से प्रभावित होना स्वाभाविक है किंतु इससे वह हिंदी की बोली नहीं बन जाती। हां, अगर बिहारी को ही हिंदी के अतर्गत माना जाय तो फिर बात दूसरी है।

भोजपुरी एवं मगही तथा मैथिली में जो भाषागत समानता है उसके कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं। तीनों बोलियों में सज्ञा तथा विशेषण शब्दों के कई रूप होते हैं, जिनमें अर्थ में बहुत कम अंतर रहता है। यथा—पोथि पोथिया, घोडा घोड़वा बड़ा, बड़का, छोटि, छोटकी। तिन, 'ह' लगाकर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति भी इन सबमें समान है। यथा—लरिका (लईका) लरिकन, लरिकन्हि। भोजपुरी तथा मगही दोनों में ही क 'कर' से सबंध का बोध होता है। यथा—केकर ओकर। इन बोलियों के क्रिया रूपों में भी पर्याप्त समानता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भोजपुरी को बिहारी का बोली मानना ही उचित है।

५.९ शब्दावली

वाक्य के ऐसे सार्थक खंड जो स्वतंत्रतापूर्वक उच्चरित हो सकें सामान्य रूप से शब्द कहे जाते हैं। किसी भी भाषा के समस्त शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्द भंडार' अथवा 'शब्दावली' कहा जाता है।

शब्द अपने आप में भाषा नहीं है किंतु शब्दों के अभाव में भाषा का अस्तित्व संभव नहीं है।

शब्दों के माध्यम से ही भाषा एवं संस्कृति में संबंध स्थापित होता है। शब्दावली जाति के सांस्कृतिक विकास का सूचक है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में धर्म एवं दर्शन से संबद्ध शब्दों की अधिकता एवं वैज्ञानिक शब्दावली का अभाव इस बात का द्योतक है कि प्राचीन काल में आर्य जाति जितनी आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत थी उतनी वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं।

जीवित एवं विकासशील भाषाओं में शब्दों का आदान प्रदान होता ही रहता है। भाषा की ग्रहण शक्ति उसकी जीवन शक्ति का परिचायक है, उसकी निर्धनता अथवा अभाव का नहीं।

शब्दों का विवेचन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। जैसे—कार्य की दृष्टि से (संज्ञा क्रिया आदि) रचना की दृष्टि से (मूल = राम पवन आदि, यौगिक = धर्मशाला कुमार्ग आदि) अर्थ की दृष्टि से (धारणात्मक अर्थ देने वाले व्याकरणात्मक अर्थ देने वाले आदि) इतिहास की दृष्टि से। सामान्य रूप से जब शब्दावली का विवेचन करने को कहा जाता है तब इतिहास अथवा स्रोत की दृष्टि से शब्दों का विवेचन किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इतिहास के सिवाय अन्य दृष्टियों से शब्दों का विवेचन रूप विज्ञान के अंतर्गत होता है।

५ ९ १ हिंदी शब्दावली

इतिहास अथवा स्रोत की दृष्टि से शब्दों का विवेचन करते समय यह देखा जाता है कि शब्द किन स्रोतों अर्थात भाषाओं से आये हैं। इस दृष्टि से हिंदी शब्द दो प्रकार के हैं अज्ञातमूलक एवं ज्ञातमूलक। अज्ञातमूलक शब्द वे हैं जिनके मूल स्रोत अर्थात भाषा का पता नहीं है। सामान्य रूप से इन शब्दों को ही 'देशज' कहा जाता है। वास्तव में देशज नाम का अर्थ है जो देश (अर्थात देश की भाषा) में जन्मा हो किंतु 'देशज शब्दों' के नाम से उन शब्दों का विवेचन होता है जिन शब्दों के मूल का पता नहीं है। ज्ञातमूलक शब्द वे हैं जिनके मूलस्रोत का पता है। ज्ञातमूलक हिंदी शब्दों को प्रायः चार वर्गों में विभाजित किया जाता है

तत्सम शब्द—वे शब्द जिनका रूप संस्कृत के शब्दों के समान है।
यथा—कृष्ण, कर्म, मित्र।

तद्भव शब्द—वे शब्द जो संस्कृत के शब्दों से विकसित हुए हैं किंतु जिनका रूप बदल गया है। यथा—कान्हा, काम, मीत।

देशज शब्द—वे शब्द जिनके मूल का पता नहीं है। यथा—चूहा, ठेठ तेंदुआ।

विदेशी शब्द—वे शब्द जो विदेशी भाषाओं से आये हैं। यथा—ग्लास, बटन (अंग्रेजी), गरीब, अमीर (फारसी)।

हिंदी शब्दों का उपर्युक्त विभाजन बहुत अधिक तर्कसंगत नहीं है। स्रोत की दृष्टि से हिंदी शब्दों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित करना चाहिए।

(क) परपरागत शब्द।
(ख) निर्मित शब्द।
(ग) आगत शब्द।

५ ९ २ हिंदी के परपरागत शब्द

परपरागत शब्द वे हैं जो किसी भी भाषा को अपने पूर्व रूप से विरासत में मिलते हैं। हिंदी के परपरागत शब्द वे हैं जो उसे प्राकृत-अपभ्रंश के माध्यम से प्राप्त हुए हैं।

(क) तत्सम एव तद्भव शब्द

हिंदी के ये परपरागत शब्द दो प्रकार के हैं। एक तो तत्सम दूसरे तद्भव।

तत् = उस (= संस्कृत), सम = समान। अत तत्सम शब्द वे हैं जो प्राचीन आर्य भाषा (संस्कृत) के समान हैं। जैसे—कृष्ण, कर्म, मित्र आदि। तद्भव शब्द का अर्थ है तत् = उस (संस्कृत) भव = उत्पन्न या विकसित। इस प्रकार तद्भव शब्द वे हैं जो प्राचीन आर्य भाषा (संस्कृत) से विकसित हुए हैं किंतु जिनका रूप बदल गया है। जैसे—कान्हा, काम, मीत। ये शब्द क्रमश कृष्ण, कर्म एव मित्र से विकसित हुए हैं।

(ख) अर्धतत्सम एव अर्धतद्भव शब्द

ऐसे शब्द जो मूल प्राचीन शब्दों से कम परिवर्तित हैं उन्हें प्राय अर्धतत्सम कहा जाता है। जैसे—'कृष्ण' से बना हुआ 'कान्हा' तो तद्भव है किंतु 'कृष्ण' से ही बना 'किशन' 'किसुन' अर्धतत्सम है।

अर्धतद्भव शब्द वे हैं जो तद्भव शब्दों के आधार पर बने हैं। उदाहरणार्थ 'मौसी' शब्द प्राचीन शब्द 'मातृष्वसा' का तद्भव रूप है। 'मौसी'

शब्द के आधार पर मौसा शब्द बना है अत यह अर्ध तद्भव हुआ।

तत्सम एवं तद्भव के मध्य एक अन्य श्रेणी तत्समाभास शब्दों की भी मानी जाती है। ऐसे शब्द जो तत्सम है नहीं किन्तु तत्सम लगते हैं —हैं तत्समाभास कहा जाता है। जैसे—उपरान्त (संस्कृत उपरान्त) औषधि (संस्कृत औषधि)।

ऊपर तत्सम एवं तद्भव शब्दों के जिन भेदों उपभेदों का विवेचन किया गया है वे बहुत अधिक तर्कसंगत नहीं हैं। जो शब्द तत्सम नहीं है वह तद्भव हुआ फिर चाहे उसमें कम परिवर्तन हुआ हो या ज्यादा।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी में तत्सम शब्द प्राय हैं ही नहीं। तत्सम कहे जाने वाले शब्द भी एक प्रकार से तद्भव ही है। हिंदी आधुनिक भाषा है और संस्कृत का समय आज से ढाई-तीन हजार वर्ष पहले का है। समय की इतनी लंबी अवधि के गुजरने के पश्चात भी शब्द ज्यों के त्यों (अपरिवर्तित) रह जाय यह भाषावैज्ञानिक नियमों के अनुकूल नहीं है। प्राचीन आर्य भाषाओं ने परिवर्तित होकर मध्यकालीन आर्य भाषाओं (प्राकृत—अपभ्रंश) का रूप धारण किया। मध्यकालीन आर्य भाषाएं परिवर्तित होकर आधुनिक आर्य भाषाओं (हिंदी एवं अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं) के रूप में विकसित हुई है। इस बीच ध्वनियों का उच्चारण बदला है शब्दों की आकृति बदली है उनका अर्थ बदला है। ऋ ध्वनि प्राचीन काल में स्वर थी हिंदी में इसका उच्चारण 'रि' के समान होता है। ष ध्वनि प्राचीन काल में मूर्धन्य थी हिंदी में उसका उच्चारण तालव्य 'श' के समान होता है। पाणिनि ने न ध्वनि को दन्त्य कहा है किंतु हिंदी में इसका उच्चारण वर्त्स (दांतों के ऊपर का कठोर मांसल भाग) से होता है। संस्कृत में जो शब्द अकारांत (अ स्वर में अंत करने वाले) थे व प्राय हिंदी में व्यंजनांत (व्यंजन में पूरे होने वाले) बन गये हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत के राम फल शब्दों का हिंदी में उच्चारण राम् फल् के समान होता है।

'वास्तव में शब्दों की तत्समता मुख्य रूप से उनके लिखित रूप तक ही सीमित रह गई है। उदाहरणार्थ ऋषि शब्द हिंदी में भी वैसे ही लिखा जाता है जिस प्रकार से संस्कृत में लिखा जाता है किंतु हिंदी में लिखे इस शब्द का उच्चारण 'रिशि' के समान होता है जो इस शब्द के प्राचीन उच्चारण से पूर्ण रूप से भिन्न है।

५ ९ ३ हिंदी के निर्मित शब्द

प्रत्येक विकासशील भाषा में सदव नये शब्द निर्मित होते रहते है। नये शब्दों के निर्माण के यों तो अनेक कारण हो सकते हैं किंतु उनमें से मुख्य कारण दो है। एक तो बढती हुई सास्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति करना, दूसरा, विचारों को अधिकाधिक सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करना। आज हिंदी में ज्ञान विज्ञान से सबद्ध अनेक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो चुका है तथा हो रहा है। पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त भी कई शब्द बन गये है। मच से मचाना, फिल्म से फिल्माना, अभिनय से अभिनीत आदि जैसे बने हुए शब्दों की सख्या काफी बडी है। विचार एव भाव की सूक्ष्मता हेतु नये नये शब्दों के सदर्भ में छायावादी एव प्रयोगवादी साहित्यकारों का उल्लेख किया जा सकता है।

निर्मित शब्दों के भी कई भेद उपभेद हो सकते हैं। मूल की दृष्टि से ये शब्द दो प्रकार के होते है एकमूलीय तथा बहुमूलीय अथवा सकर। एकमूलीय शब्द वे है जिन शब्दों का निर्माण एक ही भाषा के तत्वो से हुआ है। जैसे—दर्शाना (दर्शन से) समाजीकरण (समाज से) राष्ट्रीयकरण (राष्ट्र से)। बहुमूलीय शब्द वे है जो एकसे अधिक भाषाओ के तत्वो को मिलाकर बनाए जाते है। जैसे— रेल मत्री' (रेल—अग्रेजी मत्री—सस्कृत), डाकखाना (डाक—हिंदी खाना—फारसी), डाकबगला (डाक - हिंदी बगला—अग्रेजी)।

कुछ निर्मित शब्द ऐसे भी होते है जो दूसरी भाषाओ से आगत धारणाओ के आधार पर बन जाते है। जैसे—निशस्त्रीकरण (Disarmament), हरित क्राति (Green revolution) शीत युद्ध (Cold war), उपभोक्ता (Consumer) आदि।

५ ९ ४ हिंदी मे आगत शब्द

जो शब्द दूसरी भाषाओ (अथवा बोलियो से) से लिये जाते है उन्हें आगत शब्द' अथवा उधार लिए हुए शब्द कहा जाता है। सामान्य रूप से इन्हीं शब्दों को विदेशी शब्द कहा जाता है। आगत शब्दो को विदेशी कहना उचित नही है क्योंकि नये शब्द केवल विदेशी भाषाओ से ही नही लिए जाते वरन देश की विभिन्न भाषाओ एव बोलियो से भी लिए जाते है।

हिंदी में ऐसे शब्द चार प्रकार के है—

(क) सस्कृत से आये हुए शब्द

(ख) भारतीय भाषाओं से आये हुए शब्द

शब्द के आधार पर जैसा शब्द बना है वह शब्द अब तद्भव हुआ।

तत्सम एवं तद्भव के मध्य एक और भी तत्समाभास शब्द [illegible] माना जाती है। ऐसे शब्द जो तत्सम हैं नहीं किन्तु तत्सम जैसे लगते हैं उन्हें तत्समाभास कहा जाता है। जैसे—[illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible])।

ऊपर तत्सम एवं तद्भव शब्दों के [illegible] का विवेचन किया गया है वह [illegible] नहीं है। जो शब्द तत्सम नहीं है वह तद्भव हुआ फिर चाहे उसमें कम परिवर्तन हुआ हो या ज्यादा।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी में तत्सम शब्द प्राय है ही नहीं। सब के सब [illegible] शब्द भी एक प्रकार से तद्भव ही हैं। हिन्दी आधुनिक भाषा है और संस्कृत का समय आज से ढाई-तीन हजार वर्ष पहले का है। समय का इतना लम्बी अवधि के गुजरने के पश्चात भी शब्द ज्यों के त्यों (अपरिवर्तित) रहें, आज यह भाषावैज्ञानिक नियमों के अनुकूल नहीं है। प्राचीन आर्य भाषाओं ने परिवर्तित होकर मध्यकालीन आर्य भाषाओं (प्राकृत—अपभ्रंश) का रूप धारण किया। मध्यकालीन आर्य भाषाएं परिवर्तित होकर आधुनिक आर्य भाषाओं (हिन्दी एवं अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं) के रूप में विकसित हुई हैं। इस बीच ध्वनियों का उच्चारण बदला है, शब्दों की आकृति बदली है, उनका अर्थ बदला है। 'ऋ' ध्वनि प्राचीन काल में स्वर था, हिन्दी में इसका उच्चारण 'रि' के समान होता है। 'ष' ध्वनि प्राचीन काल में मूर्धन्य थी, हिन्दी में उसका उच्चारण तालव्य 'श' के समान होता है। पाणिनि ने 'ट' ध्वनि को दन्त्य कहा है किन्तु हिन्दी में इसका उच्चारण वर्त्स (दाँतों के ऊपर का कठोर मांसल भाग) से होता है। संस्कृत में जो शब्द अकारान्त (अ स्वर में अन्त होने वाले) थे, वे प्रायः हिन्दी में व्यंजनान्त (व्यंजन में पूरे होने वाले) बन गए हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत के राम, फल शब्दों का हिन्दी में उच्चारण राम्, फल् के समान होता है।

'वास्तव में शब्दों की समानता मुख्य रूप से उनके लिखित रूप तक ही सीमित रह गई है। उदाहरणार्थ 'ऋषि' शब्द हिन्दी में भी वैसे ही लिखा जाता है जिस प्रकार से संस्कृत में लिखा जाता है किन्तु हिन्दी में लिखे इस शब्द का उच्चारण 'रिशि' के समान होता है जो इस शब्द के प्राचीन उच्चारण से पूर्ण रूप से भिन्न है।

५ ९ ३ हिंदी के निर्मित शब्द

प्रत्येक विकासशील भाषा में सदव नये शब्द निर्मित होते रहते हैं। नये शब्दों के निर्माण के या तो अनेक कारण हो सकते हैं किंतु उनमें से मुख्य कारण दो है। एक तो बढ़ती हुई सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति करना, दूसरा, विचारों का अधिकाधिक सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करना। आज हिंदी में ज्ञान विज्ञान से सबद्ध अनेक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो चुका है तथा हो रहा है। पारिभाषिक शब्दों के अतिरिक्त भी कई शब्द बन गये हैं। मच से मचाना, फिल्म से फिल्माना, अभिनय से अभिनीत आदि जसे बने हुए शब्दों की सख्या काफी बढी है। विचार एव भाव की सूक्ष्मता हेतु बने नये शब्दों के सदभ में छायावादी एव प्रयोगवादी साहित्यकारों का उल्लेख किया जा सकता है।

निर्मित शब्दों के भी कई भेद उपभेद हो सकते हैं। मूल की दृष्टि से ये शब्द दो प्रकार के होते हैं एकमूलीय तथा बहुमूलीय अथवा सकर। एकमूलीय शब्द वे हैं जिन शब्दों का निर्माण एक ही भाषा के तत्वों से हुआ है। जसे—दमाना (दमन से) समाजीकरण (समाज से) राष्ट्रीयकरण (राष्ट्र से)। बहुमूलीय शब्द वे हैं जो एकसे अधिक भाषाओं के तत्वों को मिलाकर बनाए जाते हैं। जसे—'रेल मत्री' (रेल—अग्रेजी मत्री—सस्कृत), डाकखाना (डाक—हिंदी खाना—फारसी) डाकबगला (डाक - हिंदी, बगला—अग्रेजी)।

कुछ निर्मित शब्द ऐसे भी होते हैं जो दूसरी भाषाओं से आगत धारणाओं के आधार पर बन जाते हैं। जसे—नि शस्त्रीकरण (Disarmament), हरित क्राति (Green revolution) शीत युद्ध (Cold war), उपभोक्ता (Consumer) आदि।

५ ९ ४ हिंदी में आगत शब्द

जो शब्द दूसरी भाषाओं (अथवा बोलियों से) ले लिये जाते हैं उन्हें आगत शब्द' अथवा उधार लिए हुए शब्द' कहा जाता है। सामान्य रूप से इन्हा शब्दों को 'विदेशी शब्द कहा जाता है। आगत शब्दों को विदेशी कहना उचित नही है क्योंकि नये शब्द केवल विदेशी भाषाओं से ही नही लिए जाते वरन देश की विभिन्न भाषाओं एव बोलियों से भी लिए जाते हैं।

हिंदी में ऐसे शब्द चार प्रकार के हैं—

(क) सस्कृत से आये हुए शब्द

(ख) भारतीय भाषाओं से आये हुए शब्द

(ग) हिंदी की अपनी बोलियों से आये हुए शब्द
(घ) विदेशी भाषाओं से आये हुए शब्द

५.९.४.१ संस्कृत से आगत शब्द

आज हिंदी में अनेक संस्कृत के शब्द (तत्सम एवं तद्भव) प्रयुक्त हो रहे हैं जो प्राकृत-अपभ्रंश से होते हुए हिंदी में नहीं आये हैं। हिंदी ने सीधे संस्कृत से इन शब्दों को उधार ले लिया है। उदाहरण के लिए कृष्ण, धर्म, मित्र को लिया जा सकता है। ये शब्द यदि पालि, प्राकृत से होकर लिए गए होते तो इनका रूप परिवर्तित हो गया होता।

५.९.४.२ भारतीय भाषाओं से आगत शब्द

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा है। उसका प्रयोग विभिन्न प्रान्तों में भी होता है। इसीलिए हिंदी ने प्रान्तीय भाषाओं से कुछ शब्दों को स्थान दे दिया है। यथा—हड़ताल, गरबा (गुजराती) बाड़ू, बाजू (मराठी) रसगुल्ला, उपन्यास, गल्प (बंगला) सिक्ख (पंजाबी)। उपर्युक्त आदि भाषाओं के अतिरिक्त अन्य भाषाओं से भी बहुत से शब्द हिंदी में आ गये हैं। इनमें से कई शब्द तो संस्कृत के माध्यम से हिंदी में आ गये हैं जैसे नीर, चुरुट आदि। कुछ शब्द सीधे हिंदी में आ गये हैं। इनमें से कुछ पुराने शब्द हैं पिल्ला, [illegible] आदि एवं कुछ नये शब्द हैं, डोसा, इडली, सांभर आदि।

५.९.४.३ बोलियों से आगत शब्द

अपनी शब्दावली को समृद्ध करने हेतु हिंदी ने कई शब्द अपनी ग्रामीण बोलियों से भी लिये हैं। शब्दों के आगम का यह कार्य मुख्य रूप से आंचलिक साहित्य के माध्यम से हुआ है। आंचलिक उपन्यासों एवं कहानियों के माध्यम से ग्रामीण बोलियों के बहुत से शब्द साहित्यिक अथवा साधु हिंदी में आ गये हैं।

५.९.४.४ विदेशी आगत शब्द

आगत शब्दों में सबसे महत्वपूर्ण हैं विदेशी शब्द। ऐसे शब्दों में सबसे बड़ी संख्या फारसी अरबी एवं अंग्रेजी शब्दों की है। इनमें से कुछ शब्द तो हिंदी ने सीधे ग्रहण किये हैं एवं कुछ शब्द ऐसे हैं जो अन्य भाषाओं के माध्यम से हिंदी में आये हैं। जैसे तुर्की एवं अरबी के बहुत से शब्द फारसी के माध्यम

से तथा फ्रांसीसी एवं डच भाषाओं के शब्द अंग्रेजी के माध्यम से हिंदी में आये हैं।

नीचे विदेशी भाषाओं से आगत शब्दों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

फारसी, अरबी, तुर्की एवं पश्तो के आगत शब्द

फारसी एवं हिंदी एक ही आर्य उपकुल की भाषाएं हैं, इसलिए उनकी शब्दावली में पर्याप्त समानता है फिर भारत में स्थापित मुसलमानी शासन का राजभाषा फारसी रही इस कारण फारसी के हजारों शब्द हिंदी में आ गये हैं।

यों तो भारत के अरबस्थान एवं तुर्की से प्राचीन काल से व्यापारिक संबंध रहे हैं इस कारण इन भाषाओं के शब्दों का हिंदी में (एवं अन्य भारतीय भाषाओं में) होना आश्चर्य की बात नहीं है किंतु हिंदी में प्रयुक्त अरबी एवं तुर्की के शब्द मुख्य रूप से फारसी के माध्यम से ही आये हैं।

फारसी शब्द—खुश फरिश्ता, तीर कमान कमीज पाजामा दस्त लिफाफा, हल्वा, बुखार, सामान, खुश, तेज।

अरबी—हाकिम अदालत हराम, खानदान किताब कलम ईद, फसल।

तुर्की—उर्दू तोपची, तुर्क खन्जर बहादुर बेगम, बारूद, चाकू, कैंची।

पश्तो—पठान रुहेला, मटरगश्ती गुंडा।

अंग्रेजी से आगत शब्द

अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार प्रसार हुआ। अंग्रेजी न केवल यहां की राजभाषा रही वरन वह कई वर्षों तक यहां की शिक्षा का माध्यम भी रही है। आज भी भारत में उसका महत्व कम नहीं है। ऐसी स्थिति में अंग्रेजी शब्दों का हिंदी में समाजाना स्वाभाविक ही है। आज हजारों अंग्रेजी शब्द हिंदी में प्रयुक्त हो रहे हैं। यथा—इंजन मोटर, ग्लास, रेडियो कोट सूट पिन स्कूल प्रोफेसर आदि। बहुत से शब्दों के उच्चारण में अंतर पड़ गया है। यथा—अस्पताल (हॉस्पिटल), सिगल (सिगनल) लाट (लार्ड) तिजोरी (टेजरी) आदि।

अन्य विदेशी भाषाओं से आगत शब्द

उपर्युक्त भाषाओं के अतिरिक्त, अन्य कई भाषाओं से थोड़े-बहुत शब्द सीधे हिंदी में आये हैं और कुछ शब्द अंग्रेजी के माध्यम से भी आये हैं। यहां थोड़े से उदाहरण दिये जा रहे हैं।

फ्रांसीसी—मास्टर, जज, मेम, पिकनिक।

डच—तुरुप (ताश में), बम (गाड़ी का)

स्पेनी—सिगरट, सिगार कार्ड।

पुर्तगाली—आलमारी कमरा, काजू, पादरी, बोतल।

जर्मन—वगन ट्रेन सेमानार।

इटैलियन—लाटरी, राकेट, कारटून।

जापानी – रिक्श जूडो (कुश्ती)।

अफ्रीकी —ज़ेब्रा।

रूसी – ज़ार, वोदिका, सोवियत स्पूतनिक।

चीनी—चाय।

यदि हिंदी शब्दावली का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाय तो और भी कई भाषाओं के शब्द दिखाई पड़ेंगे।



स्मरण संकेत

५.१ 'हिंदी' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। यथा–हिंदुस्तान का निवासी, हिंदुस्तान की कोई भी भाषा, मध्य देश की भाषा, परिनिष्ठित हिंदी आदि।

५.२ विस्तृत अर्थ में हिंदी का क्षेत्र बिहारी से पंजाबी एवं काश्मीरी से राजस्थानी भाषाओं तक फैला हुआ है। सीमित अर्थ में पूर्वी एवं पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र ही हिंदी का क्षेत्र है।

५.३ हिंदी का उत्पत्ति १०वीं शताब्दी के आस पास हुई। उसके विकास के तीन चरण हैं आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिक काल।

५.४ 'हिंदी' एक भाषा का नाम न होकर कुछ संबद्ध भाषाओं के समूह का नाम है। इस समूह को हिंदी भाषा मंडल कहना चाहिए। इस भाषा मंडल की भाषाएं परस्पर 'सह भाषाएं' हैं।

५.५ राजस्थानी, बिहारी, पहाड़ी के अतिरिक्त हिंदी भाषा मंडल की अन्य भाषाएं हैं साधु हिंदी उर्दू, दक्खिनी, हिंदुस्तानी, पूर्वी एवं पश्चिमी हिंदी।

५.६ पश्चिमी हिंदी की बोलियां ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली खड़ी एवं बांगरू।

५.७ पूर्वी हिंदी की बोलियां अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी।

५.८ अपनी वर्तमान स्थिति में भोजपुरी एक बोली है। भोजपुरी को हिंदी की अपेक्षा बिहारी की बोली मानना ही उचित है।

५.९ शब्दावली किसी भी जाति के सांस्कृतिक विकास की सूचक है। स्रोत अथवा इतिहास की दृष्टि से हिंदी शब्दों के दो वर्ग हैं अज्ञातमूलक एवं ज्ञातमूलक। ज्ञातमूलक शब्द तीन श्रेणियों में विभाजित हो सकते हैं परंपरागत, निर्मित एवं आगत।

६ हिंदी की ध्वन्यात्मक संरचना



वर्णन

- हिंदी की सरचना
- हिंदी की ध्वन्यात्मक सरचना
- खडनीय ध्वनिया
    - —स्वर, स्वर-सयोग
    - —व्यजन, व्यजन द्वित्त एव सयुक्त व्यजन
- खडेतर ध्वनिया
    - —नासिक्यता, मात्रा, आघात, सुर, तान, अतराल

विकास

- हिंदी ध्वनियों का विकास
- हिंदी स्वरो का विकास
    - —प्रा भा आ , म भा आ एव हिंदी के स्वर
    - —स्वरो के विकास की सामान्य प्रवृत्तिया
    - —स्वरो का विकास-स्रोत
- हिंदी व्यजनों का विकास
    - —प्रा भा आ , म भा आ एव हिंदी के व्यजन
    - —व्यजनो के विकास की सामान्य प्रवृत्तिया
    - —व्यजनों का विकास-स्रोत
- खडेतर ध्वनियो का विकास



६ १ हिंदी की सरचना

यह पहले ही बताया जा चुका है कि 'हिंदी' शब्द एक पूरे भाषा-मडल को इगित करता ह । इस भाषा मडल की विभिन्न सह भाषाओं की अपनी-अपनी सरचनाए हैं । यहा 'हिंदी की सरचना, से तात्पय 'साधु हिंदी' अथवा 'परिनिष्ठित हिंदी' की सरचना से ह ।

किसी भी भाषा की सरचना में मुख्य रूप से उसकी ध्वन्यात्मक सरचना एव व्याकरणात्मक सरचना का विवेचन होता है ।

इस अध्याय में हिंदी की ध्वन्यात्मक सरचना का विवेचन किया जा रहा ह । आगामी अध्याय में उसकी व्याकरणात्मक सरचना का विवेचन किया जाएगा ।

६ २ हिंदी की ध्वन्यात्मक सरचना

ध्वन्यात्मक सरचना में ध्वनियों का विवेचन होता ह । ध्वनिया दो प्रकार की होती ह । खडनीय ध्वनिया एव खडेतर ध्वनिया । खडनीय ध्वनिया वे हैं जिनका उच्चारण क्रमश (एक के पश्चात दूसरी) होता है । यथा—'काला' शब्द में क्रमश क + आ + ल + आ ध्वनिया है । ये खडनीय ध्वनिया हैं । स्वर एव व्यजन ध्वनिया खडनीय ध्वनिया होती ह । खडेतर ध्वनियां वे ह जिनका उच्चारण अन्य ध्वनिया के साथ होता है, अर्थात जिनको क्रम से खडित नही किया जा सकता । यथा—'आख' शब्द में नासिक्य ध्वनि का उच्चारण 'आ' स्वर ध्वनि के साथ हुआ ह । 'आ एव नासिक्यता को क्रम से आ + ँ के रूप में विश्लेषित नही किया जा सकता क्योंकि नासिक्यता खडेतर है ।

६ ३ हिंदी की खडनीय ध्वनिया[1] (स्वर-व्यजन)

हिंदी में निम्नलिखित स्वर एव व्यजन ध्वनिया हैं

स्वर[2]

ई		ऊ
इ		उ
ए	अ	ओ
ऐ	आ	औ

व्यजन[3]

क ख ग घ [ङ]
च छ ज झ [ञ]
ट ठ ड ढ ण ड़ ढ़
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व
श स ह

१ यहा पर 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग 'महत्वपूर्ण ध्वनि' अथवा ध्वनिग्राम के अर्थ में किया गया है । ध्वनिग्राम उस ध्वनि (अथवा ध्वनि समष्टि) को कहते हैं, जिसमें अर्थ

[शेष दूसरे पृष्ठ पर]

६ १ हिंदी की सरचना

यह पहले ही बताया जा चुका ह कि 'हिंदी' शब्द एक पूरे भाषा-मडल को इगित करता ह। इस भाषा मडल की विभिन्न सह भाषाओं की अपनी-अपनी सरचनाए हैं। यहा 'हिंदी की सरचना, से तात्पय 'साधु हिंदी' अथवा 'परिनिष्ठित हिंदी' की सरचना से ह।

किसी भी भाषा की सरचना में मुख्य रूप से उसकी ध्व यात्मक सरचना एव व्याकरणात्मक सरचना का विवेचन होता ह।

इस अध्याय में हिंदी की ध्व यात्मक सरचना का विवेचन किया जा रहा ह। आगामी अध्याय में उसकी व्याकरणात्मक सरचना का विवेचन किया जाएगा।

६ २ हिंदी की ध्वन्यात्मक सरचना

ध्व यात्मक सरचना में ध्वनियों का विवेचन होता ह। ध्वनिया दो प्रकार की होती ह। खडनीय ध्वनिया एव खडेतर ध्वनिया। खडनीय ध्वनिया वे हैं जिनका उच्चारण क्रमश (एक के पश्चात दूसरी) होता ह। यथा—'काला' श" में क्रमश क + आ + ल + आ ध्वनिया है। ये खडनीय ध्वनिया हैं। स्वर एव "यजन ध्वनिया खडनीय ध्वनिया होती ह। खडेतर ध्वनियां वे है जिनका उच्चारण अ य ध्वनिया के साथ होता है, अर्थात जिनको क्रम से खडित नही किया जा सकता। यथा—'आख' शब्द में नासिक्य ध्वनि का उच्चारण 'आ' स्वर ध्वनि के साथ हुआ ह। 'आ एव नासिक्यता को क्रम से आ + — के रूप में विश्लेषित नही किया जा सकता क्योकि नासिक्यता खडेतर है।

६ ३ हिंदी की खडनीय ध्वनिया[1] (स्वर-व्यजन)

हिं" में निम्नलिखित स्वर एव "यजन ध्वनिया हैं

स्वर[2]		
ई		ऊ
इ		उ
ए	अ	ओ
ऐ	आ	औ

व्यजन[3]

क	ख	ग	घ	[ङ]		
च	छ	ज	झ	[ञ]		
ट	ठ	ड	ढ	ण	ड़	ढ़
त	थ	द	ध	न		
प	फ	ब	भ	म		
य	र	ल	व			
श	स	ह				

---

१ यहा पर 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग 'महत्वपूर्ण ध्वनि' अथवा ध्वनिग्राम के अर्थ में किया गया है। ध्वनिग्राम उस ध्वनि (अथवा ध्वनि समष्टि) को कहते है, जिसमें अर्थ

[शेष दूसरे पृष्ठ पर]

कुछ विदेशी ध्वनियाँ

उपर्युक्त स्वर एवं व्यंजन ध्वनियों के अतिरिक्त कुछ अन्य ध्वनियों का भी उल्लेख किया जा सकता।

अंग्रेजी शब्दों के यथावत उच्चारण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों की हिंदी में ऑ स्वर ध्वनि दिखाई पड़ती है जो 'डाक्टर' (Doctor) 'कालेज' (College), जैसे शब्दों में देखी जा सकती है।

फारसी-अरबी के अनेक शब्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों के तत्सम वत उच्चारण की प्रवृत्ति के कारण पढ़े लिखे (विशेषकर फारसी उर्दू पढ़े हुए) लोगों की भाषा में 'क़, ख़, ग़, ज़, फ़' पाँच व्यंजन ध्वनियों का प्रयोग होने लगा है। यह प्रयोग, क़लम, क़ाबिल, ख़ाली, ख़ूबी ग़म, बग़ीचा हज़ार, मज़ीर फ़क़, वफ़ादारी जैसे शब्दों में दिखाई पड़ता है। इनमें से 'ज़' एवं 'फ़' का प्रयोग बहुत लोग करते हैं, 'ग़' एवं 'ख़' का प्रयोग थोड़े से लोगों की भाषा में ही मिलता है, बाकी 'क़' का प्रयोग तो कोई बिरला हिंदी भाषी (सो भी अस्वाभाविक सावधानी बरतने के बाद) ही कर सकता है।

उपर्युक्त अंग्रेजी अथवा फारसी ध्वनियों के प्रयोग की प्रवृत्ति तो दिखाई पड़ती है किंतु ये ध्वनियाँ अभी तक महत्वपूर्ण अर्थात् ध्वनिग्राम कहलाने की स्थिति में नहीं हैं। यों इन ध्वनियों के सूचक लिपि चिह्न (जैसे इंगित किया गया है) का प्रयोग लेखन में अवश्य हो रहा है।

कुछ अन्य ध्वनियाँ

कुछ विद्वान उपर्युक्त ध्वनियों के अतिरिक्त 'ड़्ह, न्ह, म्ह, र्ह, ल्ह' आदि ध्वनियों को भी हिंदी की ध्वन्यात्मक संरचना में गिनते हैं। इसके विपरीत कुछ विद्वान इन ध्वनियों को स्वतंत्र व्यंजन ध्वनियाँ न मानकर संयुक्त

भिन्नता उत्पन्न करने का गुण हो। उदाहरणार्थ 'काला' एवं 'खाला' हिंदी में दो भिन्नार्थी शब्द हैं। इन शब्दों की अर्थ भिन्नता का कारण 'क' एवं 'ख' ध्वनियों की भिन्नता है अर्थात् 'क' एवं 'ख' में अर्थ भिन्नता उत्पन्न करने का गुण है, इसलिए 'क' एवं 'ख' हिंदी में दो ध्वनिग्राम अथवा महत्वपूर्ण ध्वनियाँ हैं। जो ध्वनियाँ, ध्वनिग्राम हैं उन्हें दो आड़ी लकीरों / / के मध्य एवं जो ध्वनिग्राम नहीं हैं उन्हें [ ] कोष्ठक के मध्य लिखने की प्रथा है।

२. स्वर वह ध्वनि है, जिसके उच्चारण में भीतर से आती हुई वायु मुख (अथवा मुख तथा नासिका से) निर्बाध रूप से निकलती है।

३. व्यंजन वह ध्वनि है जिसके उच्चारण में भीतर से आती हुई वायु मुख (अथवा उससे पूर्व) में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में बाधित होती है।

व्यजन ध्वनिया मानते ह। यों इनको स्वतत्र व्यजन ध्वनिया मानने के पक्ष में बहुत सबल तक नही ह।

अनुस्वार, विसग एव नासिक्यता

हिंदी की ध्वनि-सरचना में स्वरा के पश्चात दो ध्वनियों—अनुस्वार (ं) एव विसग ( ) की गणना भी की जाता ह। वास्तव में ये स्वर नही ह। विसग ( ) का प्रयोग इने गिने सस्कृत के शब्दा मे ही होता ह एव हिंदी म इसका उच्चारण ह' के समान (किंतु उससे थोडा हल्का) होता है। जैसे—प्राय = प्रायह्॑।[१] अनुस्वार का प्रयोग पाचा नासिक्य व्यजन ध्वनियों (ङ, ञ, ण न, म) के लिए होता ह तथा इसका आधार परवर्ती व्यजन पर रहता ह। जसे गगा, पजा, डडा, फदा, चपा में अनुस्वार क्रमश ङ, ञ, ण न् एव म के लिए प्रयुक्त हुआ ह (गगा = गङ्गा, पजा = पञ्जा, डडा = डण्डा, फदा = फन्दा चपा = चम्पा)।

इसके अतिरिक्त एक ध्वनि 'नासिक्यता' की माननी चाहिए, जिसका प्रयोग स्वरों के साथ होता ह। नासिक्यता का अथ ह भीतर से आई हुई वायु का नासिका के माग से निगमन, जो स्वरों के उच्चारण के समय उनके साथ होता ह।

क्ष, त्र, ज्ञ, ध्वनिया

क्ष, त्र, ज्ञ—देवनागरी लिपि में प्रयुक्त ये लिपि चिह्न सयुक्त व्यजन ध्वनिया को सूचित करते ह। क्ष = क्ष (उच्चारण क्छ), त्र = त्र, ज्ञ = ज्ञ (उच्चारण ग्य)। इसलिए उन्हें स्वतत्र ध्वनियो में नहीं गिनना चाहिए।

ऋ, ष

'ऋ' चिह्न स्वर का सूचक ह किंतु हिंदी में आज-कल इसका उच्चारण 'रि' के बराबर होता ह, जिसमें व्यजन एव स्वर का योग है। 'ष' ध्वनि का उच्चारण हिंदी में नही रह गया है। ष' के स्थान पर भी 'श' का ही उच्चारण होता ह।

६ ३ १ स्वरो का विवेचन एव वर्गीकरण

जीभ को ऊचाई एव स्थान

स्वरों का विवेचन मुख्य रूप से जीभ की ऊचाई (उच्चारण के समय)

---

१ व्यजन ध्वनि के ऊपर ॑ चिह्न उसके हल्के उच्चार को इगित करता है।

एवं जीभ के स्थान (उच्चारण करने वाला जीभ का स्थान) के आधार पर किया जाता है।

जीभ की ऊंचाई की चार मुख्य स्थितियां मानी जाती हैं। संवृत स्थिति—जिसमें जीभ सर्वाधिक ऊंची उठ जाती है। विवृत स्थिति—जिसमें जीभ सर्वाधिक नीचे की स्थिति में होती है। इन दोनों के मध्य अर्धसंवृत (संवृत की स्थिति से थोड़ा नीचे) एवं अर्धविवृत (विवृत की स्थिति से थोड़ा ऊपर) की दो स्थितियां मानी जाती हैं। संवृत की स्थिति में मुख ढका रहता है (उसके मध्य थोड़ा सा स्थान छूटा रहता है) तथा विवृत की स्थिति में मुख खुला रहता है।

जीभ की ऊंचाई की दृष्टि से हिंदी के/ई इ, ऊ, उ/संवृत /ए, ओ/अर्ध संवृत /अ, ऐ, औ/अर्धविवृत एवं/आ/विवृत स्वर हैं।

नवीन पद्धति के अनुसार जीभ की ऊंचाई की निम्नलिखित सात स्थितियां मानी जाती हैं। उच्च निम्नतरउच्च, उच्चतरमध्य मध्य निम्नतरमध्य, उच्चतरनिम्न एवं निम्न। आगे हिंदी स्वरों की दोनों तालिकाएं दी जा रही हैं।

स्थान की दृष्टि से/ई, इ, ए ऐ/अग्र स्वर (इनके उच्चारण में जीभ का अग्र भाग क्रियाशील रहता है)। /अ/मध्य स्वर (इसके उच्चारण में जीभ का मध्य भाग क्रियाशील रहता है) तथा/ऊ उ, ओ औ/पश्च स्वर (इनके उच्चारण में जीभ का पश्च या पिछला भाग क्रियाशील रहता है) हैं।

होठों की स्थिति

स्वरों के उच्चारण में होंठों की स्थिति का भी महत्व है। हिंदी के/ई इ, ए ऐ अ/अवृत्ताकार स्वर हैं, अर्थात इन स्वरों के उच्चारण में होंठ या तो फैले रहते हैं (जैसे—'ई' के उच्चारण में) या वृत्ताकार नहीं बनते (जैसे अ' के उच्चारण में)। /ऊ, उ, ओ, औ/वृत्ताकार स्वर हैं अर्थात इन स्वरों के उच्चारण में होंठ थोड़े बहुत वृत्ताकार होते हैं।

मात्रा

मात्रा अथवा उच्चारण के समय की दृष्टि से हिंदी स्वर दो प्रकार के हैं। एक तो ह्रस्व स्वर, दूसरे दीर्घ स्वर। ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है, दीर्घ स्वर के उच्चारण में उससे ज्यादा समय लगता है। यों इस आधार पर स्वरों के कई भेद हो सकते हैं (यथा—ह्रस्व, अति ह्रस्व दीर्घ, दीर्घतर, अतिदीर्घ आदि) किंतु मुख्य भेद दो ही हैं।

नासिक्यता

हिंदी के समस्त स्वर मौखिक (जब वायु केवल मुख से निकले) भी हैं तथा अनुनासिक भी (जब वायु मुख के अतिरिक्त नासिका से भी बाहर निकले)। हिंदी में नासिक्यता महत्त्वपूर्ण है अर्थात नासिक्यता के कारण अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यथा—'काटा' एवं 'काँटा'। यहाँ और सब ध्वनियाँ दोनों शब्दों में समान हैं केवल नासिक्यता का अंतर है, जिसके कारण दोनों शब्दों के अर्थ में भिन्नता उत्पन्न हो गयी है।

सध्यता

सध्यता की दृष्टि से हिंदी के समस्त स्वर (ऐ औ) के सिवाय असंध्य अथवा एकल स्वर (Simple Vowels) हैं। 'ऐ, औ' का उच्चारण कुछ स्थितियों में 'एकल' तथा कुछ स्थितियों में, सध्यक्षर जैसा होता है। जैसे—'है' एवं 'औरत' शब्दों में '-ऐ' एवं 'औ' का उच्चारण एकल स्वरों जैसा है किंतु 'गवैया' एवं 'कौआ' शब्दों में इनका उच्चारण सध्यक्षर (अइ अउ) के समान है।[1]

६ ३ २ स्वर-सयोग

जब एक से अधिक स्वर मध्य के किसी व्यजन के सिवाय प्रयुक्त होते हैं तो स्वरों की इस स्थिति को 'स्वर सयोग' की संज्ञा दी जाती है। यथा—'भाई' शब्द में आ + ई (भ् + आ + ई) का स्वर-सयोग है। हिंदी में प्राय दो स्वरों के ही सयोग मिलते हैं। थोड़े से उदाहरण तीन स्वरों के सयोग के भी मिलते हैं। यथा—'आइए' (आ + इ + ए)। हिंदी में कुछ स्वर सयोगों के मध्य 'य' अथवा 'व' का समावेश हो जाता है। स्वरों के मध्य प्रयुक्त इन ध्वनियों को 'श्रुति' कहा जाता है। एक स्वर के उच्चारण के पश्चात् जीभ जब दूसरे स्वर के उच्चारण के लिए प्रयत्नशील होती है, तब उससे पूर्व श्रुति का आविर्भाव होता है। यथा—'लिया' शब्द में 'इ' एवं 'आ' स्वरों के मध्य 'य' श्रुति है तथा 'खाना' शब्द में अ एवं आ स्वरों के मध्य 'व' श्रुति है।

---

१ असध्य अथवा एकल स्वरों का उच्चारण एक ही प्रयत्न एव एक ही स्थान से होता है। सध्यक्षरों का उच्चारण दो स्थानों से होता है। एक स्थान से उच्चारण आरभ होता है एव दूसरे स्थान पर पूरा होता है।

हिंदी स्वरों की तालिकाएं (जीभ की ऊंचाई एवं स्थान)

तालिका—१

स्थान→ ऊंचाई ↓	अग्र	मध्य	पश्च
संवृत	ई इ		ऊ, उ
अर्ध-संवृत	ए		ओ
अर्धविवृत	ऐ		औ
विवृत		अ	आ

तालिका—२

स्थान→ ऊंचाई ↓	अग्र	मध्य	पश्च
उच्च	ई		ऊ
निम्नतर उच्च	इ		उ
उच्चतर मध्य	ए		ओ
मध्य			
निम्नतर मध्य		अ	औ
उच्चतर निम्न			
निम्न			आ

६ ३ ३ व्यंजनों का विवेचन एवं वर्गीकरण

व्यंजनों के विवेचन में जिन दो मुख्य बातों का उल्लेख किया जाता है, हैं 'स्थान' (जहां पर भीतर से आती हुई वायु बाधित होती है) तथा 'प्रयत्न' (उत्पन्न की हुई बाधा)।

स्थान की दृष्टि से व्यंजन ध्वनियां

प्राचीन वैयाकरणों ने स्थान की दृष्टि से हिंदी व्यंजन ध्वनियों को निम्नलिखित पांच भागों में विभाजित किया है।

ओष्ठ्य—(होठों से उच्चरित) यथा—प, ब।

दंत्य—(दांतों से उच्चरित) यथा—त, द।

मूर्धन्य—(मुख के ऊपरी ऊंचे भाग, मूर्धा से उच्चरित) यथा—ट, ड।

तालव्य—(तालु से उच्चरित) यथा—च, ज।

कंठ्य—(कंठ से उच्चरित) यथा—क, ग।

आधुनिक भाषा शास्त्री उपर्युक्त पाच स्थानो के अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों का भी उल्लेख करते हैं।

दतोष्ठ्य–(निचले होंठ एव ऊपर के दात की सहायता से उच्चरित) यथा–व

वर्त्स्य–(ऊपर के दाता के पीछे उभरे हुए कठोर मास वत्स से उच्चरित) यथा—न।

जिह्वामूलीय–(कठ के निचले भाग अथवा जीभ के मूल से उच्चरित) यथा–क़।

स्वरयत्र मुखी–(स्वरयत्र से उच्चरित) यथा—ह।

प्रयत्न की दृष्टि से हिंदी व्यजन

प्रयत्न की दृष्टि से हिंदी व्यजनो के निम्नलिखित प्रकार ह।

स्पर्शी—इन ध्वनियों के उच्चारणण में जीभ मुख के भीतर किसी स्थान को स्पश कर भीतर से आती हुई वायु का पूण रूप से अवरोध करती है तथा फिर एकदम हट जाती ह। इन ध्वनियो को 'स्फोटक' ध्वनिया भी कहते हैं क्योकि इनके उच्चारण में एक प्रकार का स्फोट होता है। यथा—क, ड, प आदि।

सघर्षी—इन ध्वनिया के उच्चारण में जीभ मुख में इतना सकरा मार्ग बनाती है कि भीतर से आता हुई वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलतीह। यथा—स, श।

स्पर्श सघर्षी—इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ पहले तो मुख में किसी स्थान को स्पश करती ह (जिससे भीतर से आती हुई वायु का पूर्ण अवरोध होता है) फिर धीरे धीरे हटती है (जिससे वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलती है)। इस प्रकार इन ध्वनियो के उच्चारण में स्पर्शी एव सघर्षी ध्वनियो का प्रयत्न सम्मिलित ह। यथा—च, छ,।

नासिक्य—इन ध्वनियों का उच्चारण स्पर्शी ध्वनियो जैसा ही होता है, अतर केवल इतना ह कि भीतर से आती हुई वायु केवल मुख से न निकलकर, मुख एव नासिका से बाहर निकलती ह। यथा—म, न।

पार्श्विक—इन ध्वनिया के उच्चारण में जीभ मुख में मध्य भाग को रोक लेती है इसलिए भीतर से आती हुई वायु जीभ के दोनो ओर से निकल जाती ह यथा–ल।

उत्क्षिप्त— इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ मुख के किसी भाग को छूकर, झटके से रगड खाकर रह जाती ह। यथा—ड़, ढ़।

प्रकपी–इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ मुख के अदर किसी भाग को शीघ्रता से बार-बार छूती ह। जिससे ध्वनि कपित होकर बाहर निकलती है। यथा—र।

अर्ध व्यजन—इनका उच्चारण स्वर एव व्यजन के मध्य का है, अर्थात इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु न तो स्वर के समान निर्बाध गति से बाहर निकलती ह और न ही व्यजन के समान बाधित होती है। यथा—य, व।

घोषत्व एवं प्राणत्व

स्थान एवं प्रयत्न के अतिरिक्त घोषत्व एवं प्राणत्व के आधार पर भी व्यंजनों का विवेचन किया जाता है। जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वर-तंत्री की डोरें (टेंटुए व पीठ के भाग में लगे हुए झिल्लीदार पट) झंकृत होती हैं, वे सघोष अथवा घोष ध्वनियाँ कहलाती हैं तथा जिन ध्वनियों के उच्चारण में ये डोरें झंकृत नहीं होतीं वे अघोष ध्वनियाँ कहलाती हैं। स्वर ध्वनियाँ प्रायः सघोष होती हैं (हिन्दी के समस्त स्वर सघोष हैं)। हिन्दी में प्रत्येक वर्ग की पहली एवं दूसरी ध्वनि (यथा—क, ख, च, छ आदि) अघोष तथा प्रत्येक वर्ग की शेष तीन ध्वनियाँ (ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, आदि) सघोष हैं।

'प्राण' का अर्थ है भीतर से आती हुई वायु जिसके फलस्वरूप ध्वनियों का उच्चारण होता है। जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में वायु का विशेष दबाव नहीं पड़ता उन्हें 'अल्प प्राण' कहते हैं तथा जिन ध्वनियों के उच्चारण में वायु की अतिरिक्त फूंक मारनी पड़ती है उन्हें महाप्राण कहते हैं। हिंदी में प्रत्येक वर्ग की दूसरी तथा चौथी ध्वनि (यथा—ख, घ, [illegible] आदि) महाप्राण तथा प्रत्येक वर्ग की शेष तीन ध्वनियाँ (यथा—क, ग, ङ, च, ज, ञ आदि) अल्पप्राण हैं।

६.२.४ व्यंजन द्वित्त एवं संयुक्त व्यंजन

जब सामान्य की अपेक्षा किसी व्यंजन को अधिक समय तक उच्चरित किया जाता है (एक प्रकार से व्यंजन को दुहरा दिया जाता है) तब उसे व्यंजन द्वित्त अथवा व्यंजन दीर्घीकरण कहते हैं। यथा—'पता एवं पत्ता'। पहले शब्द में /त/ का साधारण अथवा इकहरा उच्चारण है किंतु दूसरे शब्द में /त/ का दीर्घ अथवा दुहरा उच्चारण है। हिंदी में व्यंजन द्वित्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे अर्थ में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। जैसे—'पता एवं पत्ता' भिन्न अर्थ रखते हैं।

जब भिन्न प्रकार के व्यंजन, स्वर के बिना एक साथ प्रयुक्त होते हैं तब उन्हें संयुक्त व्यंजन कहते हैं। यथा—'क्या, क्रांति, प्यार', 'भ्रांति' में क्रमशः क्य, क्र, प्य, भ्र संयुक्त व्यंजन हैं। संयुक्त व्यंजन अर्थात् व्यंजन-गुच्छ तीन, चार, पांच व्यंजनों के भी हो सकते हैं। संस्कृत में संयुक्त व्यंजनों की संख्या अधिक थी। संस्कृत में तीन, चार कभी-कभी पांच व्यंजनों के गुच्छ भी मिल जाते हैं। हिंदी में प्रायः दो एवं तीन व्यंजनों के गुच्छ ही मिलते हैं। तीन व्यंजन गुच्छ का उदाहरण है 'स्वास्थ्य' (-स + थ + य्) तथा चार व्यंजन-गुच्छ का उदाहरण है 'वर्त्स्य' (र + त + स् + य-)।

हिंदी व्यंजनों की तालिकाएं

नीचे व्यंजनों की तालिकाएं दी जा रही । तालिका—१ में प्राचीन पद्धतियों के अनुसार ध्वनियों को दिखाया गया है। तालिका—२ आधुनिक पद्धति पर आधारित है। तालिका—२ में ऐसी ध्वनियों को [ ] कोष्ठक में दिखाया गया है जो अभी निश्चित रूप से ध्वनिग्राम नहीं है।

अघ = अघोष, सघ = सघोष, अ = अल्पप्राण, म = महाप्राण।

तालिका—१

प्रयत्न→	स्पर्शी				संघर्षी				नासिक्य				पार्श्विक				प्रकंपी				अर्धव्यंजन			
	अघ		सघ		अघ		सघ		अघ		सघ		अघ		सघ		अघ		सघ		अघ		सघ	
स्थान ↓	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म	अ	म
ओष्ठ्य	प	फ्	[illegible]	भ							म												व्	
दंत्य	त	थ्	द्	ध	स						न्				ल्									
मूर्धन्य	ट	ठ	ड	ढ्							ण्				र्									
तालव्य	च	छ	[illegible]	झ	श्						ञ्												य्	
कंठ्य	क	ख्	ग्	घ	ष्		ह				ङ्													

तालिका—१

प्रयत्न →	स्पर्श		संघर्षी		स्पर्श संघर्षी		नासिक्य		पार्श्विक		उत्क्षिप्त		प्रकंपी		अर्ध व्यंजन	
	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ
स्थान ↓	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म
ओष्ठ्य	प् फ	ब भ						म् [म्ह]								व
दंतोष्ठ्य			[फ़]	[व़]												
दंत्य	त् थ	द ध्														
वर्त्स्य			स	[ज़]				न [न्ह]		ल [ल्ह]				र् [र्ह]		
मूर्धन्य	ट ठ	ड ढ						ण [ण्ह]				ड़ ढ़				
तालव्य			श		च् छ	ज् झ		[ञ]								य्
कंठ्य	क ख	ग घ	[ख़]	[ग़]				[ङ] [ङह]								
जिह्वामूलीय	[क़]															
स्वरयंत्रमुखी				ह्												

६ ४ हिंदी की खडेतर ध्वनिया (अथवा अधिखडात्मक अभि-लक्षण)

यह पहले ही बताया जा चुका है कि खडेतर ध्वनिया स तात्पय ऐसा ध्वनियो से है जो क्रमश खडित नही हो सकती, अर्थात जिनका उच्चारण अन्य ध्वनियों के साथ होता है। इसी से ऐसी ध्वनिया का प्राय ध्वनिया न कहकर 'ध्वनि गुण' या 'ध्वनि का सगीतात्मक गुण' कहा जाता है। इन्हें 'अधिखडात्मक अभिलक्षण' भी कहा जाता है। खडेतर ध्वनियो के अतगत नासिक्यता मात्रा, अघात, सुर, तान, अतराल आदि विशेषताओं का विवेचन किया जाता है।

नासिक्यता

नासिक्यता का सबध स्वरा से है। हिंदी में नासिक्यता महत्वपूण है। हिंदी स्वरों के विवेचन में नासिक्यता का वणन कर दिया गया है।

मात्रा

'मात्रा' से तात्पय ध्वनि के उच्चारण में लगने वाले समय से है। हिंदी ध्वनियो में मात्रा महत्वपूण है। इस मात्रा के आधार पर ही स्वरा के ह्रस्व एव दीघ भेद किये गये हैं (हिंदी के ह्रस्व एव दीघ स्वरा में मात्रा के अतिरिक्त उच्चारण स्थान का भी अतर है)। इसी मात्रा के आधार पर 'व्यजन द्वित्व' की रचना होती है। 'पता' एव 'पत्ता' शब्दा की अथ भिन्नता का कारण 'त' की मात्रा ही तो है। 'पता' की अपेक्षा 'पत्ता' में 'त' का उच्चारण अधिक दीघ है।

आघात

'आघात' (Accent) से तात्पय प्रभाव अथवा दबाव से है। यह प्रभाव दो प्रकार का है। एक तो ध्वनि के उच्चारण में लगाया हुआ बल जिसे 'बलाघात' (Stress) कहते है, तथा दूसरा ध्वनि—उच्चारण के समय स्वरतत्री में उत्पन्न कपन की गति, जिसे 'स्वराघात' (Pitch accent) कहते हैं।

यो तो प्रत्यक ध्वनि के उच्चारण में कुछ न कुछ बल लगता ही है तथा प्रत्येक सघोष ध्वनि के उच्चारण में स्वराघात होता ही है किंतु आघात तब महत्वपूण कहा जाता है जब उसमें अथ-भिन्नता उत्पन्न करने का गुण हो।

हिंदी में ध्वनि के स्तर पर तो आघात का कोई महत्व नही है। शब्द के स्तर पर कभी-कभी उसका प्रयोग किया जाता है किंतु उससे अथ में कोई

तालिका—२

प्रयत्न →	स्पर्श		संघर्षी		स्पर्श संघर्षी		नासिक्य		पार्श्विक		उत्क्षिप्त		प्रकंपी		अर्धस्वर	
	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ	अघ	सघ
स्थान ↓	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म	अ म
औष्ठ्य	प फ	ब भ						म् [म्ह]								व
दंतोष्ठ्य			[फ़]	[व़]												
दंत्य	त् थ	द् ध्														
वर्त्स्य			स	[ज़]				न [न्ह]		ल [ल्ह]				र [रह]		
मूर्धन्य	ट ठ	ड ढ						ण [ण्ह]				ड़ ढ़				
तालव्य			श		च छ	ज् झ		[ञ]								य्
कंठ्य	क ख	ग घ	[ख़]	[ग़]				[ङ] [ङ्ह]								
जिह्वामूलीय	[क़]															
स्वरयंत्रमुखी				ह												

६ ४ हिंदी की खडेतर ध्वनिया (अथवा अखिडात्मक अभिलक्षण)

यह पहले ही बताया जा चुका ह कि खडतर ध्वनिया स तात्पर्य एसी ध्वनिया से ह जो क्रमश खडित नही हो सकती अर्थात जिनका उच्चारण अन्य ध्वनियों के साथ होता है। इसी से ऐसी ध्वनिया को प्राय ध्वनिया न कहकर 'ध्वनि गुण या ध्वनि का सगीतात्मक गुण' कहा जाता ह। इन्हें अखिलडात्मक अभिलक्षण' भी कहा जाता है। खडतर ध्वनिया मे अतगत नासिक्यता मात्रा, अघात, सुर, तान, अतराल आदि विशेषताओं का विवचन किया जाता ह।

नासिक्यता

नासिक्यता का सबध स्वरो से ह। हिंदी में नासिक्यता महत्वपूण ह। हिंदी स्वरो के विवचन में नासिक्यता का वणन कर दिया गया ह।

मात्रा

मात्रा' से तात्पय ध्वनि के उच्चारण में लगने वाले समय से है। हिंदी ध्वनिया में मात्रा महत्वपूण ह। इस मात्रा के आधार पर ही स्वरो के ह्रस्व एव दीघ भेद किये गय हैं (हिंदी के ह्रस्व एव दीघ स्वरों में मात्रा के अतिरिक्त उच्चारण स्थान का भी अतर ह)। इसी मात्रा के आधार पर 'व्यजन द्वित' की रचना होती ह। पता' एव पत्ता शब्दा की अथ भिन्नता का कारण 'त्' की मात्रा ही तो ह। 'पता की अपेक्षा 'पत्ता में त का उच्चारण अधिक दीघ ह।

आघात

'आघात' (Accent) से तात्पय प्रभाव अथवा दबाव से ह। यह प्रभाव दो प्रकार का ह। एक तो ध्वनि के उच्चारण में लगाया हुआ बल जिसे बलाघात' (Stress) कहते ह तथा दूसरा ध्वनि—उच्चारण के समय स्वरतत्री में उत्पन्न कंपन की गति जिसे स्वराघात (Pitch accent) कहत ह।

या तो प्रत्यक ध्वनि के उच्चारण में कुछ न कुछ बल लगता ही ह तथा प्रत्येक सघोष ध्वनि के उच्चारण में स्वराघात होता ही ह किंतु आघात तव मह वपूण कहा जाता ह जब उसमें अर्थ भिन्नता उत्पन्न करन का गुण हो।

हिंदी में ध्वनि के स्तर पर तो आघात का कोइ महत्व नही ह। शब्द के स्तर पर कभी-कभी उसका प्रयोग किया जाता है किंतु उससे अथ में कोई

विशेष भिन्नता नही आती। इसीसे कई विद्वान ऐसा मानते हैं कि हिन्दी में आघात महत्वपूर्ण नहीं है।

सुर एवं तान

'सुर' (Pitch) का संबंध स्वरतंत्री के कंपन से है। जब यह कंपन तीव्रगति से होता है तो ध्वनि ऊंचे सुर में सुनाई पड़ती है तथा जब यह कंपन मंद रहता है तो ध्वनि नीचे सुर में सुनाई पड़ती है। सुरों का महत्व केवल संगीत में ही नहीं है, कथन में भी है। पूरे शब्द अथवा पूरे वाक्य के सुरों के समष्टि रूप को अनुतान (Intonation) कहा जाता है। प्रत्येक भाषा में सुर एवं अनुतान का महत्व रहता है। जब कोई अहिंदी भाषी हिन्दी बोलता है तब स्वर एवं व्यंजन के सही होने पर सुर एवं अनुतान की भिन्नता के कारण यह समझने में देर नहीं लगती कि वह हिंदी भाषी नहीं है (अपवादों को छोड़कर)। हिंदी में भी सुर एवं अनुतान महत्वपूर्ण है (विशेषकर वाक्य के स्तर पर)। अनुतान के बदल जाने से एक ही वाक्य के भिन्न भिन्न अर्थ निकल सकते हैं।

'मैं घर जाऊंगा

'मैं घर जाऊंगा ?'

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में स्वर एवं व्यंजन ध्वनियां समान हैं किंतु सुर एवं अनुतान के बदल जाने से प्रथम वाक्य का सामान्य कथन दूसरे वाक्य में प्रश्न वाचक या नकारात्मक बन गया है (पहले वाक्य में घर जाने का स्वीकारात्मक कथन है किंतु दूसरे वाक्य का भाव यह है कि घर जाने की बात पूछी जा रही है अथवा यह कहा जा रहा है कि मैं घर नहीं जाऊंगा)।

'तान' (Tone) एक प्रकार से सुर का समानार्थी है। जब किसी शब्द का सुर बदलने से उस शब्द का अर्थ बदल जाय तब उस सुर को प्रायः तान कहा जाता है। हिंदी में तान महत्वपूर्ण नहीं है। पंजाबी में तान महत्वपूर्ण है। जिन भाषाओं में तान महत्वपूर्ण रहती है, उन्हें 'तान भाषाएं' कहते हैं।

अंतराल

अंतराल (Juncture) से तात्पर्य है उच्चारण के मध्य का मौन अथवा विराम। इसे 'संहिता' अथवा संगम भी कहते हैं। अंतराल मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है। दो ध्वनियों अथवा अक्षरों के मध्य का अंतराल, दो शब्दों के मध्य का अंतराल तथा वाक्य के अंत का अंतराल। वाक्य के अंत में रहनेवाले अंतराल को प्रायः अंतराल नहीं कहा जाता। दो ध्वनियों के मध्य

डनेवाले सहज अंतराल को 'बंद अंतराल' (Close Juncture) कहते हैं। भाषा विश्लेषण में इस अंतराल को दिखलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए हिंदी के 'काला' एवं 'कान' शब्दों को लिया जा सकता है। दोनों शब्दों में 'का —के पश्चात थोड़ा सा अंतराल पड़ता है। यह बंद अंतराल है। यह अंतराल जो अर्थ की भिन्नता उत्पन्न कर देता है, उसे खुला अंतराल (Open Juncture) कहते हैं। खुला अंतराल ' + ' चिह्न से इंगित किया जाता है। जैसे—'दो + दो आना' (= दो आने दो)।
'दो दो + आना।' (= प्रत्येक वस्तु का दाम दो आना)। अंतराल के स्थान परिवर्तित हो जाने के कारण एक ही वाक्य के दो भिन्न अर्थ निकलते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण में खुला अंतराल दो शब्दों के मध्य आया है। यहां एक उदाहरण दिया जा रहा है जहां यह अंतराल एक ही शब्द में घटित हुआ है।

'कलिका' (= कली)।

कलि + का (= कलयुग का)।

६.५ हिंदी ध्वनियों का विकास

भारतीय आर्य भाषाओं के विकास के तीन चरण हैं—प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (प्रा भा आ) काल, मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (म भा आ) काल एवं आधुनिक भारतीय आर्य भाषा (आ भा आ) काल। हिंदी आधुनिक काल की भाषा है, अतः हिंदी ध्वनियों के विकास-क्रम का सूत्र म भा आ से होकर प्रा भा आ तक जा पहुँचता है।

प्रा भा आ की प्रमाणित सामग्री का एक प्रकार से अभाव है, इसलिए उस काल की भाषा के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए उस काल की साधु भाषा अर्थात संस्कृत का ही उल्लेख किया जाता है।

यदि प्रा भा आ से आ भा आ तक की इस अवधि में कोई मुख्य भाषायी परिवर्तन न हुआ होता तो हिंदी की प्रत्येक ध्वनि का विकास अपनी समानांतर प्रा भा आ की ध्वनि (यथा—हिंदी अ < संस्कृत अ) से ही हुआ होता किंतु इस अवधि के बीच अनेक भाषायी परिवर्तन हुए हैं जिनके फलस्वरूप प्रत्येक हिंदी ध्वनि के विकास के अनेक स्रोत दिखलाई पड़ते हैं।

हिंदी ध्वनियों के विकास में केवल उन्हीं ध्वनियों की चर्चा की गयी है जो महत्वपूर्ण (अर्थात ध्वनिग्राम) हैं। अंग्रेजी शब्दों के प्रभाव से आगत स्वर ध्वनि 'ऑ' तथा अरबी-फारसी शब्दों के माध्यम से आगत व्यंजन ध्वनियां

'क़, ख़, ग़, ज़, फ़' की चर्चा नही की गयी है क्योंकि ये ध्वनियां अभी तक ध्वनिग्राम नहीं बनी ह।

६ ६ हिंदी स्वरो का विकास

हिंदी स्वरा का विकास-सूत्र, मुख्य रूप से मध्य भारतीय आर्य भाषा (म भा आ) के माध्यम से प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (प्रा भा आ) स जुडा हुआ है। इसलिए हिन्दी स्वरों के विकास-स्रोत की चर्चा से पूव प्रा भा आ, म भा आ तथा हिन्दी के स्वरों की सामान्य तुलनात्मक जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक ह।

६ ६ १ प्रा भा आ , म भा आ एव हिंदी के स्वर

ऐसा समझा जाता ह कि वैदिक भाषा में अ, आ, इ ई, उ ऊ, ऋ, ॠ लृ स्वतन्त्र स्वर, ए, ओ, ऐ औ सध्यक्षर थे। इसके अतिरिक्त विसग ( ) तथा य, व, का स्वरवत प्रयोग होता था। संस्कृत तक पहुचते-पहुचते लृ का प्रयोग समाप्त हो गया। य, व, का प्रयोग स्वरवत कम हो गया। ए ओ के उच्चारण में परिवतन हो गया एव उनका स्वरूप स्वतन्त्र स्वर-सा बन गया। इस प्रकार संस्कृत में अ आ इ ई उ ऊ ए, ओ ऋ, ॠ स्वतन्त्र स्वर तथा ऐ, औ, सध्यक्षर थे। इसके सिवाय विसग का प्रयोग भी होता था।

मध्यकालीन आयभाषाओ पालि प्राकृत में ऋ ॠ का प्रयोग नही रहा साथ ही सध्यक्षर ऐ औ भी स्वतन्त्र बन कर ए ओ में विकसित हो गये। विसर्ग का प्रयोग भी समाप्त-सा हो गया। मध्यकाल की भाषा में दो नवीन स्वर ध्वनियो का विकास हुआ वे थी ह्रस्व ऍ एव ह्रस्व 'ऒ'। इस प्रकार मध्यकाल की आयभाषाओ (पालि प्राकृत) में केवल १० स्वतन्त्र स्वर रह गये, जो थे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऍ ए ऒ, ओ।

जहा तक हिंदी का सबध है हिंदी में मध्यकाल की ये समस्त स्वर ध्वनिया प्रयुक्त होती ह किन्तु उनमे स ह्रस्व ऍ ऒ का प्रयोग बोलियों तक ही सीमित ह। साधु हिंदी में यदि उनका उच्चारण होता भी ह तो वह महत्वपूण अर्थात ध्वनिग्रामिक नही है। इसी से देवनागरी में इन ह्रस्व ध्वनियो को इगित करने के लिए लिपि चिह्न भी नही ह। हिंदी में इन स्वर ध्वनियो के अतिरिक्त 'ऐ, औ सध्यक्ष स्वर ध्वनियो का विकास हुआ ह (इन ध्वनियों का उच्चारण भी अब प्राय स्वतन्त्र ध्वनियो क समान होता है)। इस प्रकार साधु हिंदी में

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वर ध्वनियां हैं, जो सब की सब स्वतंत्र स्वर ध्वनियां हैं। हिंदी में विसर्ग का प्रयोग स्वरवत नहीं रहा।

स्वर-संयोगों की दृष्टि से देखा जाय तो संस्कृत में उनका अभाव-सा है। मध्यकाल की भाषाओं—पालि प्राकृत में स्वर-संयोग बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। हिंदी तक आते-आते इनकी संख्या कुछ कम हुई है, फिर भी हिंदी में स्वर-संयोग पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं।

६ ६ २ स्वरों के विकास की सामान्य प्रवृत्तियां

हिंदी स्वरों की प्रा भा आ (अथवा संस्कृत) के स्वरों से तुलना करने पर उनके परिवर्तन की निम्नलिखित सामान्य प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं।

(क) स्वरों का सुरक्षित रहना

प्रा भा आ के एकल या स्वतंत्र स्वर अ, इ, उ, हिंदी में भी सुरक्षित रहे हैं।

(ख) उच्चारण में परिवर्तन

संस्कृत में अ आ, इ ई, उ ऊ, स्वर युग्मों में केवल मात्रा (ह्रस्व एवं दीर्घ) का ही अंतर था किंतु हिंदी में इनके मध्य, उच्चारण-स्थान का अंतर भी आ गया है। 'अ' हिंदी में मध्य एवं अर्ध विवृत है किंतु 'आ' पश्च एवं विवृत है।

उच्चारण की दृष्टि से सब से बड़ा अंतर सध्यक्षर या संयुक्त स्वरों में हुआ है। पाणिनी ने ए, ओ, ऐ औ, को सध्यक्षर माना है किंतु हिंदी ए, ओ का उच्चारण एकल अथवा स्वतंत्र स्वर सा होता है। संस्कृत में इनका उच्चारण 'अइ', 'अउ' जैसा था। वैसे ही संस्कृत में ऐ, औ, का उच्चारण क्रमशः 'आइ', 'आउ' होता था किंतु हिंदी में इनका उच्चारण अइ, 'अउ' के समान होता है (हिंदी में तो ये स्वर भी स्वतंत्र हो चले हैं)।

(ग) वितरण में परिवर्तन

संस्कृत में स्वर-संयोग न के बराबर थे अर्थात बिना व्यंजन के स्वर एक साथ प्रयुक्त नहीं होते थे किंतु हिंदी में स्वर-संयोगों की अच्छी संख्या है।

(घ) स्वर लोप

संस्कृत में ऋ, ॠ, लृ का स्वरों के अंतर्गत उल्लेख किया गया है। यों लृ का प्रयोग तो संस्कृत में भी सीमित था। हिंदी में लृ का तो प्रयोग ही नहीं

होता, ऋ का प्रयोग भी स्वर के समान नहीं होता। उसका उच्चारण 'रि' के समान होता है जो पूरा अक्षर है (र + इ)। इसके दीर्घ रूप ॠ का प्रयोग हिंदी में नहीं होता।

६ ६ ३ स्वरों का विकास-स्रोत

नीचे हिंदी स्वरों का विकास दिखाया जा रहा है। विकास क्रम को दर्शाने के लिए हिंदी स्वरों को लिखकर उनके सामने संस्कृत की स्रोत ध्वनियों का निर्देश कर दिया गया है। उदाहरण में मध्यकाल की भाषा का संकेत कर विकास के तीनों चरणों (प्राचीन काल, मध्य काल एवं आधुनिक काल) को प्रस्तुत किया गया है। '<' चिह्न विकास की दिशा का निर्देश करता है।

हिंदी स्वर	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	उदाहरण हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	अ	गदहा, गधा	<गद्दहो	<गर्दभ
	आ	अहीर	<अहीर	<आभीर
	इ	बहेड़ा	<बहेडअ	<बिभीतक
	ई	परख	<परिक्खा	<परीक्षा
अ	< उ	अगर	<अगरु	<अगुरु
	ऊ	जत्था		<यूथ + क
	ए	अरंड	<एरंड	<एरंड
	ओ	सहजन (एक पेड़)		<शोभांजन
	ऋ	बड़ा	<बड्डअ	<वृद्धक
	आ	साग	<साग	<शाक
	अ	चक्का	<चक्क	<चक्र
आ	< अ + क	घोड़ा	<घोडअ	<घोटक
	ऋ	नाच	<णच्च	<नृत्य
	इ	गाभिन	<गब्भिनी	<गर्भिणी
	अ	पिंजरा	<पंजर	<पञ्जर
इ	< ई	दिया	<दिअऊ	<दीपक
	ऋ	मिट्टी	<मिट्टिआ	<मृत्तिका

हिंदी स्वर	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	उदाहरण		
		हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	ई	तीखा	<तिक्ख	<तीक्ष्ण
	इ	ईख	<इक्खु	<इक्षु
ई	<इका	होली	<होलिआ	<होलिका
	ऋ	पीठ	<पिट्ठ	<पृष्ठ
	उ	कडुआ	<कडुअ	<कटुक
	ऊ	जुआ	<जूअ	<द्यूत
उ	<अ	पूछ	<पुच्छ	<पृच्छ
	इ	बुरा	<बुरुअ	<विरूप
	ऋ	बुड्ढा	<वुड्ढ	<वृद्ध
	ऊ	ऊसर	<ऊसर	<ऊषर
	उ	ऊँट	<उट्ठ	<उष्ट्र
	-उक	भालू	<भल्लुअ	<भल्लुक
ऊ	<उ	बिच्छू		<वृश्चिक
	औ	पूस	<पुस्स	<पौष
	ऋ	पूछ	<पुच्छ	<पृच्छ
	ए	आगे	<अग्गे	<अग्रे
	अ	सेज	<सज्जा	<शय्या
ए	<इ	छेद	<छिद्द	<छिद्र
	ऐ	तेल	<तेल	<तैल
	ओ	ओंठ, होंठ	<ओट्ठ	<ओष्ठ
	उ	पोखर	<पुक्खर	<पुष्कर
ओ	<ऊ	मोल	<मोल्ल	<मूल्य
	अ	चोंच	<चंचु	<चञ्चु
	औ	मोती	<मोत्तिअ	<मौक्तिक

६ ६ ४ सयुक्त स्वरो का विकास

सयुक्त स्वरो अथवा सध्यक्षरों 'ऐ, औ' के सबध में यह पहले ही कहा जा चुका है कि म भा आ में ये स्वर ध्वनिया सध्यक्षर नहीं थी। आधुनिक काल में फिर ये ध्वनियाँ सध्यक्षरों के रूप में विकसित हुई हैं इस कारण इन ध्वनियों का सस्कृत (प्रा भा आ) से सीधा सपर्क नही है। इन ध्वनियो का सपर्क मुख्य रूप से सस्कृत की अइ (अय) तथा अउ (अव) ध्वनियों से है। यथा—सस्कृत प्रविष्ट>पइट्ठ>पैठ।
सस्कृत चतुष्क>चउक्क>चौक।

६ ६ ५ अनुनासिक स्वरो का विकास

प्रा भा आ में अनुनासिक स्वरों के उदाहरण मिल जाते है। (यथा कास्य) किंतु एक तो ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं, दूसरा, उनका प्रयोग अस्पर्शी ध्वनियो (य, र, ल, व, स, श आदि) के पूर्व ही मिलता है। म भा आ तथा आ भा आ में क्रमश स्वरा की अनुनासिकता बढ़ गई है।

हिंदी में प्रयुक्त अनुनासिक स्वरों के विकास के अनेक स्रोत दृष्टिगोचर होते हैं जो इस प्रकार है।

(क) प्रा भा आ के अनुनासिक स्वरों का सुरक्षित होना। यथा—सस्कृत का कास्य>हिंदी कांसा।

(ख) प्रा भा आ के जिन शब्दों में मौखिक व्यजन के पीछे नासिक्य व्यजन पाया जाता है वहा हिंदी में अनुनासिक स्वर हो गया। यथा—सस्कृत पञ्च>हिंदी पाच, सस्कृत दन्त>हिंदी दात।

(ग) नासिक्य व्यजन की उपस्थिति मात्र से उत्पन्न सहज अनुनासिकता के उदाहरण भी मिलते है। यथा—सस्कृत महार्घ>हिंदी महगा।

(घ) कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहा अनुनासिकता के लिए उपयुक्त कारण उपलब्ध नहीं हैं। यथा—हिंदी साप<संस्कृत सर्प, हिंदी आख<सस्कृत अक्षि। ऐसी अनुनासिकता को 'स्वत अनुनासिकता' कहा जाता है। स्वत अनुनासिकता के कारणो का भी विवेचन किया गया है। इन कारणो के सबध में विद्वान एक मत नहीं है। कुछ विद्वान इसे बोलीगत प्रभाव मानते हैं, कुछ अन्य विद्वानों के विचार से स्वरों के ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ होने के

ारण अनुनासिकता उत्पन्न हुई। कुछ विद्वानो का ऐसा भी विचार है कि स्वत
ानुनासिकता व्यजन की क्षति पूर्ति के कारण उत्पन्न हुई है जो क्षति सयुक्त
यजना की समाप्ति के कारण उत्पन्न हुई।

६ ७ हिंदी व्यजनो का विकास

स्वरों के समान ही हिंदी व्यजनो का विकास-सूत्र अत में प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से ही जाकर जुडता है। इसलिए हिंदी व्यजनो का विवेचन करने से पूर्व यहा प्रा भा आ, म भा आ तथा हिंदी व्यजनो का सक्षिप्त तुलनात्मक परिचय दिया जा रहा है।

६ ७ १ प्रा भा आ , म भा आ एव हिंदी की व्यजन ध्वनिया

महत्वपूर्ण व्यजन ध्वनियो (अर्थात ध्वनिग्रामो) की दृष्टि से प्रा भा आ एव हिंदी में बहुत कम अतर है।

वदिक भाषा में तीन ऐसी ध्वनिया थी जिनका प्रयोग सस्कृत तक पहुचते पहुचते समाप्त हो गया था। ये ध्वनिया थी उत्क्षिप्त ळ जिह्वामूलीय ᳵक एव उपध्मानीय ᳶप। प्रा भा आ की ध्वनि 'ष' मध्यकाल तक लुप्त हो गयी थी। 'श' एव 'स' का प्रयोग भी एक ही भाषा रूप में नहीं मिलता है, अर्थात मध्यकाल के पश्चिमी भाषा रूप में 'स' एव पूर्वी भाषा रूप में 'श' की प्रधानता थी। मध्यकाल में और कुछ ध्वनि भेद रहे होंगे किंतु लिपि-बद्ध न होने के कारण उनके सबध में कुछ कहना सभव नहीं है।

हिंदी में उच्चारण की दृष्टि से मूर्धन्य 'ष' का प्रयोग नहीं होता। 'स एव 'श' साधु हिंदी में महत्वपूर्ण ध्वनिया है। 'ड़, ढ़' पहले 'ड' एव 'ढ' के अतगत गिनी जानेवाली उनकी सध्वनिया थी किंतु आज-कल हिंदी में उनका प्रयोग स्वतत्र ध्वनिया के रूप में होता है। हिंदी की नवीन ध्वनियों के रूप में क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का उल्लेख किया जा सकता है जो फारसी-अरबी के माध्यम से हिंदी में प्रविष्ट हुई हैं तथा हिंदी में स्थान पाने की प्रक्रिया में से गुजर रही है।

शेष व्यजन ध्वनिया प्रा भा आ , म भा आ तथा हिंदी में समान है।

कवर्गीय स्पर्श ध्वनियों (क, ख, ग, घ ङ) का उच्चारण स्थान पहले कठ था। आज-कल हिंदी में इनका उच्चारण कुछ आगे के स्थान से होता है,

इस कारण कुछ विद्वान अब उन्हें कंठ्य कहने की अपेक्षा कोमल तालव्य कहना अधिक उचित समझते हैं।

चवर्गीय ध्वनियाँ (च, छ, ज, झ, ञ) भारोपीय भाषा के कवर्गीय ध्वनियों से ही विकसित हुई हैं। ये ध्वनियाँ शुद्ध स्पर्शी न होकर स्पर्श संघर्षी ध्वनियाँ हैं।

टवर्गीय ध्वनियों (ट, ठ, ड, ढ, ण) का भारोपीय तथा मूल भारत-ईरानी भाषा में अभाव है। आर्यों की भाषा में इन ध्वनियों का विकास भारत आने के पश्चात् हुआ है। इस कारण इन ध्वनियों के विकास में आर्येतर (द्रविड आदि) तत्वों का योग माना जाता है।

तवर्गीय ध्वनियों (त थ, द ध न) के उच्चारण स्थान में भी थोड़ा परिवर्तन हो गया है। पहले ये ध्वनियाँ पूर्ण रूप से दंत्य थीं, अब इनका उच्चारण वर्त्स के निकट होता है।

पवर्गीय ध्वनियों (प फ ब, भ, म) में कोई विशेष अंतर नहीं हुआ है।

अंतस्थ ध्वनियाँ (य, व) प्रा भा आ में स्वरवत भी प्रयुक्त होती थीं। हिंदी में ये स्वरों की अपेक्षा व्यंजन अधिक हैं। 'ल' का उच्चारण पहले संभवत दंत्य था आजकल हिंदी में 'ल' का उच्चारण स्थान वर्त्स है। 'र' मूर्धन्य ध्वनि रही है।

ऊष्म ध्वनियों (ष, ष स) में से 'ष' का प्रयोग आधुनिक हिंदी में नहीं होता।

संभवत ह के दो उच्चारण थे—अघोष एवं सघोष। हिंदी में इसका केवल सघोष रूप ही रह गया है।

६ ७ २ व्यंजनों के विकास की सामान्य प्रवृत्तियाँ

नीचे व्यंजन परिवर्तन की उन मुख्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जाता है जो प्रवृत्तियाँ प्राचीन काल से आधुनिक काल की अवधि में दृष्टिगोचर होती हैं।

(क) अल्पप्राण व्यंजन लोप

इस प्रवृत्ति के कारण स्वर मध्यग अल्प प्राण व्यंजन का प्राय ह्रास हो जाता है। यथा—कुम्भकार > कुम्भआर > कुम्हार, पाद > पाउ > पाँव।

(ख) महाप्राण व्यजनो का 'ह' मे परिवतन

इस प्रवृत्ति के अनुसार स्वर मध्यग महाप्राण व्यजन ध्वनियो का 'ह' में परिवतन हो जाता ह (कुछ महाप्राण ठ, छ आदि को छोडकर)। यथा—दधि > दही मुख > मुह > मुह। वास्तव में यह प्रवृत्ति प्रथम प्रवृत्ति के ही समान ह। प्रथम प्रवृत्ति में अल्पप्राण व्यजन का लोप हो जाता ह, दूसरी प्रवृत्ति में महाप्राण व्यजन का केवल महाप्राणत्व (ह) रह जाता है, शेष अल्पप्राण व्यजन लुप्त हो जाता ह।

(ग) प्राणत्व मे परिवतन

इस प्रवृत्ति के कारण महाप्राण व्यजन ध्वनि अल्पप्राण बन जाती ह (विशेष कर पश्चिमी भाषा रूप में)। यथा—भगिनी > बहन।

अल्पप्राण से महाप्राण करने की प्रवृत्ति के उदाहरण भी मिलते ह (विशेष कर पूर्वी भाषा रूप में)। यथा—क्रीडा > खेल, वेष > बस > भेस।

(घ) घोषीकरण

इस प्रवृत्ति के कारण कुछ विशेष स्थितियों में अघोष व्यजन ध्वनियों को सघोष कर दिया जाता ह। यथा—कक्ष > कगन, काक > काग

(ङ) समीकरण एव दीर्घीकरण

यह प्रवृत्ति सभवत व्यजन परिवतन की सबसे अधिक प्रभावशाली प्रवृत्ति सिद्ध हुई ह। इस प्रवृत्ति के कारण प्राचीन भाषा के सयुक्त व्यजन मध्यकाल में परिवर्तित होकर द्वित्त व्यजन में बदल गये और फिर आधुनिककाल तक आते आते द्वित्त व्यजन एकल व्यजन में परिवर्तित हो गये। इस परिवतन क साथ ही एक परिवतन और भी हुआ। द्वित्त व्यजन से एकल व्यजन हो जाने के कारण जिस ध्वनि (व्यजन) की क्षति हुई उसकी पूर्ति द्वित्त व्यजन के पूव के ह्रस्व स्वर के दीर्घीकरण से हो गयी। यथा—चक्र > चक्क > चाक कर्म > कम्म > काम।

(च) अन्य परिवर्तन

उपयुक्त मुख्य परिवतनो के अतिरिक्त परिवर्तनों की कुछ अन्य प्रवृत्तिया भी दृष्टिगोचर होती हैं। जस—य का 'ज' में परिवतन, 'श, ष' का 'स' में परिवतन ध्वनिया का मूर्धन्यीकरण (ऋ र के प्रभाव से दन्त्य की ध्वनियों का टवर्गी बन जाना) यथा – मृत > मट, दाह > डाह स्वरभक्ति (सयुक्त व्यजन

के मध्य स्वर का आरोप करना। यथा—आश्रय > आसय, स्नेह > सनेह)। इसके अतिरिक्त व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण के स्थान एवं प्रयत्न में भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया है।

६.७.३ व्यंजनों का विकास-स्रोत

नीचे हिंदी व्यंजनों के विकास को दर्शाया गया है। व्यंजनों के विकास में 'स्थान' का भी महत्त्व है। इसलिए विकास दिखाते समय स्थान का भी संकेत कर दिया गया है। यह संकेत पड़ी लकीर के द्वारा किया गया है। यथा—'क—' अर्थात् शब्द के आरंभ में प्रयुक्त 'क', —क— शब्द मध्यग एवं '—क' शब्दांत प्रयोग को सूचित करते हैं।

हिंदी व्यंजन	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	उदाहरण: हिंदी	म. भा. आ.	प्रा. भा. आ.
क—	क	काठ	<कट्ठ	<काष्ठ
	स्क	कंधा	<कंधअ	<स्कंध
	क्र	कोस	<कोस	<क्रोश
	क्व	काढा	<काढअ	<क्वाथक
—क—	क	इक्कीस	<एक्कवीसअ	<एकविंशति
	र्क	ककड़	<कक्कर	<कर्कर
	क्र	चक्का	<चक्कअ	<चक्र
	क्क	चिकना	<चिक्कण	<चिक्कण
	क्व्	पका	<पक्क	<पक्व
—क्	क	गाहक	<गाहक	<ग्राहक
	ष्क	चौक	<चउक्क	<चतुष्क
	क्य	मानिक	<माणिक्क	<माणिक्य
	क्र	चाक	<चक्क	<चक्र
	र्क्	आक	<अक्क	<अर्क
	क्क	मूक	<मुक्क	<मूक
ख—	ख	खाट	<खट्टा, खट्ट	<खट्वा
	क्ष्	खेप	<खेव	<क्षेप

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	स्क्	खंभा	<खंभ	<स्कंभ
-ख-	ख	खसखस	<खसखस	<खसखस
	ख्य	बखान	<वक्खाण	<व्याख्यान
	क्ष्ण्	तीखा	<तिक्ख	<तीक्ष्ण
	ष्क	सूखा	<सुक्ख	<शुष्क
—ख्	ख्	दुख	<दुक्ख	<दु ख
	क्ष	आंख	<अक्खि	<अक्षि
ग—	ग्	गहरा	<गहिर	<गम्भीर
	ग्र	गांव	<गाम	<ग्राम
	क	गेंद	<गेंदुअ	<कंदुक
-ग-	ग	अगर	<अगरु	<अगुरु
	ल्ग्	फागुन	<फग्गुण	<फाल्गुन
	ग	गागर	<गग्गर	<गगर
	ग्र	आगे	<अग्गे	<अग्रे
—ग्	ग्	सींग	<सिंग	<शृंग
	क	लोग	<लोग	<लोक
	ग्न	आग	<अग्गि	<अग्नि
	ग्य	सोहाग	<सोहग्ग	<सौभाग्य
घ—	घ्	घड़ा	<घडअ	<घट
	ग (+ह)	घर	<घर	<गृह
	घ्र	घानी	<घाणिआ	<घ्राणिका
-घ-	द्घ	उघाड़ना	<उग्घाड	<उद्घाट
	घ्र	बाघिन	<वग्घिनी	<व्याघ्रिणी
	ग्र(+ह)	बीघा	<विग्गह	<विग्रह
—घ	घ	जांघ	<जंघ	<जंघा
	घ्र	बाघ	<वग्घ	<व्याघ्र
च—	च्	चैत	<चइत्त	<चैत्र
-च-	च्छ	अच्छा	<अच्छअ	<अच्छक

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	ष्ट्	आठ	<अट्ठ	<अष्ट
	ष्ठ	काठ	<कट्ठ	<काष्ठ
	थ (र के समीप)	गाठि (गाठ)	<गठि	<ग्रथि
ड—	ड	डाइन	<डाइणि	<डाकिनी
	द्	डोरा	<डोरअ	<दोरक
		डोली	<डोलिया	<दोलिका
–ड–	ड	अडा	<अण्डअ	<अण्डक
	स्थ्	हड्डी	<हड्डिया	<अस्थिका
—ड		माड		<मड
–ड़–	ड	पीडा	<पीडा	<पीडा
	ट	बाडी	<वाडिआ	<वाटिका
	ष्ट्	अडतीस्	<अट्ठतीसा	<अष्टत्रिंशत
	द्	सडसी	<सडसिया	<सदशिका
	त	पडोस	<पडोस	<प्रतिवेश
	र	पहाडा		<प्रस्तारण
–ड़्	ड	गड्ड	<गड्ड	<गड्ड
	ट	बड़	<बड	<वट
	र	[illegible]	[illegible]	<नगर
ढ—	द्	ढाल		<दाल्प
	धृ	ढीठ	<ढिट्ठ	<धृष्ट
	(ध र के)	ढार		<धार
–ढ़–	ढ	गाढ़ा	<गाढ	<गाढ
	ठ	पढ़ना	<पढन	<पठन
	ढ्	गढ़ी	<गढ़िआ	<गढिका
—ढ़	ढ्	गूढ़	<गूढ	<गूढ
	ठ्	पढ़	<पढ्	<पठ्
	द्ध	बूढ़	<बुड्ढ	<वृद्ध

ड़, ढ़ ध्वनियां शब्दारंभ में नहीं आतीं।

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	ष्ट्	कोढ	<कोड्ढ	<कुष्ट
त—	त	ताला	<तालअ	<तालक
	त्र	तेईस	<तेबीस	<त्रयोविंशति
-त-	त	सोता	<सोतअ	<स्रोतक
	त्र	चीता	<चित्तअ	<चित्रक
	त्त्	तीतर	<तित्तर	<तित्तिर
	क्त	मोती	<मोत्तिअ	<मौक्तिक
	प्त	सत्तर	<सत्तरि	<सप्तति
—त	त	दांत	<दन्त	<दन्त
	त्र	खेत	<खेत्त	<क्षेत्र
	त्त्	भीत्	<भित्त	<भित्ति
	क्त्	पांत	<पंति	<पंक्ति
	प्त	सात	<सत्त	<सप्त
थ—	थ	थाली	<थाली	<थाली
	स्थ	थान	<थाण	<स्थान
	स्त	थन	<थण	<स्तन
-थ-	थ	कथन		<कथन
	स्त	माथा	<मत्थअ	<मस्तक
	थ्	मथनी	<मत्थणिआ	<मत्थनिका
—थ	थ	पथ्		<पथ
	र्थ्	चौथ	<चउत्थ	<चतुर्थी
	स्त्	हाथ	<हत्थ	<हस्त
द—	द्	दुबला	<दुब्बल	<दुर्बल
	द्र	दोना	<दोणअ	<द्रोणक
-द-	द्	आदर		<आदर
	द्र	कोदो	<कोद्दव	<कोद्रव
	द	चौदह	<चउद्दह	<चतुर्दश

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	हिंदी	प्रा भा आ,	म भा आ,
—द्	द्	बूंद	<बिंदु	<बिंदु
	द्र	चांद	<चंद	<चंद्र
ध—	ध	धान्	<धण्ण	<धान्य
—ध—	ध	इंधन	<इंधण	<इंधन
	र्द्ध	आधा	<अद्धअ	<अर्द्धक
	र्द	गधा	<गद्दह	<गर्दभ
—ध	ध्	बध्		<वध
	ध्र	गीध	<गिद्ध	<गृध्र
प—	प	पारा	<पारअ	<पारद
	प्र	पहेली	<पहेलिआ	<प्रहेलिका
	स्प	परस		<स्पर्श
—प—	प्	सपना		<स्वप्न
	र्प	कपूर	<कप्पूर	<कर्पूर
	त्प	उपज	<उप्पज्ज	<उत्पद्य
	प्प	पीपल	<पिप्पल	<पिप्पल
—प	प्	रूप्		<रूप
	प	सूप	<सुप्प	<शूर्प
	ष्प	भाप्		<वाष्प
	प्र	बाप	<बप्प	<वप्र
फ—	फ	फागुन	<फग्गुण	<फाल्गुन
	स्फ	फोड़ा	<फोडअ	<स्फोटक
	प	फरसा	<फरसु	<परशु
—फ—	फ	सफल		<सफल
ब—	ब	बांध		<बन्ध्
	ब्र	बाम्हन्	<बम्हण	<ब्राह्मण
	वृ	बढ़	<वड्ढ	<वृध

उदाहरण

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	व्य्	बाघ	<वग्घ	<व्याघ्र
	प्	बठ	<बइट्ठ	<उपविष्ट
	भ	बहिन	<बहिणि	<भगिनि
	प्र	बहुत	<बहुत्त	<प्रभूत
—ब—	ब	कम्बल	<कम्बल	<कम्बल
	म्र	ताबा	<तम्म	<ताम्र
	भ	अबरक	<अ भय	<अभ्रक
	द्व	उबटन		<उद्वर्तन
—ब	ब	कदम्ब्	<कद्दम	<कदम्ब
	र्व	सब	<सब्ब	<सर्व
भ—	भ	भीख	<भिक्खा	<भिक्षा
	भ्र	भवरा (भौंरा)	<भवरअ	<भ्रमर
	व	भेस	<भेस	<वेष
	म	भस	<महिस	<महिष
	ब	भूक	<भुक्क	<बुभुक्ष
—भ—	भ	आभूषण		<आभूषण
—भ्	भ	लाभ्		<लाभ
	ह्व	जीभ्	<जिब्भा	<जिह्वा

ङ यह ध्वनि प्रा भा आ तथा संस्कृत में कवर्ग के व्यंजनों के पूर्व ही प्रयुक्त होती थी। शब्दारंभ अथवा शब्दांत में इसका प्रयोग नहीं होता था। हिंदी में भी इस ध्वनि की यही स्थिति है।

—ङ— ङ कंगाल <कंकाल <कङ्काल

ञ ञ की स्थिति ङ के समान ही थी अर्थात यह ध्वनि केवल चवर्गीय व्यंजनों के पूर्व ही आती थी, शब्द के आदि या अंत में नहीं। हिंदी में भी इसका प्रयोग ऐसे ही होता है।

—ञ— ञ् <चंचल <चंचल <चञ्चल

ण यह ध्वनि संस्कृत या प्रा. भा. आ. में शब्दारंभ में नहीं आती थी, अन्यत्र कहीं भी उसके प्रयोग पर प्रतिबंध नहीं था। हिंदी में मध्य तथा अंत में इस ध्वनि का कहीं भी प्रयोग हो सकता है।

-ण-	ण	अगणित	<अगणिअ	<अगणित
—ण	ण्	गुण	<गुण	<गुण
न—	न्	नौ	<णव	<नव
	स्न्	नेह	<णेह	<स्नेह
-न-	न्	पानी	<पाणिअ	<पानीय
	ण	चना	<चणअ	<चणक
	ण	सोना	<सोण्ण	<स्वर्ण
	न्न्	अनाज	<अण्णज्ज	<अन्नाद्य
—न्	ण्	लहसुन	<लसुण	<लशुन
	न्य्	सुन्न	<सुण्ण	<शून्य
	ण	कान	<कण्ण	<कर्ण
	ण	सन्	<सण	<शण
म—	म	मक्खी	<मक्खिआ	<मक्षिका
	म्र	मक्खन	<मक्खण	<म्रक्षण
	श्म्	मसान	<मसाण	<श्मशान
-म-	म्	मामा	<मामिआ	<मामिका
	म	चमड़ा	<चम्म + डा	<चर्म
—म	म	नाम	<णाम	<नाम
	म	काम	<कम्म	<कर्म
	म्ब	नीम	<णिम्ब	<निम्ब
	भ्	बालम	वल्लभ	<वल्लभ
य—	य	याजना		<योजना
	[illegible]	ये	<एइ	<एन
-य-	[illegible]	प्रयत्न	<पयत्त	<प्रयत्न
—य	य्	समय		<समय
	इ	गाय	<गाइ	<गाविका
व—	व्	बहू	<बहुअ	<वधू

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियां	उदाहरण		
		हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
-वँ-	व	सावन	<सावण	<श्रावण
	प	पूवा	<पवअ	<पूपक
	म	सावला	<सावलअ	<श्यामलक
—व	व	अभिनव	<अभिणव	<अभिनव
	म	गाव	<गाम	<ग्राम
	प	ताव	<ताव	<ताप
र—	र	राज	<रज्ज	<राज्य
	ऋ	रीछ	<रिच्छ	<ऋक्ष
-र-	र्	गेरू	<गेरुअ	<गैरिक
	ऋ	घरनी	<घरणी	<गृहिणी
	द्	ग्यारह	<एगारह	<एकादश
	ल	पूरा	<पूवरिआ	<पूपालिका
—र	र	ऊपर	<उप्पर	<ऊपर
	त	सत्तर	<सत्तरि	<सप्तति
	ऋ	पीहर		<पितृगृह
ल—	ल	लाख	<लक्ख	<लक्ष
-ल-	ल	होली	<होलिया	<होलिका
	ल्ल्	भालू	<भल्लुअ	<भल्लुक
	र	हल्दी	<हलिद्दी	<हरिद्रा
	र्य	पलंग	<पल्लंग	<पर्यङ्क
	ड	सोलह	<सोडस	<षोडश
	त	अलसी	<अलसी	<अतसी
—ल्	ल्	साल	<साल	<शाल
	ल्ल्	गाल	<गल्ल	<गल्ल
	ल्य्	कल	<कल्ल	<कल्य
	ल्व्	बेल	<बेल्ल	<बिल्व
श—	श	सिखा	<सिक्खा	<शिक्षा

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनियाँ	उदाहरण		
		हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	ष्	षड्यन्त्र (खड्यन्त्र)		<षड्यन्त्र
-ष-	ष्	भाषा	<भासा	<भाषा
	ष्	शोषण (सोखण)	<सोसण	<शोषण
—ष	ष	माष	<मास	<माष
	ष	दोष (दोख)		<दोष
स—	स्	सच	<सच्च	<सत्य
	श	साड़ी	<साडिआ	<शाटिका
	श्र	सेठ	<सेट्ठि	<श्रेष्ठि
	श्य्	साँवा	<सामअ	<श्यामक
	श्व्	साँस	<सास	<श्वास
	शृ	सींग्	<सिंग्	<शृंग
	ष्	साँड	<संड	<षण्ड
-स-	स्	आसनी	<आसदी	<आसन्दी
	स्य्	काँसा	<कस्सअ	<कांस्य
	श्	डसना	<डसण	<दशन
	ष्	ऊसर	<उस्सर	<ऊषर
—स्	स्	साँस	<सास	<श्वास
	स्य	किस	<किस्स	<कस्य
	श्	दस	<दस	<दश
	श्र	आँस	<अस्स	<अश्रि
	श्य	ओस	<ओस्सा	<अवश्या
	ष्	बरस	<वरिस	<वर्ष
ह—	ह्	हाथी	<हत्थि	<हस्तिन
	ध्	हेठा	<हेट्ठा	<अधस्तात्
-ह-	ह्	पहर	<पहर	<प्रहर
	ख	अहेर	<आहेड	<आखेट
	घ्	रहट्	<रहट्ट	<अरघट्ट
	थ्	कहना	<कहण	<कथन

हिंदी	संस्कृत स्रोत ध्वनिया	उदाहरण		
		हिंदी	म भा आ	प्रा भा आ
	घ	दही	<दहि	<दधि
	भ्	अहीर	<अहीर	<आभीर
	ष्	केहरा	<केसरी	<केशरी
	स्	इकहत्तर	<एकहत्तरि	<एकसप्तति
	स्त	पहाड	<पाहाण	<प्रस्तारक
—ह्	ह्	दाह	<दाह	<दाह
	ख्	मुह	<मुह	<मुख
	घ्	मेह	<मेह	<मेघ
	थ्	कह	<कह	<कथ्
	श्	सोलह	<साडस	<षोडश

६ ७ ४ खडेतर ध्वनियो का विकास

नासिक्यता का संबंध स्वरों से है। अत अनुनासिक स्वरों के विकास संबंधी विवेचन में नासिक्यता का विकास भी निहित है।

अंतराल का उपयोग प्रत्येक भाषा में होता है। इसलिए हिंदी में प्रयुक्त अंतराल की चर्चा के लिए परंपरा का विश्लेषण अनिवार्य नही है। अत खडेतर ध्वनियों अथवा खडेतर लक्षणों में आघात ही शेष रहता है जिसके विकास का विवेचन अपेक्षित ह।

ऐसा समझा जाता ह कि वैदिक भाषा में स्वराघात महत्वपूर्ण था, बलाघात नही। स्वराघात के तीन भेद थे—'उदात्त' (जिसमें स्वर ऊचा रहता था) 'अनुदात्त' (जिसमें स्वर नीचे रहता था) एव 'स्वरित' (जो संभवत उदात्त एव अनुदात्त के मध्य की स्थिति थी)।

संस्कृत काल से स्वराघात का ह्रास एव बलाघात का विकास आरंभ होता ह। संस्कृत में केवल बलाघात का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। पालि प्राकृत में स्वराघात के कुछ अवशेष दिखाई पडते हैं किंतु अपभ्रंश तक पहुचते-पहुचते स्वराघात का प्रयोग समाप्त हो जाता है तथा बलाघात विकसित हो जाता है।

आधुनिक आर्यभाषाओं के संबध में विद्वान एक मत नही हैं। हिंदी में स्वराघात अथवा बलाघात का निश्चित एव महत्वपूर्ण प्रयोग दिखाई नही पडता।

स्मरण-संकेत

१ १ 'हिंदी-संरचना' का अर्थ 'साधु हिंदी की संरचना' है।

१ २ ध्वन्यात्मक संरचना में ध्वनियों का विवेचन होता है।

१ ३ खंडीय अर्थात् क्रमशः उच्चरित ध्वनियाँ, (स्वर, व्यंजन) खंडेतर अर्थात् अन्य ध्वनियों के साथ उच्चरित ध्वनियाँ (आघात, सुर आदि) हिंदी में १० स्वर एवं ३२ व्यंजन। इसके सिवाय नासिक्यता, अनुस्वार, विसर्ग की ध्वनियाँ। कुछ अन्य ध्वनियाँ तथा विदेशी ध्वनियाँ। स्वरों के वर्गीकरण के आधार हैं—जीभ की ऊँचाई, जीभ का स्थान होंठों की स्थिति, मात्रा, नासिक्यता तथा स्पष्टता।

व्यंजन रहित स्वरों के एक साथ प्रयोग का नाम स्वर-संयोग। हिंदी में दो-तीन स्वरों के संयोग। व्यंजनों के वर्गीकरण के आधार हैं—स्थान, प्रयत्न, घोषत्व, प्राणत्व। स्वर रहित समान व्यंजनों के एक साथ प्रयोग को 'व्यंजन द्वित्व' तथा भिन्न व्यंजनों के एक साथ प्रयोग को 'संयुक्त व्यंजन' अथवा 'व्यंजन गुच्छ' कहते हैं। हिंदी में दो, तीन, चार व्यंजनों के गुच्छ मिलते हैं।

१ ४ हिंदी में नासिक्यता महत्त्वपूर्ण है। उच्चारण में लगाये हुए बल का नाम 'आघात'। आघात के दो प्रकार हैं—बलाघात एवं स्वराघात। हिंदी में आघात का निश्चित एवं महत्वपूर्ण प्रयोग नहीं होता। ध्वनियों के आरोह अवरोह को सुर कहते हैं। हिंदी में वाक्य के स्तर पर सुर का महत्त्व है। उच्चारण के मध्य होने वाले विराम को अंतराल कहते हैं। हिंदी में तीन प्रकार का अंतराल है—वाक्यांत, पद एवं खुला अंतराल।

१ ५ हिंदी ध्वनियों का विकास प्रा भा आ, के माध्यम से, प्रा भा आ से हुआ है।

१ ६ स्वरों के विकास की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं—सुरक्षित रहना, उच्चारण में भिन्नता, वितरण में भिन्नता एवं स्वर-लोप।
प्रत्येक हिंदी स्वर का विकास प्रा भा आ के अनेक स्वरों से हुआ है।

१ ७ व्यंजनों के विकास की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं—अल्पप्राण ध्वनियों का लोप, महाप्राण ध्वनियों का 'ह' में परिवर्तन, प्राणत्व में अंतर, घोषत्व

की व्याकरणात्मक संरचना
(वर्णन एवं विकास)





७ हिंदी की व्याकरणात्मक संरचना (वर्णन एवं विकास)



- हिंदी की व्याकरणात्मक सरचना
- हिंदी की रूपात्मक सरचना
- *हिंदी मे शब्द निर्माण की पद्धतिया*
- हिंदी मे शब्द रूपातर
- सज्ञा का रूपातर एव विकास
- सर्वनाम का रूपातर एव विकास
- विशेषण का रूपातर एव विकास
- क्रिया का रूपातर एव विकास
- अव्यय
- हिंदी की वाक्यात्मक सरचना





७ १ हिंदी की व्याकरणात्मक सरचना

व्याकरणात्मक सरचना भाषा की सबसे महत्वपूण सरचना ह। व्याकरणात्मक सरचना को भिन्नता के कारण ही एक भाषा दूसरी भाषा से भिन्न दिखाई पड़ती है।

व्याकरणात्मक सरचना को सुविधा के लिए दो भागा में विभाजित किया जाता है। एक को रूपात्मक सरचना एव दूसरी को वाक्यात्मक सरचना कहा जाता ह। रूपात्मक सरचना में शब्दों के निर्माण एव विकार का विवेचन होता है। वाक्यात्मक सरचना में वाक्य की गठन एव वाक्य के प्रकारों का विश्लेषण होता ह। हिंदी की व्याकरणात्मक सरचना के विवेचन में, हिंदी की शब्द निर्माण की पद्धतियों, शब्द रूपातर की विधिया, वाक्य की गठन वाक्य के प्रकारा आदि विषया का उल्लेख होगा।

७ २ हिंदी को रूपात्मक सरचना

हिंदी की रूपात्मक सरचना के अतगत हिंदी के शब्द निर्माण की पद्धतिया तथा हिंदी शब्दों के रूपातर अथवा विकार का विवेचन होगा। आगामी परिच्छेदों में हिंदी की रूपात्मक सरचना का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा ह। यथासभव एतिहासिक पष्ठभूमि (विकास) का भी निर्देश कर दिया गया ह।

७ ३ हिंदी में शब्द-निर्माण की पद्धतिया

हिंदी में शब्द निर्माण की मुख्य तीन पद्धतिया ह—

(क) सग पद्धति
(ख) समास पद्धति
(ग) पुनरावृत्ति पद्धति

उपयुक्त पद्धतियों में से सग पद्धति मुख्य है अत उसका विस्तार से विवेचन किया जायगा।

७ ३ १ समास पद्धति

समास पद्धति म सयोजक तत्व (विभक्ति आदि) को हटा दिया जाता ह जिससे एक से अधिक शब्द आपस में मिलकर एक अय शब्द की रचना करते हैं। शब्दों के जुड़ने की क्रिया को समास कहते हैं तथा समास की क्रिया से बना हुआ शब्द 'सामासिक शब्द कहलाता है। उदाहरणाथ घुड़दौड़'

(= घोड़ों की दौड़) में 'की' परसर्ग का लोप है तथा 'दाल भात' (= दाल और भात) में 'और' समुच्चय बोधक का लोप हुआ है।

संस्कृत श्लिष्ट प्रश्लिष्ट के मध्य की भाषा थी। अतः उसमें शब्दों का परस्पर जुड़ने की सुविधा थी। हिंदी अश्लिष्ट बनने की प्रक्रिया से गुजर रही है, जिसमें शब्द जुड़ने के स्थान पर अलग होते हैं, इसलिए हिंदी में समास पद्धति का ह्रास हो चला है। 'राम राज्य', 'राज भाषा' जैसे रूप जो संस्कृत की दृष्टि से सामासिक हैं, हिंदी में असामासिक हो चले हैं तथा 'रामराज्य', 'राजभाषा' के रूप में लिखे जाते हैं। कुछ सामासिक शब्द परंपरा से चले आ रहे हैं। हिंदी में आज भी उनका प्रयोग होता है किंतु शब्द निर्माण की दृष्टि से समास पद्धति हिंदी में बहुत प्रभावशाली नहीं है।

७ ३ २ पुनरावृत्ति की पद्धति

पुनरावृत्ति की पद्धति में कभी तो पूरे शब्द को दुहरा दिया जाता है (जैसे—खटखट, चमचम) तथा कभी शब्द के उच्चारण से मेल खाते हुए सार्थक अथवा निरर्थक शब्द को दुहरा दिया जाता है। जैसे—'गाना बजाना' में 'गाना' के साथ आया हुआ 'बजाना' सार्थक है जबकि लोटा-वोटा में 'लोटा' के साथ आया हुआ 'वोटा' निरर्थक है (सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उसका भी एक अर्थ है। 'लोटा' अर्थात् 'केवल लोटा' लेकिन 'लोटा-वोटा' अर्थात् 'लोटे के साथ और भी चीजें')। कभी-कभी पुनरावृत्ति में मिलते-जुलते अर्थवाले दो शब्दों को भी साथ-साथ दुहरा दिया जाता है। जैसे—दौड़ धूप, नाच गाना। वास्तव में देखा जाय तो ऐसे शब्द सामासिक बन जाते हैं।

७ ३ ३ सर्ग पद्धति

इस पद्धति में मूल शब्द के पूर्व अथवा पश्चात् अथवा दोनों स्थितियों में सर्ग जोड़कर एक शब्द से दूसरा शब्द बनाया जाता है। यथा—'कर्म' शब्द के पूर्व 'कु–' सर्ग जोड़कर 'कुकर्म', 'योग' शब्द के पश्चात् '–ई' सर्ग जोड़कर 'योगी' तथा 'मार्ग' के पूर्व '–कु' सर्ग एवं पश्चात् '–ई' सर्ग जोड़कर 'कुमार्गी' बनाया जा सकता है।

सामान्य रूप से शब्द के पूर्व जोड़े जानेवाले सर्ग को उपसर्ग तथा शब्द के पश्चात् जोड़े जानेवाले सर्ग को 'प्रत्यय' कहा जाता है।

७ ३ ३ १ हिंदी उपसर्ग

हिंदी-उपसर्गों के तीन भेद माने जाते हैं—

(क) तत्सम
(ख) तद्भव
(ग) विदेशी

तत्सम उपसर्ग

इन उपसर्गों का रूप संस्कृत के समान ही है। कुछ मुख्य तत्सम उपसर्ग निम्नलिखित हैं—

अ अन् = अभाव, शून्यता

कुछ अपवादों को छोड़कर, 'अ' का प्रयोग व्यंजन से आरंभ होनेवाले शब्द के पूर्व तथा 'अन्' का प्रयोग स्वर से आरंभ होनेवाले शब्द के पूर्व होता है। यथा—अ + ज्ञान = अज्ञान, अन् + आदर = अनादर।

अप = हीनता। यथा—अपमान, अपयश।
अभि = विशेष। यथा—अभिमान, अभिमत।
अव = (i) हीन, नीच शून्य। यथा—अवगुण।
= (ii) विशेष। यथा—अवबोध, अवरोध।
उप = (i) सहायक, गौण। यथा—उपनाम, उपग्रह।
= (ii) विशेष। यथा—उपभोग, उपयोग।
कु = हीन, बुरा। यथा—कुपुत्र कुकर्म।
दुर् = (i) बुरा। यथा दुर्बुद्धि, दुर्गुण दुर्घटना।
(ii) कठिन। यथा—दुर्गम, दुर्निवार।
निर्, नी = नहीं, रहित। यथा—निर्गुण, निर्जन, नीरस, नीरव।
परि = पूर्ण हर प्रकार से। यथा—परिरक्षण, परित्राण, परिवर्तन, परितोष।
वि = (i) विशेष। यथा—विजय विज्ञान, विनाश।
(ii) अभाव। यथा—विदेशी, विमुख।
स = साथ। यथा—सजीव, सतर्क, सगुण।
सु = अच्छा उत्तम। यथा—सुपुत्र, सुयश, सुमति, सुकर्म।

तद्भव उपसर्ग

कुछ प्रमुख तद्भव उपसर्ग निम्नलिखित हैं—

स (सं सु > हिं स) = अच्छा। यथा—सपूत।

क (सं कु > हिं क) = बुरा। यथा—कपूत।
नि (सं निर् > हिं नि) = नहीं। यथा—निकम्मा, निडर।
अध (सं अर्ध > हिं अध) = आधा। यथा—अधमरा।
दु (सं दुर् > हिं दु) = बुरा, हीन। यथा—दुबला, दुकाल।

विदेशी उपसर्ग

कुछ विद्वानों ने विदेशी उपसर्गों के वर्ग में फारसी के 'बे–' (बेईमान, बेपरवाह), 'ला–' (लाजवाब) 'बा–' (बाअदब) आदि तथा अंग्रेजी के 'हेड–' (हेडमास्टर) 'वाइस–' (वाइस चांसलर) 'हाफ–' (हाफ पैंट) आदि की गणना की है। वास्तव में विदेशी उपसर्गों के संदर्भ में जिन शब्दों के उदाहरण दिए जाते हैं वे पूरे के पूरे शब्द ही हिंदी में आगत हैं। उदाहरणार्थ हिंदी में फारसी का 'जवाब' भी आया है 'लाजवाब' भी। यह नहीं कि हिंदी ने 'ला–' उपसर्ग तथा 'जवाब' शब्द लिए हैं तथा 'जवाब' में 'ला–' जोड़कर 'लाजवाब' बनाया है। वैसे ही अंग्रेजी का पूरा शब्द 'हेडमास्टर' हिंदी ने ग्रहण किया है यह नहीं कि 'हेड–' उपसर्ग लिया है तथा 'मास्टर' में जोड़कर 'हेड मास्टर' की रचना की है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ अपवादों को छोड़कर (यथा—बेठिकाने, बेध्यानी) ये तथाकथित विदेशी उपसर्ग हिंदी में रचनात्मक दृष्टि से प्रयुक्त नहीं होते।

७ ३ ३ २ हिंदी प्रत्यय

संस्कृत में दो प्रकार के प्रत्यय थे – कृत प्रत्यय—जो धातु के पीछे जुड़ते थे, तथा तद्धित प्रत्यय जो धातु के अतिरिक्त अन्य शब्दों (संज्ञा, विशेषण आदि) के पीछे जुड़ते थे। हिंदी में इस वर्गीकरण का औचित्य नहीं रह गया है, क्योंकि हिंदी में एक ही प्रत्यय धातु में भी जुड़ता है तो धातु के सिवाय अन्य शब्दों में भी। उदाहरणार्थ 'अक' प्रत्यय धातु 'बैठ' में भी जुड़ता है (बैठ् + अक = बैठक) तो 'पाठ' संज्ञा में भी जुड़ता है (पाठ् + अक = पाठक)।

हिंदी प्रत्ययों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है। एक तो स्रोत के आधार पर दूसरा कार्य के आधार पर।

यहाँ स्रोत की दृष्टि से प्रत्ययों का विवेचन किया जा रहा है, क्योंकि भाषा के इतिहास अर्थात विकास में इसी का महत्व है। यथासंभव उनके कार्यों का भी उल्लेख कर दिया गया है।

स्रोत की दृष्टि से हिंदी प्रत्यय तीन प्रकार के हैं (क) परंपरागत, (ख) निर्मित, (ग) आगत।

परंपरागत प्रत्यय

परंपरागत प्रत्यय दो प्रकार के हैं—तत्सम एवं तद्भव। तत्सम प्रत्यय वे हैं जिनका रूप संस्कृत के समान है। तद्भव प्रत्ययों के रूप में संस्कृत से कुछ परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। कुछ विद्वान 'अज' एवं 'अन' को तद्भव प्रत्यय मानते हैं तथा उनका संबंध संस्कृत के 'ज' तथा 'ज्ञ' से जोड़ते हैं। उनके कथनानुसार संस्कृत में जल + ज = जलज मम + ज्ञ = ममज्ञ है। जबकि हिंदी में जल + अज = जलज्, मम् + अन = ममन् है। इस संबंध में निवेदन है कि जलज् तथा ममन् जैसे शब्दों में 'अज्', 'अन्' प्रत्यय मानने का कोई औचित्य नहीं है। हिंदी ने संस्कृत से 'जलज' एवं 'ममज्ञ' के साथ जलज एवं 'ममज्ञ' जैसे शब्द भी ग्रहण किए हैं और अपनी प्रकृति के अनुसार उनके अंतिम 'अ' का लोप कर उन्हें व्यंजनांत बना दिया है। वास्तव में 'जलज्' एवं 'ममन्' जैसे शब्दों में 'ज्' एवं 'न्' ही प्रत्यय मानने चाहिए।

नीचे कुछ मुख्य तत्सम एवं तद्भव प्रत्यय दिए जा रहे हैं।

तत्सम प्रत्यय

आ = स्त्री प्रत्यय। यथा—माननीया, सुता आदरणीया।
जीवी = जीनेवाला। यथा—बुद्धिजीवी, श्रमजीवी, परजीवी।
ता = संज्ञा निर्माणक। यथा—कविता, कोमलता, ममता।
वर्ती = वाला। यथा—परवर्ती, पूर्ववर्ती, अनुवर्ती।
वान = वाला। यथा—गुणवान्, धनवान्, भाग्यवान्।
शाली = वाला। यथा—शक्तिशाली बलशाली, भाग्यशाली।

तद्भव प्रत्यय

आनी (सं आनुक् + ङीप् > हिं आन + ई) = स्त्री प्रत्यय।
यथा—गुरुआनी, मातुलानी।

इक् (सं इक > हिं इक्) = विशेषण निर्माणक।
यथा—वैदिक् सामाजिक।

इन् (सं आनी > हिं इन्) = स्त्री प्रत्यय।
यथा—सुनारिन, नागिन।

इमा (सं इम + आ > हिं इम् + आ) = संज्ञा निर्माणक।
यथा—महिमा गरिमा।

ई (कुछ इसे तत्सम मानते हैं तथा कुछ इसका विकास सं इक्, इका से मानते हैं)।

(१) स्त्री प्रत्यय। यथा—बेटी, अपनी।
(२) विशेषण निर्माणक। यथा—आसमानी, रेशमी।
(३) कर्तृवाचक। यथा—माली, तेली।

ईय् (सं ईय>हिं ईय्) = विशेषण निर्माणक।
यथा—स्वर्गीय्, भारतीय्।

कार् (सं कार>हिं कार्) = कर्तृवाचक।
यथा—साहित्यकार्, कलाकार्।

तम (सं तम>हिं तम) = उत्तमतावाची।
यथा—श्रेष्ठतम, उच्चतम।

तर् (सं तर>हिं तर्) = तुलनावाची।
यथा—उच्चतर्, निम्नतर्।

निर्मित प्रत्यय

निर्मित प्रत्यय वे हैं जिनकी उत्पत्ति के संबंध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यथा—'अक्कड़' (भुलक्कड़, घुमक्कड़), 'आका' 'आक (पटाका खटाक)।

कुछ दूसरे निर्मित प्रत्यय वे हैं जो पारिभाषिक शब्दों के निर्माण हेतु बन रहे हैं। वास्तव में यह संस्कृत प्रत्ययों का पुनःप्रचलन है। यथा—'अन्' (मंच + अन = मंचन अर्थात मंच पर प्रस्तुत करना), 'वाह्' (कार्य + वाह् = कार्यवाह्)।

विदेशी प्रत्यय

विदेशी प्रत्ययों के रूप में प्रायः विद्वान फारसी 'दार' (चौकीदार, सूबेदार), 'नाक' (खौफनाक, दर्दनाक), 'बान' (मेहरबान, दरबान), 'बर (ताकतवर), मंद (अक्लमंद दौलतमंद) आदि तथा अंग्रेजी के 'इज़्म' (गांधीइज़्म), 'इस्ट' (सोशलिस्ट) आदि का उल्लेख करते हैं।

विदेशी प्रत्ययों के संबंध में भी वही कहना है जो विदेशी उपसर्गों के संबंध में कहा गया है, अर्थात हिंदी ने उन विदेशी शब्दों को संबंधित प्रत्यया के साथ ग्रहण किया है। हिंदी ने इन प्रत्ययों को स्वतंत्र रूप से ग्रहण नहीं किया है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि उपर्युक्त तथाकथित विदेशी प्रत्ययों का प्रयोग हिंदी के अपने परंपरागत शब्दों के साथ प्रायः नहीं होता।

७ ४ हिंदी में शब्द-रूपांतर (विकार)

'शब्द रूपांतर' का अर्थ है शब्द के रूप में होनेवाला अंतर अथवा विकार।

विकार की दृष्टि से हिंदी शब्द दो प्रकार के हैं—विकारी तथा अविकारी। हिंदी में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण एवं क्रिया विकारी शब्द हैं तथा क्रिया विशेषण संबंधबोधक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादिबोधक अविकारी। अविकारी शब्दों को अव्यय भी कहा जाता है। या ऐसे कुछ क्रियाविशेषण शब्द हैं जिनके रूप में परिवर्तन होता है। उदाहरणार्थ 'लड़का भागता आया।', 'लड़की भागती आई।' इन वाक्यों में 'भागता' एवं 'भागती' क्रिया विशेषण हैं जो संबंधित संज्ञा 'लड़का' एवं 'लड़की' के आधार पर रूपांतरित हुए हैं।

विकारी शब्दों में से संज्ञा, सर्वनाम एवं विशेषण का रूपांतर लिंग, वचन एवं कारक के आधार पर तथा क्रिया का रूपांतर लिंग, वचन, पुरुष एवं काल के आधार पर होता है।

७ ५ संज्ञा का रूपांतर एवं विकास

संस्कृत में संज्ञा शब्द स्वरांत एवं व्यंजनांत थे। मध्यकालीन प्राकृत अपभ्रंश भाषा में अंतिम व्यंजन के लोप होने के कारण संज्ञा शब्द मुख्य रूप से स्वरांत रह गए। हिंदी तक पहुँचते-पहुँचते इस स्थिति में फिर परिवर्तन हुआ। शब्दों के अंतिम ह्रस्व स्वर अ, इ, उ कमजोर पड़कर लुप्त हो गए है। उदाहरणार्थ 'कर्म', शब्द संस्कृत में व्यंजनांत था। प्राकृत में इसका रूप अकारांत 'कम्म' हो गया और हिंदी में वह व्यंजनांत 'काम' बन गया है। आज हिंदी में प्राय सभी स्वरों एवं सभी व्यंजनों (ङ, ञ, ट ढ़ को छोड़कर) में पूरे होनेवाले संज्ञा शब्द मिलते है।

७ ५ १ लिंग

शब्द की जाति को उसका लिंग कहते हैं। लिंग एक तो प्राकृतिक होता है, दूसरा व्याकरणिक। प्राकृतिक लिंग विधान के अनुसार जितने भी नर हैं वे सभी पुल्लिंग है तथा सभी मादाएं स्त्रीलिंग है। निर्जीव पदार्थों का कोई लिंग नहीं है। व्याकरणिक लिंग विधान प्रत्येक भाषा का अपना होता है।

संस्कृत में तीन लिंग थे—पुल्लिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग। प्राकृत अपभ्रंश में भी तीनों लिंगों का प्रयोग होता रहा किंतु नपुंसकलिंग के ह्रास के

लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। हिंदी में दो ही लिंग रह गए हैं—पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग।

हिंदी का लिंग विधान बहुत जटिल है। इसका मुख्य कारण यह है कि हिंदी का लिंग-विधान मुख्य रूप से व्याकरणिक है। फिर नपुंसकलिंग के अभाव के कारण निर्जीव पदार्थों का लिंग निर्धारण करना और भी कठिन हो गया है। इसी से 'समाज', 'रूमाल', 'कलम' आदि जैसे शब्द दोनों लिंगों में प्रयुक्त होते दिखाई पड़ते हैं।

हिंदी में सामान्य रूप से पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने की परंपरा है। मुख्य स्त्री प्रत्यय निम्नलिखित हैं।

१ ई (सं इका > प्रा आ इआ > हिं ई) यथा—घोड़ी।
(सं ई > प्रा आ ई > हिं ई) यथा—नदी गोपी।

२ इआ, इया (सं इका > प्रा आ इआ > हिं इया) यथा—चिड़िया, गुड़िया।

३ आनी (सं आनी या आणी > प्रा आ आणी > हिं आनी) यथा—देवरानी, मुगलानी।

४ इन्, न (सं आनी, आणी > प्रा आ आणी > णी > इण — हिं इन्) यथा—पुजारिन्, मालिन्।

५ नी (सं नी, णी > प्रा आ णी > हिं नी) यथा—हाथनी, मोरनी।

हिंदी का मुख्य पुल्लिंग प्रत्यय 'आ' है (यथा—घोड़ा, लड़का)। इस 'आ' का विकास विभिन्न स्रोतों से हुआ है।

१ सं अक' से (घोटक > प्रा आ > घोडअ > हिं घोड़ा)।

२ सं अन् से (ब्रह्मन् > ब्रह्मा)।

३ सं ऋ से (पितृ > पिता, नप्तृ > नता)।

हिंदी में कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका लिंग प्रत्यय के द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता। लिंग की अभिव्यक्ति के लिए नर अथवा मादा शब्द का प्रयोग करना पड़ता है, जैसे—नर भेड़िया—मादा भेड़िया नर चींटा—मादा चींटा।

कुछ शब्दों के लिंग युग्मक से संबद्ध हैं। यथा—माता पिता, भाई-बहन।

अरबी-फारसी के प्रभाव से कभी-कभी इन भाषाओं के शब्दों के अंतिम ह को 'आ' में परिवर्तित कर स्त्रीलिंग बनाया जाता है, जैसे—मलिक > मलिका (यह मलिक का स्त्रीलिंग है) शाह > शाहा (शाह का स्त्रीलिंग)।

७ ५ २ वचन

शब्द की सख्या को वचन कहते ह । सामाय रूप स भाषाओं में दो ही वचन होते ह—एकवचन (एक के लिए) तथा बहुवचन (एक स अधिक के लिए) कुछ भाषाओं में तीन, चार वचन भी होते ह ।

सस्कृत में तीन वचन थे—एकवचन, द्विवचन एव बहुवचन । प्राकृत—अपभ्रश में द्विवचन के बहुत कम उदाहरण मिलते ह । हिंदी में केवल दो ही वचन रह गए है—एकवचन एव बहुवचन । आधुनिक हिंदी में तो दो के स्थान पर एक सामाय वचन की प्रवृत्ति बढ़ रही ह । जसे—अपने लिए 'मैं' के स्थान पर प्राय 'हम' का प्रयोग तथा 'वह' 'वे' के स्थान पर 'वो' का प्रयोग होने लगा ह । बहुवचन दर्शाने के लिए प्राय 'लोग' अथवा 'गण' शब्द जोडा जाने लगा ह । जसे— 'हम लोग', 'आप लोग', नेतागण' आदि । हिंदी में एक ही प्रत्यय से वचन एव कारक का प्रकटीकरण होता ह । अत वचन के प्रत्ययो एव उनके विकास का विवेचन कारको क परिच्छेद में किया जा रहा ह ।

७ ५ ३ कारक एव विकारक

कारक का अथ ह क्रिया से सबध दर्शानेवाला । कारक को लेकर हिंदी के विद्वानो में बडा मतभेद ह । परपरावदी विद्वान सस्कृत के समान हिंदी में भी आठ कारक मानते ह । आधुनिक भाषावज्ञानिक हिंदी में मात्र दो (या तीन) ही कारक मानते है । वास्तव म इस विवाद का मुख्य कारण ह कारक को अग्रेजी 'केस (Case) का समानार्थी मानना । गहराई से देखा जाय तो हिंदी म आज कारक अथ द्योतक ह जबकि केस' रूप-द्योतक होता ह । उदाहरणाथ 'शेर दहाडता ह' और 'मोहन ने शेर देखा दो वाक्य है । पहले वाक्य में 'शेर , 'दहाडना क्रिया का करनेवाला ह, अत वह कर्त्ताकारक में ह । दूसरे वाक्य में देखना क्रिया का करनेवाला 'मोहन ह । 'देखना' क्रिया का प्रभाव 'शेर' पर पडता ह अत यहा शेर कम का अथ देता ह और इसलिए कम कारक में है । यदि रूप की दृष्टि से देखा जाय तो दोनों वाक्यो में 'शेर के रूप में कोई परिवतन नही हुआ है । अत 'केस की दृष्टि से दोनो वाक्यों में उसका केस समान ह ।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता ह कि हिंदी के सदभ में कारक को केस' का समानार्थी न समझा जाय । उचित यही होगा कि 'केस के लिए

किसी अन्य शब्द का प्रयोग किया जाय। 'केस' के लिए 'विकारक' (शब्द के रूप में विकार उत्पन्न करने वाला) शब्द का प्रयोग सार्थक हो सकता है।

संस्कृत में कारकों की संख्या आठ मानी गई है (कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सबंध, अधिकरण, सबोधन)। वास्तव में सबंध एवं सबोधन को कारक मानने का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि इनका क्रिया से कोई सबंध नहीं रहता। अर्थ की दृष्टि से देखा जाय तो कारकों की वही संख्या मध्यकालीन प्राकृत अपभ्रंश तथा आज की हिन्दी में है। हा, विकारक (केस) की दृष्टि से इनकी संख्या घटकर दो अथवा तीन रह गयी है। इस प्रकार क्रिया के संदर्भ में शब्द के अर्थ को इंगित करनेवाला हुआ कारक, तथा शब्द के रूप में हुए विकार को सूचित करने वाला हुआ विकारक।

विभक्ति एव परसर्ग

कारकों को इंगित करनेवाले चिह्नों को विभक्ति कहा जाता है। संस्कृत में कुछ अपवादों को छोडकर प्रत्येक कारक की अलग विभक्ति थी। संस्कृत श्लिष्ट भाषा थी अत विभक्ति शब्द का अंग बनी रहती थी तथा उसमें विकार उत्पन्न करती थी। संस्कृत के आधार पर आठ कारक माननेवाले इसीसे हिंदी में ने को, से, आदि चिह्नों को विभक्तिया कहते हैं। आधुनिक हिंदी की प्रकृति भिन्न है। उसमें ने को, आदि चिह्न शब्द का अंग नहीं बनते। फिर इन चिह्नों से शब्द के विभिन्न रूपों का पता भी नहीं चलता। उदाहरणार्थ एक ही रूप घोडे—के पीछे ने को, से, आदि तथाकथित विभक्तिया जोडी जा सकती है। असल में ये चिह्न हिंदी में अर्थसूचक रह गये है, इसीसे इन्हें परसर्ग कहना ही उचित है। विभक्ति उन चिह्नों को कहा जाय जो विकारक (केस) को इंगित करते हैं। इस प्रकार हिंदी में कारक-चिह्नों को परसर्ग एव विकारक-चिह्नों को विभक्ति कहा जाय।

हिंदी शब्दों के मुख्य दो विकारक (केस) हैं। एक तो सामान्य विकारक दूसरा तिर्यक विकारक। सामान्य विकारक में शब्द का रूप अपरिवर्तित रहता है, इसीसे इसको निर्विभक्तिक भी कहा जा सकता है। तिर्यक विकारक में शब्द का रूप बदल जाता है तथा उसके पीछे कारकीय अर्थों को अभिव्यक्त करनेवाले विभिन्न परसर्गों का प्रयोग हो सकता है। तीसरा विकारक, सबोधन है, जो कुछ ही शब्दों में भिन्न है नहीं तो उसका रूप तिर्यक के समान रहता है।

नीचे विभिन्न विकारकों एव उनके विभक्ति चिह्नों का उल्लेख किया जा रहा है।

पुल्लिंग—आकारान्त तद्भव शब्द (घोड़ा, लड़का आदि)

	एकवचन	बहुवचन
सामान्य	घोड़ा + ϕ = घोड़ा	घोड़ + ए = घोड़े
तिर्यक	घोड़् + ए = घोड़े	घोड़ + ओं = घोड़ों
संबोधन	घोड़ + ए = घोड़े	घोड़ + ओ = घोड़ो

पुल्लिंग अन्य शब्द (चोर, साधु, धोबी आदि)

	एकवचन	बहुवचन
सामान्य	चोर् + ϕ = चोर	चोर् + ϕ = चोर
तिर्यक	चोर् + ϕ = चोर्	चोर् + ओं = चोरों
संबोधन	चोर् + ϕ = चोर्	चोर् + ओ = चोरो

स्त्रीलिंग इकारांत, ईकारांत, इयांत (जाति, लड़की, बुढ़िया)

	एकवचन	बहुवचन
सामान्य	जाति + ϕ = जाति	जाति + (य) आं = जातियां
तिर्यक	जाति + ϕ = जाति	जाति + (य) ओं = जातियों
संबोधन	जाति + ϕ = जाति	जाति + (य) ओ = जातियो

ईकारांत शब्द (लड़की आदि) बहुवचन की विभक्ति से पूर्व इकारांत बन जाएंगे (लड़की > लड़कि—)। (य) श्रुति है, जो स्वरों के संयोग से उत्पन्न हुई है। बहुवचन की विभक्तियां य—से आरंभ होती हैं, अतः विभक्ति जुड़ने से पूर्व इयांत शब्दों का अंतिम—या लुप्त हो जाता है (बुढ़िया > बुढ़ि + यां = बुढ़ियां)। ϕ चिह्न इस बात का सूचक है कि यहां कोई विभक्ति नहीं है।

अन्य स्त्रीलिंग (बेंच, पुस्तक, लता आदि)

	एकवचन	बहुवचन
सामान्य	बेंच + ϕ = बेंच्	बेंच् + एं = बेंचें
तिर्यक	बेंच् + ϕ = बेंच्	बेंच् + ओं = बेंचों
संबोधन	बेंच् + ϕ बेंच्	बेंच् + ओ = बेंचो

७.५.४ विकारक विभक्तियों का विकास

शून्य विभक्ति–ϕ

शून्य विभक्ति या विभक्ति-रहित रूपों का विकास संस्कृत की प्रथमा एकवचन विभक्ति से हुआ है। संस्कृत की प्रथमा एकवचन विभक्ति सु ( ),

प्राकृत में 'ओ,' अपभ्रंश में 'उ' होकर हिन्दी में लुप्त हो गई। यथा—संस्कृत राम >प्राकृत रामो>अपभ्रंश 'रामु > पुरानी हिन्दी रामु>साधु हिन्दी राम।

सामान्य बहुवचन विभक्ति—ए (घोडा—घोडे)

इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में विवाद है। चटर्जी के विचार से इसका विकास सं० तृतीया बहुवचन एभि से हुआ है (सं० एभि >म भा आ अहि>अइ> हिंदी ए)। कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानते हैं। केलाग इसे मूल रूप में तिर्यक एकवचन—ए ही मानते हैं, जिसका प्रयोग बहुवचन में भी होने लगा। कुछ विद्वान इसके विकास की संभावना सं० की पंचमी—एभ्य सप्तमी—एषु तथा प्रथमा बहुवचन—आ से मानते हैं। इसके विकास की संभावना सं० सर्वनाम के प्रथमा बहुवचन—सर्वे में प्रयुक्त—ए से भी हो सकती है।

तिर्यक एकवचन विभक्ति—ए (घोड्+ए = घोडे को, से आदि)

बहुत विद्वानों (केलाग उदयनारायण तिवारी आदि) के विचार से इस विभक्ति का विकास सं० षष्ठी एकवचन '–स्य' तथा अधिकरण के '–स्मिन्' से हुआ है। म भा आ में इसका रूप '–ह –हिं –हि' था, जो–'अइ' में विकसित हो गया, जिससे आधुनिक हिंदी— ए' का विकास हुआ है। यों इसके विकास की अन्य भी कई संभावनाएं हैं।

सामान्य बहुवचन– आं ए (जाति (य) + आं = जातियां बेंच + ए = बेंचें)

इन विभक्तियों का विकास सं० नपुंसक बहुवचन '—आनि' से हुआ है। सं०—आनि > म भा आ आं > आइ > हिं आं ए।

तिर्यक बहुवचन—ओं (घोड + ओं = घोडों, जाति (य) + ओं = जातियों)

इसका विकास सं० षष्ठी बहुवचन—आनाम से माना जाता है। सं० आनाम>म भा आ आण >आण >अन (श्रुति के कारण)>वन> ओं, ओं।

संबोधन बहुवचन—ओ

सामान्य रूप से तिर्यक बहुवचन—ओं से भिन्न इसका विवेचन नहीं होता। भोलानाथ तिवारी के विचारानुसार सं० संबोधन शून्य 'हे (हे बालक), प्राकृत एकवचन— ओ' (हे देवो), अपभ्रंश एकवचन—'ओ' (वीरो) के प्रभाव से हिंदी— ओ' का विकास हुआ है।

७ ५ ५ हिंदी के परसर्ग

यह पहले ही बताया जा चुका है कि विभक्तियां विकारकों को इंगित करती हैं तथा परसर्ग कारकों को। हिंदी में निम्नलिखित कारकीय परसर्ग हैं

ने—यह कर्ताकारक का परसर्ग ह। जिसका प्रयोग साधु हिंदी एव पश्चिमी हिंदी की बोलियों में होता ह। 'ने' का प्रयोग कर्ता के साथ, सकमक क्रिया के भूतकालिक रूपों में होता है (यथा—राम ने खाया। श्याम ने कहा।)। 'ने' के विकास के सबध में विभिन्न मत हैं। ट्रप एव कई अय विद्वानो ने इसका सबध स तृतीया '-एन' से जोडा है (स एन > म भा आ एण > एन (वण विपयक से) > हि ने)। केलाग इसका विकास स लग्य से मानते हैं (स लग्य > म भा आ लग्गिआ > लागि > लाइ > लैं > हि नै, ने)। चटर्जी इसका सबध स 'कर्णे' से जोडते ह (स कर्ण > म भा आ कन्न > कन्नहि > हि ने)।

वास्तव में उपयुक्त समस्त मत जितने कल्पना पर आधारित ह, उतने पुष्ट प्रमाणों एव तक पर नही।

को—इस परसग का प्रयोग मुख्य रूप से कम कारक (मैंने शेर को मारा) तथा सप्रदान कारक (भिखारी रोटी को तरसता था) में होता ह। कभी-कभी इसका प्रयोग कर्ता (राम को पढना ह) तथा अय करकों में भी होता ह। ब्रज में इसका रूप 'कौ' तथा अवधी में 'क' ह।

बीम्स, हार्नले तथा अय कई विद्वान इसका विकास स कक्ष (= बगल, निकट) से मानते हं।

स कक्ष > कक्ख > काख > काह् > कहु > हि कौं > कौ > क।

इस मत से अधिक पुष्ट मत ट्रप का ह, जो इसका विकास स कृत से मानते ह। स कृत > म भा आ कितो > किओ > हि को।

के लिए—इस परसग का प्रयोग सप्रदान कारक हेतु होता ह। इसका विकास सस्कृत के दो शब्दो से माना जाता ह 'के' का विकास 'कृते' (स कृते > कए > के) से तथा 'लिए' का विकास सस्कृत 'लग्ने' से (स लग्ने > लग्गे > लिए)।

स इस परसग का मुख्य रूप से प्रयोग करण (तीर से मारा) तथा अपादान (गाव से बाहर) के लिए होता ह। इसके सिवाय कर्ता के साथ (राम से पढ़ा नही जाता) तथा कम के साथ (मोहन को राम से कुछ कहना ह) भी इसका प्रयोग होता ह। ब्रज में इसका रूप सें, सों, सो आदि ह तथा अवधी में इसका रूप 'सन' ह।

इसके विकास के सबध म भी कई मत हैं। हार्नले इसका विकास स 'अस' धातु से मानते हं जो म भा आ के सतो > सुतो हुआ। बीम्स इसका सबध स सम से जोडते हैं (स सम > सों > से।) अय विद्वान इसे स के सम-एन तथा स अधिकरण एकवचन समे से जोडते हं।

का, के, की—इन्हें संबंध कारक के परसर्ग माना जाता है। वास्तव में संबंध को कारक मानने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि यह क्रिया से संबद्ध नहीं होता।

'का' से ही 'के', 'की, के रूप विकसित हुए हैं। ब्रज में इसके रूप को, का आदि हैं तथा अवधी में इसका रूप है 'कर', 'केर' आदि। इसके विकास के संबंध में मुख्य दो मत हैं। बबर, पिशेल आदि विद्वान इसका विकास 'कायम्' से मानते हैं। सं. काय>म. भा. आ. कार>हिं. का)। हार्नले एवं बीम्स इसका संबंध सं. कृत' से जोड़ते हैं (सं. कृत >करितो>करिओ> केरो>केरा>हिं. का)। केलाग भी इसका विकास कृत से मानते हैं किंतु वे कृत >किद >कद >कअ>का की व्युत्पत्ति भी संभव मानते हैं।

में, पर – ये अधिकरण कारक के परसर्ग हैं। ब्रज में 'में' के रूप मैं, मह, माहि हैं तथा अवधी में इसके रूप हैं मह, मां आदि। 'में' का विकास प्राय. सं. मध्ये से माना जाता है (सं. मध्ये>म. भा. आ. मज्झे, माझि>हिं. माहि, में)।

'पर' को हार्नले तथा अन्य कई विद्वान सं. परे से विकसित मानते हैं (सं. परे>म. भा. आ. परि>हिं. पर) किंतु केलाग एवं कुछ अन्य विद्वान इसे सं. उपरि से जोड़ते (सं. उपरि>म. भा. आ. >परि>पइ>हिं. प, प> पर)। यह मत अधिक तर्कपूर्ण है क्योंकि पै, पइ, परि आदि रूप हिंदी की विभिन्न बोलियों में प्रचलित हैं।

संबोधन—संबंध के समान ही संबोधन को भी कारक मानना उचित नहीं है क्योंकि उसका क्रिया से कोई संबंध प्रदर्शित नहीं होता। संबोधन का कोई परसर्ग नहीं होता। संबोधन की अभिव्यक्ति शब्द के पूर्व संग जोड़कर की जाती है (जैसे—हे! राम)।

परसर्गों के समान प्रयुक्त होनेवाले अन्य शब्द

यहां यह बताना आवश्यक है कि आज जो परसर्ग हैं, वे कभी पूरे शब्द थे जो घिसकर परसर्ग बन गए हैं। आज भी ऐसे कई शब्द हैं जो परसर्गों के ही समान कारकों का अर्थ अभिव्यक्त करते हैं। इनमें से कुछ मुख्य शब्द हैं—भीतर, आगे, पीछे, ऊपर, नीचे, पास, बाहर, मध्य, ओर, साथ आदि।

७.६ सर्वनाम का रूपांतर एवं विकास

रूपांतर की दृष्टि से सर्वनाम एवं संज्ञा में बहुत-सी बातें समान हैं। दोनों में मुख्य अंतर यह है कि संज्ञा में लिंग का निर्देश रहता है किंतु सर्वनाम में लिंग का

निर्देश नहीं रहता। अत सर्वनामका रूपातर दो वचनों एव तीन विकारका म होता हैं।

७ ६ १ सवनाम के भेद

सामान्य रूप से हिंदी में सात प्रकार के सवनाम गिनाये जाते ह (पुरुष वाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक, सबधवाचक, नित्यसबध वाचक, निजवाचक)। इनमें से पुरुषवाचक के तीन भेद किए जाते ह। उत्तम पुरुष (बोलनेवाले के लिए—मैं, हम), मध्यम पुरुष (सुननेवाले के लिए—तू, तुम, आप), अन्य पुरुष (और किसी के लिए—वह, वे, यह ये)। वास्तव में पुरुष वाचक सर्वनाम ही मुख्य ह। निजवाचक (स्वय, आप, खुद) का प्रयोग अन्य सवनामों के समान सज्ञा के स्थान पर नही होता ह। निजवाचक का प्रयोग प्राय सज्ञा अथवा अन्य सर्वनाम के साथ बल के लिए होता है (मैं आप जाऊगा, राम स्वय कहेगा)। अन्य सर्वनाम रूपात्मक दृष्टि से परस्पर भिन्नता रखते हैं किंतु वाक्यात्मक सरचना की दृष्टि से अन्य पुरुष के समान ही व्यवहार करते हैं। नीचे एक ही वाक्य में विभिन्न सर्वनामों का वैकल्पिक प्रयोग (/ चिह्न द्वारा) दिखाया गया है। 'वह/ यह/ कोई/ कौन/ जो/ सो/ करता है।'

रचनागत दृष्टि से अन्य पुरुष (यह, वह) एव निश्चयवाचक (यह, वह में) में कोई अतर नहीं ह, अत इसे केवल निश्चयवाचक ही मानना चाहिए।

सर्वनामों के मुख्य तीन विकारक हैं। सामान्य विकारक (निर्विभक्तिक रूप। यथा—मैं, हम), तिर्यक विकारक (जिसके पीछे परसग का प्रयोग हो सकता ह। यथा—मुझ), सबध विकारक (जो परवर्ती सज्ञा से सबध इगित करता ह। यथा—मेरा)। सर्वनाम का एक विशेष विकारकीय रूप भी होता ह, जो तिर्यक रूप में '—ए परसग जोडकर बनता ह (यथा—मुझ + ए = मुझे)। कुछ विद्वान इसे अलग विकारकीय रूप मानते ह। वास्तव में इसे तिर्यक का ही रूप मानना चाहिए। तिर्यक रूप 'मुझ के पश्चात जसे को, से आदि परसग लगते हैं, वस ही—ए का प्रयोग भी होता ह। या भी —ए रचना की दृष्टि से 'को' का वकल्पिक परसग ह। यथा—'मुझको पता नही' या 'मुझे पता नही'। विकास की दृष्टि से अवश्य दोनों का इतिहास अलग अलग हैं।

नीचे हिंदी के विभिन्न सवनामों तथा उनके विकारकीय रूपों का निर्देश किया जा रहा ह।

(१) पुरुषवाचक

उत्तमपुरुष	एकवचन	बहुवचन
सामान्य	मैं	हम
तिर्यक	मुझ (मुझे)	हम (हमें)
संबंध	मेर्–(आ, ई, ए)	हमार्–(आ, ई, ए)
मध्यमपुरुष		
सामान्य	तू	तुम
तिर्यक	तुझ (तुझे)	तुम (तुम्हें)
संबंध	तेर्–(आ, ई, ए)	तुम्हार्–(आ, ई, ए)

(२) निश्चयवाचक

निकटवर्ती		
सामान्य	यह	ये
तिर्यक	इस (इसे)	इन (इन्हें)
दूरवर्ती		
सामान्य	वह	वे
तिर्यक	उस (उसे)	उन (उन्हें)

(३) अनिश्चयवाचक

सामान्य	कोई, कुछ	कोई
तिर्यक	किस (किसे)	किन (किन्हें)

(४) प्रश्नवाचक

सामान्य	कौन, क्या	कौन
तिर्यक	किस (किसे)	किन (किन्हें)

(५) संबंधवाचक

सामान्य	जो	जो
तिर्यक	जिस (जिसे)	जिन (जिन्हें)

(६) नित्यसंबंधवाचक

सामान्य	सो	सो
तिर्यक	तिस (तिसे)	तिन (तिन्हें)

(७) निजवाचक

स्वयं, खुद (फ़ारसी), आप (अपना, आपस) निजवाचक सर्वनाम हैं। इनका प्रयोग प्रायः अन्य संज्ञा एवं सर्वनाम शब्दों के साथ बल देने के लिए

होता है। अपनी, अपने, अपनों ये समस्त रूप 'अपना' से निष्पन्न हैं।

आदरसूचक 'आप'

'आप' शब्द का प्रयोग आदरसूचक सर्वनाम के रूप में होता है। इससे संबद्ध क्रियारूप बहुवचन में रहता है। इसका अधिक प्रयोग मध्यमपुरुष के लिए होता है (यथा—आप क्या करते हैं?) किंतु अन्यपुरुष में भी इसका प्रयोग मिलता है (यथा—प्रेमचंद हिंदी के यशस्वी उपन्यासकार हैं। विश्व उपन्यास साहित्य में आपका विशेष स्थान है)।

७.६.२ सर्वनामों का विकास

मैं—कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति सं. अहं से मानते हैं (सं. अहम्>प्रा. अम्ह>हिं. मैं) किंतु—डा० चटर्जी, केलाग, बीम्स आदि इसका विकास सं. मया से मानते हैं जो अधिक उपयुक्त है (सं. मया>प्रा. मइ>मइ>हिं. मैं)। डॉ० चटर्जी के मतानुसार 'मैं' का अनुस्वार सं. तृतीय—एन के फल स्वरूप है, जिससे अधिक विद्वान सहमत नहीं हैं।

मुझ—'मुझ' का विकास बहुमत से सं. मह्यम् से माना जाता है (सं. मह्यम>प्रा. मज्झ>अप. मज्झ हिं. मुझ)। प्रश्न उठता है कि हिंदी मुझ में 'उ' क्यों है। इसका समाधान भी उचित रूप से, यह कहकर किया गया है कि 'तुभ्यम' से विकसित 'तुझ' के सादृश्य के कारण ही यह 'मझ' के स्थान पर 'मुझ' में विकसित हुआ है।

'मुझे' 'मुझ' का ही तिर्यक रूप है, जैसा कि संज्ञा का तिर्यक रूप एकवचन में होता है (यथा लड़का लड़के)।

मेर्—(आ, ई, ए)—इसका विकास प्राकृत 'ममकेर' से माना गया है (सं. मम>प्रा. मम+केर>ममेर>हिं. मेर्—)। मेरे इसका तिर्यक रूप है, जैसे 'लड़का' का 'लड़के'।—आ, तथा ई (मेरा, मेरी) पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग द्योतक प्रत्यय हैं।

हम—इसका संबंध सीधे संस्कृत से न होकर वैदिक संस्कृत से है। वैदिक संस्कृत 'अस्मे' से इसका विकास माना गया है (अस्मे>प्रा. अम्हे>अम्ह>हम्ह>हम)।

'हमें' 'हम' का तिर्यक रूप है तथा अनुनासिकता 'में' के प्रभाव स्वरूप है। कुछ विद्वान इसका विकास प्रा. अम्हइ से मानते हैं।

हमार–(–आ, ई, ए)—इसका विकास अस्मकर से माना जाता है। कुछ विद्वान इसका विकास अम्ह करको से भी मानते हैं (अम्हकरको > अम्ह अरओ > अम्हारो > हमारो > हमारा)।

हमारे इसका तिर्यक रूप है तथा हमारा, हमारी, पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग को इंगित करते हैं।

तू—हार्नले, डॉ० चटर्जी आदि इसकी व्युत्पत्ति 'त्वम्' से मानते हैं (स त्वम > प्रा तुवं > अप तुहु > तू > हिं तू)। कुछ विद्वान इसका संबंध 'त्वया' से भी जोड़ते हैं।

तुम—बहुत विद्वान इसे तुभ्य से व्युत्पन्न मानते हैं (स तुभ्यम > तुम्ह > तुम)। कुछ इसे कल्पित रूप तुह्य से भी जोड़ते हैं।

तुझे इसका तिर्यक रूप है।

तेर्—(आ, ई, ए)—इसकी व्युत्पत्ति तव + केर से मानी गई है। तेरे इसका तिर्यक रूप है तथा तेरा, तेरी पुल्लिंग स्त्रीलिंग बोधक हैं।

तुम—कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति त्वम से तथा कुछ युष्मे से मानते हैं (युष्मे > प्रा तुम्हें > तुम्ह > तुम)।

तुम्हें—तुम का तिर्यक रूप ही तुम्हें है। कुछ विद्वान इसे तुम्हइ तथा कुछ युष्मे से भी जोड़ते हैं। अनुनासिकता 'म' के महाप्राण 'म्ह' के कारण है।

तुम्हार्–(–आ, ई, ए)—मेर–में समान ही विद्वान इसका विकास तुम्ह करको से मानते हैं (तुम्ह करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारो > तुम्हारो > तुम्हारा)। तुम्हारे, इसका तिर्यक रूप है।

यह—इसकी व्युत्पत्ति प्राय निर्विवाद रूप से स एष से मानी गई है (स एष > प्रा एसो > एहो > एहु > एह > यह)।

इस—बीम्स आदि इसका विकास 'अस्य' से मानते हैं (अस्य > अस्स > इस) तथा कुछ अन्य विद्वान इसका विकास 'एतस्य' से मानते हैं (स एतस्य > एतस्स प्रा एअस्स > इस)। 'इस' का तिर्यक रूप है, इसे।

ये—प्राय समस्त विद्वान इसे 'एते' से व्युत्पन्न मानते हैं (स एते > प्रा एए > एये > एह > ये)।

इन—इसका विकास कल्पित रूप एतानाम से माना गया है (एतानाम > स एतेषाम > एतानाम् > एआण > एण्ह > एन्ह > इन्ह > इन)। इन्हें—तिर्यक रूप है।

वह—अधिकतर विद्वान इसे 'असौ' के साथ जोड़ते हैं (स. असौ > प्रा असो > अहो > ओह > वह)। कुछ 'स' से भी इसकी व्युत्पत्ति मानते हैं।

उस—बहुमत से इसका विकास सं अमुष्य से माना गया है (अमुष्य > अमुस्स > प्रा अउस्स > हिं उस)। उसे, और तिर्यक रूपों की भांति ही तिर्यक रूप है।

वे—इसकी व्युत्पत्ति की संभावनाएं हैं—१ सं एभि > अहि > ए वह + ए > वे, २ -'ए' का प्रयोग बहुवचन के लिए वैसे ही किया गया है जैसे अन्य बहुवचनों के लिए।

उन—इसकी व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ मतों में से एक है—सं अमुष्याम > अमूनाय > अउण > उण्ह > उन। 'उन्हें', इसका तिर्यक रूप है।

कोई—एकमत से इसका विकास सं 'कोऽपि' से माना गया है (कोऽपि > कोपि > कोवि > कोइ > कोई)।

किसी—इसका संबंध अधिकतर विद्वान सं कस्यापि से मानते हैं (कस्यापि > प्रा कस्सवि > कस्सइ > किसी)।

किन्हीं—इसकी व्युत्पत्ति सं केषामपि से मानी गई है (केषामपि > कानामपि > प्रा काणपि > काणवि > काणइ > किन्ही)। इसकी व्युत्पत्ति कल्पित रूप कियानामपि से भी मानी गई है।

कौन—कुछ विद्वान इसका विकास सं कः से मानते हैं किंतु बहुत विद्वान 'कः पुनः' से इसे जोड़ते हैं (कः पुनः > कोउण > कवण > कवन > कौन)।

किस—बहुमत से विद्वान इसकी व्युत्पत्ति सं कस्य से मानते (कस्य > प्रा किस्स > किस)।

किन—इसकी संभावित व्युत्पत्ति कल्पित काना अथवा कियानाम् से मानी गई है। सं केषाम से भी इसका विकास संभव है (केषाम > प्रा काण > काण > किण > किन)।

क्या—इसके विकास की संभावना निम्नलिखित प्रकारों से हो सकती है—
१ सं किम > काइ > क्या २ सं कीदृश > केद्दही > केहो > किहा > किआ > क्या ३ किस्यक > किस्सको > प्रा किस्सा > कीआ > क्या

जो—निर्विवाद रूप से इसका विकास सं यः (यः > यो > जो) से माना गया है।

जिस—इसका विकास निश्चित रूप से सं यस्य से है (सं यस्य > प्रा जस्स > जिस्स > जिस)।

जिन—बीम्स, चटर्जी आदि इसका संबंध कल्पित रूप यानां (प्रा जाण > जिन) से जोड़ते हैं। सं येषां से भी इसकी व्युत्पत्ति दिखाई जा सकती है (येषां > जाण > जिन)। जिन्हें, इसका तिर्यक रूप है।

सा– एकमत से इसका विकास स स से माना जाता है (स स >प्रा सा>सा)।

तिस—बहुमत से इसका विकास तिस के समान ही स तस्य से माना गया है (तस्य>तस्स>तिस्स>तिस)।

तिन—इसका संबंध कल्पित रूप से जोड़ा जाता है। स तथा में भी इसका विकास माना गया है (तेषां>ताना>प्रा ताणा>ताण>तिन)।

७ ७ विशेषण का रूपांतर एवं विकास

विशेषण एक ऐसा शब्द रूप है जिसका सज्ञा से निकट का संपर्क है।

७ ७ १ रचना की दृष्टि से विशेषण के प्रकार

रचना की दृष्टि से हिंदी विशेषण दो प्रकार के हैं—(१) अविकारी (२) विकारी। अविकारी विशेषण अव्यय के बराबर है, अर्थात इनके रूप में लिंग, वचन विकारक के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता (यथा—गुणवान लड़का, गुणवान लड़के, गुणवान लड़की) विकारी विशेषण वे हैं जिनमें विशेष्य (सज्ञा) के अनुसार लिंग-वचन का परिवर्तन होता है (यथा—अच्छा लड़का अच्छे लड़के अच्छी लड़की)। आकारांत विशेषण विकारी हैं बाकी सब विशेषण अविकारी हैं। विकारी विशेषण भी पूर्ण विकारी नहीं हैं। उदाहरणार्थ सामान्य बहुवचन लड़के के साथ अच्छे लगकर अच्छे लड़के तो बनता है किंतु तिर्यक बहुवचन 'लड़को' के साथ अच्छों' जोड़कर अच्छों लड़कों' नहीं बनाया जाता। उसके लिए भी 'अच्छे' का ही प्रयोग होता है (अच्छे लड़कों)।

यहां यह बताना आवश्यक है कि संस्कृत में विशेषण विशेष्य (सज्ञा) के लिंग, वचन, कारक में पूर्ण संबंध रहता था। म भा आ में यह प्रवृत्ति रही तो सही किंतु शिथिलता भी आरंभ हो गई थी। आधुनिक भाषाओं—हिंदी आदि में विशेषण की यह स्थिति है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है।

७ ७ २ अर्थ की दृष्टि से विशेषण के भेद

अर्थ की दृष्टि से हिंदी विशेषण चार प्रकार के माने जाते हैं।

(१) गुणवाचक (अच्छा, छोटा, लाल आदि)।

(२) संख्यावाचक (एक, दस, डेढ़ आदि)।

(३) परिमाणवाचक (थोड़ा-थोड़ा दूध, कितना कितना पानी आदि)
(४) सर्वनामक (यह-यह काम, वह-वह लड़का आदि) ।

७ ७ ३ विशेषण की अवस्थाएं

संस्कृत में विशेषण की तीन अवस्थाओं का प्रयोग होता था । सामान्य अवस्था (सुंदर), तुलनासूचक अवस्था (सुंदरतर) एवं उत्तमतासूचक अवस्था (सुंदरतम)। हिंदी में इन तीन अवस्थाओं का प्राय प्रयोग नहीं होता । कुछ शब्दों में ही इनका प्रयोग दिखाई पड़ता है। फारसी के प्रभाव से, कुछ फारसी शब्दों में तुलना एवं उत्तमता की अवस्थाओं का प्रयोग होता है। यथा—बद बदतर, बदतरीन ।

७ ७ ४ विशेषणों का विकास

विकास की दृष्टि से देखा जाय तो आकारांत विशेषणों की विभक्तियां –आ, –ए, –ई आकारांत संज्ञा शब्दों की –आ, –ए, –ई विभक्तियों से भिन्न नहीं हैं । अत विशेषण की इन विभक्तियों की कोई अलग कहानी नहीं है । आकारांत के सिवाय अन्य विशेषणों का तो रूपांतर ही नहीं होता ।

सर्वनामक विशेषण रूपात्मक दृष्टि से सर्वनाम ही हैं । केवल वाक्य में उनका व्यवहार विशेषण के समान है । अत उनका विकास सर्वनाम से भिन्न नहीं है ।

परिमाणवाचक विशेषण एक प्रकार से संख्यावाचक विशेषण ही है । अंतर केवल इतना ही है कि परिमाणवाचक विशेषण राशि या समूहसूचक पदार्थों को इंगित करते हैं । उदाहरणार्थ 'कितने आदमी' में 'कितने' संख्यावाचक विशेषण है और 'कितना दूध' में 'कितना' परिमाणवाचक विशेषण है । इस प्रकार से देखा जाय तो संख्यावाचक विशेषणों का इतिहास ही उल्लेख्य है ।

संख्यावाचक विशेषणों के भेद

रचना एवं अर्थ की दृष्टि से संख्यावाचक विशेषणों के निम्नलिखित भेद हो सकते हैं —

(१) *पूर्ण संख्यावाचक (एक, दो, आदि)* ।
(२) अपूर्ण संख्यावाचक (आधा, डेढ़ आदि) ।
(३) क्रमवाचक (पहला, दूसरा आदि) ।
(४) आवृत्तिवाचक (दुगुना, तिगुना आदि) ।

(क) पूर्णसंख्यावाचक

रचना की दृष्टि से पूर्णसंख्यावाचक विशेषण दो प्रकार के हैं—मूल एवं यौगिक। मूल संख्याएं वे हैं जो स्वतन्त्र अथवा एकल हैं, और यौगिक संख्याएं वे हैं जो दो संख्याओं के योग से बनी हैं (*यथा—बत्तीस = ब + तीस*)। १ से लेकर १० तक तथा १००, ये संख्याएं मूल हैं। शेष संख्याएं यौगिक हैं। यौगिक संख्याएं १ से लेकर ९ तक की इकाई संख्याओं के पीछे दहाई सूचक संख्या जोड़कर बनाई जाती हैं। यौगिक संख्या में प्रयुक्त इकाई संख्याओं के विभिन्न रूप प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ तीन (३) मूल संख्या के यौगिक संख्याओं में ते–(तेरह) त–(तैंतीस), ति–(तितालीस) तिर–(तिरसठ) आदि रूप भी प्राप्त होते हैं। मूल संख्याओं के इन विभिन्न रूपों का विकास प्रायः एक ही स्रोत से हुआ है। नीचे पूर्णसंख्याओं का विकास दर्शाते समय, यथास्थान उनके भिन्न स्रोतों का भी संकेत कर दिया गया है।

एक—सं० एक (*एक*)>प्रा० एक्क>हिं० एक। *यौगिक संख्याओं में* प्रयुक्त रूप—'*ग्या*'—(ग्यारह), सं० एकादश>म० भा० आ० एगारह>एआरह>हिं० ग्यारह, '*इक्*'—(इकतीस) सं० एक (बलाघात के कारण) >इक।

दो—सं० द्वौ>प्रा० दो>हिं० दो। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप '*बा*'—(बाईस) का विकास सं० द्वौ के '*व*' व्यंजन से हुआ है। द्वौ से विकसित अन्य रूप हैं—दो—(दोपहर), दु—(दुगुना) आदि।

तीन—सं० *त्रीणि*>प्रा० *तिण्णि*>*तिन्नि*>*तीन*। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप '*ते*–' (सं० त्रयोदश>म० भा० आ० तेरह>तेरह), '*तैं*–' (सं० त्रयस्त्रिंशत>म० भा० आ० तेत्तीसा>तैंतीस), '*ति*–' (सं० त्रिचत्वारिंशत>म० भा० आ० तेआलीसा>तितालीस) और '*तिर*–' (सं० त्रिपञ्चाशत>म० भा० आ० तेवण>तिरपन) आदि

चार—सं० चत्वारि>प्रा० चत्तारि>च्यारि>चार। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप—'*चौ*–' (सं० चतुर्दश>म० भा० आ० चउद्दह>हिं० चौदह), '*चौं*–' (*सं० चतुस्त्रिंशत>म० भा० आ० चौंतीस>हिंदी चौंतीस*) *आदि*। सबका विकास '*चतुर*–' से हुआ है।

पांच—सं० पञ्च>म० भा० आ० पंच>पांच। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप '*पन*–', '*वन्*', '*अन्*–' आदि सं० पञ्च से विकसित हैं (*यथा—सं० एक* पञ्चाशत>एक्कावण्ण>हिं० इक्कावन)।

छ या छह्—स षट्>प्रा छह्>छ या छह्। किंतु कुछ विद्वान षट् से छ की व्युत्पत्ति असंभव मानते हैं, अत प्रा क्षट्, क्षप् या क्षक् रूप की कल्पना की गई है। यौगिक संख्याओं में इसका रूप 'छ–' मिलता है। सोल्ह, छियालीस आदि रूप अपने समानांतर संस्कृत रूपों से विकसित हैं (स षोडश>प्रा सोलह>सोलह)।

सात—स सप्त>प्रा सत्त>सात। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त इसके रूप भी समानार्थी संस्कृत शब्दों से विकसित हुए हैं (स सप्तत्रिंशत>प्रा सत्ततीस>सैंतीस)।

आठ—स अष्ट>म भा आ अट्ठ>हिं आठ। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप अट्ठ, अठा आदि इसी से विकसित हुए हैं (अट्ठ>अट>अड>अड)।

नौ—स नव>म भा आ नउ>हिं नौ। अधिकांश यौगिक संख्याओं में इसका रूप 'उन्–' प्रयुक्त होता है (उन्नीस, उन्तीस) जो स ऊन=एक कम से संबंधित है (स ऊन>प्रा ऊण>उन्)।

दस—स दस>प्रा दस>दस। यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त इसके विभिन्न रूप दह्–, दस–, रह्–, ल्ह्–आदि प्रा दस से विकसित हुए हैं (दस>दह>डह>डह>रह>ल्ह)।

बीस—स विंशति>वीसति>प्रा बीस>हिं बीस। विभिन्न रूपों में प्रयुक्त –बीस, '–विस, '–व्वीस '–ईस' या '–इस' बीस से ही विकसित है। –व्व–' बलाघात के कारण हैं तथा '–ईस' या इस' 'ब' के लोप के कारण।

तीस—स त्रिंशत>तिंसति>प्रा तीस>तीस। यौगिक संख्याओं में इसका प्रयोग '–त्तीस, '–तिस' आदि होता है जो तीस से ही व्युत्पन्न हैं।

चालीस—स चत्वारिंशत>चत्ताळीसति>चत्तालीस>चालीस। इसके अन्य रूप चालिस, तालीस, आलीस आदि हैं। तालीस' आदि चत्तालीस' में त्त के बलाघात के कारण 'च के लोप से तथा आलीस च' के लोप से बने हैं।

पचास—स पचाशत>प्रा पचास>पचास। इसके यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप 'वन्' '–पन्' आदि इस प्रकार से बने हैं—पचाशत>पञ्चासा>पणासा>पण>पन>वन्।

साठ—स षष्टि>सट्ठि>सट्ठ>साठ। इसके दो ही रूप '–साठ', '–सठ प्रचलित हैं।

सत्तर—स सप्तति>सत्तति>प्रा सत्तरि>सत्तर। यौगिक संख्याओं में इसके –सत्तर' और –हत्तर (स>ह) रूप प्रयुक्त होते हैं।

अस्सी—सं. अशीति>अशीति>प्रा. असीइ>अस्सी। '–आसी' ही इसका यौगिक संख्याओं में प्रयुक्त रूप है।

नब्बे—सं. नवति>नवुति>प्रा. णवइ>णवदि>नब्बे। यौगिक संख्याओं में शब्द की दीर्घता के कारण '–ए' पर बल कम हो जाता है और प्रयुक्त रूप हो जाता है—नबे, नवे।

सौ—सं. शत>सत>प्रा. सअ>सय>सउ>सौ।

हजार—यह फारसी शब्द है। इसका समानार्थी संस्कृत शब्द सहस्र है। यों सहस्र एवं हजार एक ही शब्द से विकसित हैं। सहस्र से विकसित बोलचाल का शब्द सहस है।

लाख—सं. लक्ष>प्रा. लक्ख>लाख।

करोड़—वैदिक संस्कृत में इसका समानार्थी शब्द 'अर्बुद' था। 'करोड़' शब्द का विकास सं. 'कोटि' से हुआ है (कोटि>प्रा. कोडि>करोड़)।

अरब—इसकी व्युत्पत्ति सं. अर्बुद से है। यद्यपि संस्कृत में अर्बुद का अर्थ '१० करोड़' था और हिंदी में अरब '१०० करोड़' के लिए होता है।

खरब—यह सं. खर्व से व्युत्पन्न है। खर्व का प्रयोग संस्कृत में १० अरब के लिए होता था और हिंदी में खरब १०० अरब का अर्थ अभिव्यक्त करता है।

(ख) अपूर्ण संख्यावाचक

पाव (१/४)—सं. पाद>प्रा. पाओ>पाउ>हिं. पाव।

चौथाई (१/४)—सं. चतुर्थिक>प्रा. चउत्थिअ>चौथाई।

तिहाई (१/३)—सं. त्रिभागिका>प्रा. तिहाइआ>तिहाई।

अथवा, सं. तृतीया>प्रा. तईअ>तीआई>तिहाई।

आधा (१/२)—सं. अर्धक>प्रा. अद्धअ>आधा, अद्धा।

पौन (३/४)—सं. पादोन>प्रा. पाओण>पाउण>पौन।

पौना तथा पौने इसी के रूपांतर हैं।

सवा (+ १/४)—सं. सपाद>प्रा. सवाअ>सवा।

डेढ़ (१½)—सं. द्व्यर्ध>प्रा. दिअड्ढ>डेढ़।

अढ़ाई, ढाई (२½)—सं. अर्धतृतीय>प्रा. अड्ढइअ>अढ़ाई, ढाई।

साढ़े, साढ़ (+ १/२)—सं. सार्ध>प्रा. सड्ढ>साढ़, साढ़े।

ये सभी पूर्ण संख्याओं के आगे ये अपूर्ण संख्याएँ जोड़ी जाती हैं (यथा—सवा तीन, साढ़े चार, पौने छह आदि)।

(ग) क्रमवाचक

पहला—स प्रथम>(पढम + इल्ल) पढि ल>पहिल। पिशल आदि इसका विकास काल्पनिक रूप 'प्रथिल' से मानते हैं।

दूसरा—इसका संबंध संस्कृत द्वितीय से नहीं है। -सरा' का विकास सृत ' से माना जाता है यद्यपि यह भी कोई निश्चित मत नहीं है।

तीसरा—यह भी 'दूसरा' के समान त्रिसृत ' से व्युत्पन्न माना जाता है।

चौथा—स चतुर्थक >प्रा चउत्थआ>चउत्थअ>चउत्था>चोत्थअ> चौथा अथवा स चतुर्थ>प्रा चउत्थ>चौथा।

पांचवां—इस का विकास -म ' से माना गया है (पंचम >पांचवां)। कुछ इसका विकास '-तम' से भी मानते हैं (पंचतम>पांचवां)।

छठा—इसका संबंध स षष्ठ से जोड़ा जाता है।

अन्य सभी संख्याओं में '-वां जोड़कर ही उनके क्रमवाचक रूप बनाए जाते हैं।

(घ) आवृत्तिवाचक (गुणात्मक)

दुगुना, तिगुना आदि सभी आवृत्तिवाचक संख्याएं -गुना जोड़कर बनाई जाती हैं। '-गुना' का विकास -गुण अथवा -गुण>क से माना जाता है (गुण>क>प्रा गुणअ>गुणा>गुना)।

उपर्युक्त संख्यावाचक शब्दों के अतिरिक्त गणना के लिए निम्नलिखित संख्यावाची शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है।

(ङ) समूहवाचक

कोड़ी (= २०) इसका विकास-स्रोत मुण्डा शब्द 'कोल' है।

जोड़ा—यह संस्कृत युटक से व्युत्पन्न है।

दर्जन (= १२)—इसका संबंध अंग्रेजी शब्द Dozen से है।

गुरस (= १२ दर्जन)—इसकी व्युत्पत्ति अंग्रेजी शब्द Gross से हुई है।

सैकड़ा—यह संस्कृत शतकृत शब्द से विकसित है।

(च) संज्ञावाचक

इक्का—स एकक से।

दुक्का, दुग्गी—स द्विक से।

तिया—स तृतीयक से।

चौका—स चतुष्क + क>चउक्कअ>चौका, चौक।

इसी प्रकार अन्य संख्याएं पंचक, षट्क, सप्तक—आदि से बनी हैं।

७ ८ क्रिया का रूपांतर एवं विकास

व्याकरणात्मक संरचना में क्रिया सबसे महत्वपूर्ण शब्द-रूप है।

भारतीय आर्यभाषाओं के विकास का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन भाषाओं के विकास की कहानी एक प्रकार से सरलीकरण एवं श्लिष्ट से अश्लिष्ट होने की कहानी है।

वैदिक-संस्कृत में क्रिया का रूपांतर अत्यंत जटिल था। क्रियाएं दो पदों (आत्मने परस्मै) तथा दस गणों (भ्वादि, अदादि जुहोत्यादि दिवादि स्वादि तुदादि रुधादि क्र्यादि तथा चुरादि) में वर्गीकृत थीं। क्रिया का रूपांतर दस लकारों (काल) पांच भावों, तीन वाच्यों तीन पुरुषों एवं तीन वचनों में होता था।

म भा आ (पालि प्राकृत अपभ्रंश) में क्रिया के रूप कम हो गए तथा भाषा श्लिष्टता से अश्लिष्टता की ओर बढ़ने लगी। हिंदी तक पहुंचते-पहुंचते भाषा की प्रकृति बहुत बदल गई तथा क्रिया रूपों में यथेष्ट कमी हो गई। आज हिन्दी में पदों एवं गणों का कोई भेद नहीं है। क्रिया का रूपांतर मुख्य रूप से दो लकारों तीन पुरुषों, दो वचनों एवं दो लिंगों के आधार पर होता है (संस्कृत में क्रियागत लिंगभेद नहीं था)।

७ ८ १ धातु

क्रिया के अध्ययन के तीन भाग हैं धातु स्तंभ एवं क्रियारूप। धातु से स्तंभ की रचना होती है और स्तंभ से क्रियारूप का निर्माण होता है।

धातु से तात्पर्य उस मूल अंश से है जो समस्त संबद्ध क्रियारूपों में विद्यमान रहता है। उदाहरणार्थ 'मिलो' 'मिला' 'मिलेंगे', मिलू आदि रूपों में 'मिल' मूल अंश विद्यमान है, अतः मिल धातु है। किसी भी क्रियारूप में से समस्त प्रत्यय हटा देने से जो अंश बचता है, वही धातु होता है। हिंदी में अनादर मध्यमपुरुष एकवचन (तू) के साथ प्रयुक्त क्रियारूप में जब कोई प्रत्यय न लगा हो तब वह धातु के बराबर होता है। यथा—खा, पी, उठ आदि।

७ ८ १ १ धातुओं के प्रकार

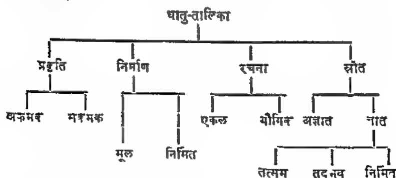
धातुओं का विवेचन अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है

प्रकृति—प्रकृति की दृष्टि से धातु दो प्रकार के होते हैं—अकर्मक (जो कर्म का ग्रहण नहीं करते। यथा—उठ, बैठ आदि) तथा सकर्मक (जिनमें कर्म का विधान हो सकता है। यथा—खा, पी लिख आदि)।

निर्माण—निर्माण की दृष्टि से धातुओं को दो वर्गों में रख सकते हैं मूल (जिनका निर्माण किसी अन्य शब्दरूप से नहीं हुआ है। यथा—खा, कर) तथा निर्मित (जो किसी अन्य शब्दरूप से बनाई गई है। यथा—लात' से लतिया—ना आदि)।

रचना—रचना की दृष्टि से भी धातुएं दो प्रकार की हैं—एकल (जो मूल रूप से एक ही अर्थपूर्ण इकाई से बनी है। यथा—कर<$\sqrt{}$कृ) तथा यौगिक (जो मूल रूप से एक से अधिक अर्थपूर्ण इकाइयों से बनी है। यथा—हिचक स उप + विष्ट से बनी हुई है)।

स्रोत—स्रोत की दृष्टि से धातुएं दो प्रकार की है—अज्ञात (जिनके मूल स्रोत का पता नहीं है। यथा—बटोर, पल्ट आदि)। एवं ज्ञात (जिनके मूल स्रोत का पता है। यथा—कर, कह आदि)। ज्ञात धातुएं तीन प्रकार की हैं—तत्सम (जो बहुत कम मात्रा में है तथा प्राय संस्कृत से उधार ली गयी है। यथा—रच) तद्भव (जो हिन्दी में परंपरा से आयी है। यथा—गरज निकल उठ आदि) तथा निर्मित (जिनकी रचना हिंदी में हो गई है)। इन निर्मित धातुओं में से जो संज्ञा, विशेषण आदि में से बनायी गयी है उन्हें 'नामधातु' कहते हैं (यथा—फिल्म से फिल्मा—ना, गर्म से गर्मा—ना आदि) जो धातुएं ध्वनि अथवा स्थिति की पुनरावृत्ति से बनती हैं उन्हें ध्वन्यात्मक अथवा अनुकरणात्मक कहते हैं (यथा—भन से भनभना—ना, चह से चहचहा—ना आदि)।



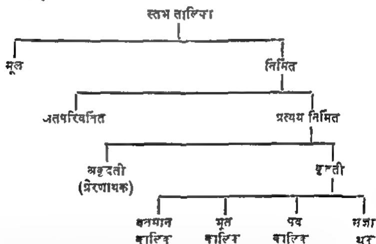
७.८.२ रूप

जैसे नाम शब्द (संज्ञा सर्वनाम विशेषण) पद बनने से पूर्व प्रातिपदिक होते हैं (शब्द जब विभक्ति-युक्त होता है तब पद कहलाता है। विभक्ति रहित

होने पर उसे प्रातिपदिक कहा जाता है। वाक्य में पद ही प्रयुक्त होता है) वैसे ही क्रिया शब्द क्रियारूप होने से पहले स्तभ (Stem) रहता है। स्तभ में जब परपवाचक प्रत्यय जुड़ता है तब क्रियारूप बनता है। स्तभ धातु एवं क्रियारूप के मध्य की स्थिति है। स्तभ की इस स्थिति को न समझने के कारण ही हिंदी की व्याख्या करनेवाले अनेक विद्वानों ने खा धातु से बने 'खिलाना' एवं खिलवाना रूपों को भी धातु माना है। वास्तव में खिला-' एवं खिलवा-' स्तभ हैं जो खा धातु में प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड़कर बनाए गए हैं। यह गलती इसलिए भी होती है क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि किसी भी क्रिया से 'ना' हटा देने से शेष अंश धातु रहता है जो सही नहीं है।

७ ८ २ १ स्तभ के प्रकार

रचना की दृष्टि से स्तभ के कई भेद हो सकते हैं जो स्तभ तालिका में दर्शाए गए हैं।



मूल स्तभ धातु के अनुरूप होते हैं (जैसे आज्ञार्थ मध्यमपुरुष एकवचन में)। निर्मित स्तभों में से कुछ धातु के अतर-परिवर्तन से बनते हैं। यथा—फूट-फाड़, पिट-पीट आदि। इन्हें अतपरिवर्तित कहा गया है। दूसरे प्रकार के स्तभ, प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं। इनमें से कुछ अकृदती होते हैं और दूसरे कृदती। कृदती से तात्पर्य ऐसे रूप से है जिसके अत में कृत प्रत्यय लगा रहता है। इनका प्रयोग क्रिया रूपों के अतिरिक्त संज्ञा, विशेषण एवं क्रिया विशेषण आदि

रूपों में भी होता है। अद्भुत्नी स्तमा में मुख्य प्रेरणार्थक रूप है, जो धातु में -आ एव -वा प्रत्यय जोडकर बनाए जाते है। जैसे—लिख, लिखा, लिखवा पढ़, पढ़ा, पढ़वा। एकाक्षरी स्वरांत धातुओं में प्रेरणार्थक प्रत्यय जोड़ने से पूर्व उन्हें व्यंजनांत कर देना पड़ता है। यथा—खा>खिल, खिला खिलवा पी> पिल, पिला, पिलवा।

हिंदी प्रेरणार्थक क्रियाएं संस्कृत प्रेरणार्थक क्रियाओं से पूर्णत भिन्न है अतः उनका विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। प्रेरणार्थक प्रत्यय -व. का संबंध स णिच प्रत्यय के द्वित्तरूप आप-आप् से जोड़ा जाता है (आप-आप>म भा आ आवाप>हिं वा) प्रेरणार्थक प्रत्यय से पूर्व के 'ए' का संबंध स आज (स पालय) से जोड़ने का प्रयत्न किया जाता है।

वर्तमानकालिक अथवा अपूर्ण कृदंत—इस कृदंत की रचना धातु में -त प्रत्यय जोड़कर की जाती है। यथा—खा+त=खात (+आ-ई,-ए)।

हिंदी वर्तमानकालिक कृदंत का विकास संस्कृत के वर्तमानकालिक कृदंत रूपों से हुआ है। -त' प्रत्यय का संबंध स अत से जोड़ा जाता है (स चलन्>प्रा चलतो>हिं चलता) किंतु यह विवेचन संतपूर्ण नहीं लगता क्योंकि चलन से चलता का विकास अस्वाभाविक है।

भूतकालिक अथवा पूर्ण कृदंत—इस कृदंत की रचना धातु में -आ जोड कर की जाती है। यथा—चल+आ=चला। -आ प्रत्यय का संबंध संस्कृत के कृत प्रत्यय क्त (त) से है (स चलित>म भा आ चलिओ>चलिआ चल्अि>हिं चला)।

पूर्वकालिक कृदंत—इस कृदंत की रचना धातु में शून्य ϕ के, कर करके प्रत्यय जोड़कर की जाती है (यथा—कह आया, कहके आया कहकर आया कहकर के आया)। शून्य विभक्ति त्वा का विकास स पूर्वकालिक कृदंत रूपों से हुआ है (स दृष्ट्वा>म भा आ देक्खिअ>हिं देख)। 'कर' का संबंध स क$\sqrt{}$कृ से जोड़ा जाता है।

संज्ञार्थक कृदंत—धातु में ना' जोड़ने से इस कृदंत की रचना होती है। (यथा—चल+ना=चलना)। 'ना के विकास के संबंध में दो मत है। बीम्स आदि विद्वान इसका विकास स कृदंत प्रत्यय ल्युट (अनीय) से मानते है (स करणीय>म भा आ करणअ>हिं करना)। चटर्जी के विचार से इसका विकास स प्रत्यय -अन से हुआ है (स चलनम>म भा आ चलनअ >हिं चलना)।

सामान्य कृदन्त को सामान्य क्रियार्थक भी कहा जाता है क्योंकि सामान्य रूप में –ना जोड़कर ही क्रिया का संकेत किया जाता है। जैसे—खाना, पीना, उठना बैठना आदि। शब्दकोश में भी इसी रूप में क्रिया का उल्लेख किया जाता है।

७ ८ ३ सहायक क्रियाएं

हिन्दी में क्रिया रूपों की रचना प्रायः कृदन्तों एवं सहायक क्रियाओं की सहायता से होती है। कृदन्तों का वर्णन पूर्व के परिच्छेद में हो चुका है अतः यहां सहायक क्रियाओं का विवेचन किया जा रहा है।

वह क्रिया जो कार्य का विधान करती है, उसे मुख्य क्रिया कहा जाता है। मुख्य क्रिया द्वारा अभिव्यक्त कार्य की स्थिति, पूर्णता समय आदि की जानकारी देनेवाली क्रिया, सहायक क्रिया कहलाती है। उदाहरणार्थ मोहन खाता है। इस वाक्य में मुख्य कार्य 'खाना' है। इस मुख्य कार्य की सूचना 'खा' धातु से बने रूप खाता से मिलती है, अतः यहां खाना मुख्य क्रिया है। 'होना' क्रिया के रूप 'है' से यह जानकारी मिलती है कि कार्य हो रहा है। अतः होना यहां पर सहायक क्रिया है।

हिंदी में मुख्य रूप से निम्नलिखित सहायक क्रियाएं प्रयुक्त होती हैं—होना *उठना, करना, चाहना, चुकना, पड़ना, डालना, देना, रहना, बैठना, बनना, लगना, जाना, आना, सकना।*

इन क्रियाओं में से सकना क्रिया को छोड़कर शेष सभी क्रियाएं मुख्य क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त होती है। उदाहरणार्थ वह उठा वह कह उठा' दो वाक्य हैं। पहले वाक्य में उठना मुख्य क्रिया है और दूसरे वाक्य में सहायक क्रिया। 'सकना' क्रिया केवल सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती है। 'होना' क्रिया सबसे विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है। अन्य क्रियाओं के समान इससे किसी कार्य का संकेत नहीं मिलता, इससे केवल किसी स्थिति के होने का संकेत मिलता है। फिर यह क्रिया हिन्दी की काल रचना में बहुत अधिक सहायक होती है। अतः उसके मुख्य रूपों एवं उनके विकास का वर्णन आवश्यक है।

(होना क्रिया)

वर्तमान		एकवचन	बहुवचन
	उ	हूं	हैं
	म	है	हो
	अ	है	हैं

अथ

(होना क्रिया

भूत	उ म अ	था, थी	थे, थी
भविष्य	उ	हूगा (हूगी)	होंगे (हागी)
	म	होगा (होगी)	होगे (होगी)
	अ	होगा (होगी)	होंगे (हागी)
सभाव्य			
वतमान	उ	होऊ	हा, होवें
	म	हो, होवे	हो, हावा
	अ	हो, होवे	हा, हावें
सभाव्य			
भूत	उ म अ	होता (होती)	होते (होती)

(उ = उत्तम पुरुष म = मध्यम पुरुष, अ = अन्य पुरुष)

७ ८ ४ क्रिया रूप

हिंदी क्रिया द्वारा अभिव्यक्त व्याकरणिक कोटिया है–लिंग, वचन, पुरुष अथ, वाच्य प्रयोग एव काल। होना' क्रिया का छाडकर अन्य क्रियाओ में लिंग एव वचन सूचक प्रत्यय वे ही ह जिनका वणन आकारात सज्ञा शब्दो के रूपातर में किया गया ह (आ, ए ई)। पुरुष का सकेत वचन के प्रत्यय ही करते ह। अत यहा इनके विवेचन की गुजाइश नही ह।

७ ८ ४ १ अर्थ

अथ से तात्पय क्रिया की स्थिति से ह। हिंदी में पाच प्रकार के अथ ह—निश्चयाथ (वह गया) सभाव्याथ (शायद वह जाय), सदेहाथ (वह गया हो), हेत्वाथ (यदि वह गया) और आज्ञाथ (जाओ)।

हिंदी के ये प्रयोग संस्कृत के प्रयोगों से भिन्न एवं स्वतंत्र हैं। इनमें से कुछ प्रयोगों का संकेत यहाँ 'वाक्य' तथा जैसे .... की सहायता से होता है। .... गये हैं जिनका उल्लेख कृदन्त अथवा काल के विवेचन में हो जाता है।

७ ८ ४ २ वाच्य एवं प्रयोग

कर्ता कर्म एवं क्रिया के परस्पर संबंध की स्थिति एवं आधार को वाच्य कहते हैं। इस स्थिति के अनुसार वाक्य की रचना को प्रयोग कहा जाता है।

हिंदी में तीन वाच्य एवं तीन प्रयोग हैं। कर्तृवाच्य कर्तृ प्रयोग—इसमें क्रिया कर्ता के अनुसार परिवर्तन होता है (यथा—लड़का आया, लड़के आए लड़की आयी)।

कर्म वाच्य—कर्मणि प्रयोग—इसमें क्रिया कर्म के अनुसार परिवर्तित होती है (यथा—लड़के ने आम खाया लड़के ने रोटी खायी)।

भाववाच्य–भावे प्रयोग—इसमें क्रिया न तो कर्ता के अनुसार बदलती है और न ही कर्म के अनुसार। क्रिया सदैव एकवचन पुल्लिंग रूप में रहती है (यथा– लड़के ने साप को मारा लड़की ने साप को मारा, लड़कों ने साप को मारा)।

वास्तव में रूपात्मक दृष्टि से हिंदी में प्रायः कर्तृवाच्य का ही प्रयोग होता है। ऊपर जो कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के उदाहरण दिये गये हैं उनमें भी वास्तव में कर्ता ही प्रधान है तथा वह अपने (कर्ता के) स्थान पर भी स्थिर है। कर्मवाच्य में कर्ता का स्थान कर्म को लेना चाहिए तथा उसकी प्रधानता भी होनी चाहिए। हिंदी में कर्मवाच्य की ऐसी स्वतंत्र रचना नहीं होती। जाना क्रिया की सहायता से ऐसी वाक्यात्मक रचना बनायी जाती है। जैसे 'मुझसे आम खाया जाता है', मुझसे रोटी खायी जाती है।' ऐसी ही रचना जो अकर्मक क्रिया से बनायी जाती है वह भावे प्रयोग होती है। जैसे—'मुझसे चला नहीं जाता'। हिंदी का कर्मवाच्य एवं भाववाच्य संस्कृत के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य से भिन्न है तथा इनका विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है।

७ ८ ४ ३ काल

क्रिया के समय को 'काल' कहा जाता है। रचना की दृष्टि से काल दो प्रकार के हैं—मूल एवं यौगिक। एक ही धातु से निर्मित काल मूलकाल कहलाता है तथा एक से अधिक धातुओं से निर्मित काल को यौगिक काल कहा जाता है।

मूल काल

मूलकाल दो प्रकार के है—अकृदंती एवं कृदंती। अकृदंती काल वे हैं जिनमें कृदंत का प्रयोग नही होता। अकृदंती काल दो है—संभाव्य वर्तमानकाल एवं आज्ञार्थ वर्तमानकाल। नीचे चल धातु के साथ दोनों के रूप दिये जाते है। हिंदी में आज्ञार्थ के रूप केवल मध्यम पुरुष में ही बनते है।

(उ=उत्तम पुरुष, म=मध्यम पुरुष, अ=अन्य पुरुष)

संभाव्य वर्तमान	(चलना)	
	एकवचन	बहुवचन
उ	चलूं	चलें
म	चले	चलो
अ	चले	चलें
आज्ञार्थ वर्तमान		
म	चल	चलो

सभी प्रथ रूपों का विकास संस्कृत के वर्तमानकाल के रूपों से माना जाता है (यथा—सं चलामि>चलउं>हिं चलूं)। बीम्स एवं दूसरे कई विद्वान ऐसा मानते है कि सं के एक वचन से हिंदी बहुवचन एवं सं बहुवचन से हिंदी एकवचन का विकास हुआ है।

सं चलामि> *चलाइं>चलें>हिं चलें, सं चलाम >चलामु> चलौं>चलूं।

हिंदी आज्ञार्थ में केवल मध्यम पुरुष एकवचन 'चल' ही भिन्न है। ग्रियर्सन इसका विकास सं वर्तमान के रूप 'चलसि' से मानते है। बीम्स इसका संबंध सं आज्ञार्थ से मानते है।

यहां भविष्य काल (चलूंगा, चलेंगे आदि) का उल्लेख करना आवश्यक है। यह काल रचना की दृष्टि से मूल है किंतु स्रोत की दृष्टि से इसका विकास संभाव्य एवं कृदंत के यौगिक रूप से हुआ है। चलूं + ग (सं गम का अवशेष) = चलूंग् (आ)।

मूल कृदंती काल वे है जिनमें कृदंत ही क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं। मूल कृदंती काल निम्नलिखित हैं—भूतकाल (भूतकालिक कृदंत)—मै चला, हम चले, आदि। संभाव्य भूतकाल (वर्तमानकालिक कृदंत)—मैं चलता, हम चलते। आज्ञार्थ भविष्यकाल (क्रियार्थक कृदंत)—तू चलना, तुम चलना।

यौगिक काल

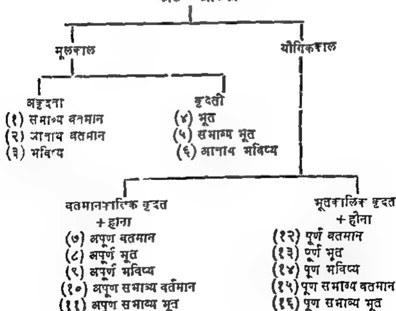
यौगिक काल दो प्रकार के हैं—वर्तमानकालिक कृदंत से निर्मित एवं भूतकालिक कृदंत से निर्मित।

वर्तमानकालिक कृदंत + होना क्रिया

अपूर्ण वर्तमानकाल—चलता हूं, चलते हो, आदि।
अपूर्ण भूतकाल—चलता था, चलते थे, आदि।
अपूर्ण भविष्यकाल—चलता हूगा, चलते होंगे, आदि।
अपूर्ण संभाव्य वर्तमानकाल—चलता होऊं चलता हो आदि।
अपूर्ण संभाव्य भूतकाल—चलता होता, चलते होते, आदि।

भूतकालिक कृदंत + होना क्रिया

पूर्ण वर्तमानकाल—चला हूं चले हैं आदि।
पूर्ण भूतकाल—चला था चले थे, आदि।
पूर्ण भविष्यकाल—चला हूगा, चले होंगे आदि।
पूर्ण संभाव्य वर्तमानकाल—अगर चला हो अगर चले हों आदि।
पूर्ण संभाव्य भूतकाल—अगर चला होता, अगर चले होते, आदि।



७ ८ ५ क्रियाबंध (संयुक्त क्रिया)

क्रियाबंध (Verb Phrase) से तात्पर्य ऐसी क्रियार्थक रचना से है जिसमें एक से अधिक अर्थ व्यंजक तत्व मिलकर एक क्रिया का अर्थ दें। सामान्य रूप से इस प्रकार की रचना को 'संयुक्त क्रिया' कहा जाता है जो किसी सीमा तक भ्रामक है, क्योंकि 'संयुक्त क्रिया' से यह प्रकट होता है कि इस रचना में एक से अधिक क्रियाएं हैं, जब कि इस प्रकार की रचना में सदैव एक से अधिक क्रियापद ही नहीं होते, संज्ञा, सर्वनाम आदि पद भी होते हैं। उदाहरणार्थ 'चल पड़ना' में दोनों क्रियापद हैं किंतु 'लात खाना' में 'लात' संज्ञा है और इन दोनों रचनाओं को संयुक्त क्रिया माना जाता है।

कुछ विद्वानों का यह सोचना गलत है कि रचना की दृष्टि से क्रियाबंध यौगिक कालों के समान है। वास्तव में पूरा क्रियाबंध एक मूल क्रिया के समान प्रयुक्त होता है फिर चाहे उसमें कितने ही पद क्यों न हों, और उससे निर्मित काल भी मूलकाल ही रहता है। वह यौगिक काल तब बनता है जब उसमें फिर 'होना' क्रिया को जोड़ा जाय। उदाहरणार्थ 'वह उसे पकड़कर ले आया' वाक्य में 'पकड़कर ले आया' क्रियाबंध है। इसमें चार क्रियापद हैं (पकड़ना, करना, लाना, आना) किंतु इसका काल मूल (भूतकाल) है। ऐसे ही 'उठाकर ला जाओ' वाक्य पूरे का पूरा क्रियाबंध है। इसमें भी चार क्रियापद हैं किंतु इसका काल मूल आज्ञार्थ है।

७ ८ ५ १ क्रियाबंधों के प्रकार

क्रियाबंधों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जा सकता है—रचना के आधार पर एवं अर्थ के आधार पर।

७ ८ ५ २ रचना की दृष्टि से क्रियाबंध

रचना की दृष्टि से क्रियाबंध दो प्रकार के हैं—क्रियात्मक (जिसमें समस्त क्रियापद होते हैं) तथा क्रियेतर (जिसमें एक क्रियापद रहता है तथा दूसरे अन्य पद रहते हैं)। क्रियाबंध का अंतिम पद तो सदैव क्रिया रहता है अतः उक्त वर्गीकरण का आधार, अंतिम पद पर न होकर इतर पदों पर है।

क्रियात्मक बंध

(१) धातु युक्त (उठ जाना, मार डालना)

(२) भूतकालिक कृन्त युक्त (चला जाना, उठा लेना)
(३) वतमानकालिक कृन्त युक्त (उठता रहना, लेता जाना)
(४) सनाथक कृन्त युक्त (रोने लगना मारने दौडना)

क्रियेतर बध

(१) सना युक्त (लात खाना, भूख लगना)
(२) विशेषण युक्त (मुक्त होना, बुरा लगना)
(३) सवनाम युक्त (अपना बनाना)
(४) क्रियाविशेषण युक्त (नीचे दबाना ऊपर उठना)

यह पहले ही बताया जा चुका ह कि ऐसे क्रियाबधो में केवल दो ही नही तीन चार पाच पद भी हो सकते ह। उदाहरणाय उठाकर ले आना' में चार क्रियापद ह तथा नीचे ऊपर करना' म तीन पद ह पहले दो क्रियाविशेषण एव तीसरा क्रिया।

७ ८ ५ ३ अथ की दृष्टि से क्रियाबध

क्रियाबधा का मख्य कार्य अभियक्ति को स्पष्टता एव सूक्ष्मता प्रदान करना ह अत अथ की दृष्टि से क्रियाबधों के अनेक प्रकार हो सकते हैं। उदाहरणाय चुकना' क्रिया युक्त बध प्राय पूणता सूचक (गा चुका मर चुका) चाहना' क्रिया युक्त बध इच्छा सूचक (पढ़ना चाहना, जाना चाहना), सकना क्रिया युक्त बध सामथ्य सूचक (कर सकना उठा सकना) लगना' क्रिया युक्त बध आरभ सूचक (जाने लगना, करने लगना) पडना क्रिया युक्त बध आकस्मिकता सूचक (गिर पडना, बोल पडा) होते ह।

यहा यह बतलाना आवश्यक ह कि मात्र अथ के आधार पर किया गया वर्गीकरण बहुत अधिक सुनिश्चित नही हो सकता। उदाहरणाय 'खाट पडना' में गिर पडना' म आकस्मिकता का बोध होता है वहा 'गले पडना' में 'पडना' से बाध्यता की अभिव्यक्ति होती है। वास्तव में इस प्रकार की रचनाए एक प्रकार के मुहावरे हैं इसलिए इनका विवेचन केवल अर्थ के आधार पर नही अपितु अर्थ-सरचना (Semantic Structure) के आधार पर होना चाहिए।

विकास की दृष्टि से देखा जाय तो क्रियाबधों का सम्कृत मे सीधा एव स्पष्ट सबध नहीं ह। इनका विकास एक प्रकार से स्वतत्र रूप म हुआ ह। क्रियाबध हिन्दी (एव अय आधुनिक भाषाओं) की अपनी निजी विशेषता है।

७ ९ अव्यय

व्याकरण में अपरिवर्तनशील दाद ों अथवा द ।द्या को अव्यय' कहने ह् । इन ा ा के रूप में लिंग, वचन अथवा कालानुसार परिवतन नही होता ह् । अव्यया के चार भेद ह्-(१) क्रियाविनेषण (२) समुच्चयवाचक (३) सबधवाधक तथा (४) विस्मयादिवाधक । कुछ क्रिया विनेपणा क रूप परिवर्तित होते हैं (यथा—खाता हुआ गया, खाते हुए गए)। इन क्रियाविशेपणों को अव्यय के रूप में नही स्वाकार करना चाहिए।

७ ९ १ क्रियाविशेषण

अथ की दृष्टि स क्रियाविनेपण क निम्नलिखित प्रकार माने जाते ह् ।

कालवाचक—जब, तब कब आदि । इन सभी क्रियाविनेपणों में समयसूचक '–ब के विकास क बारे में विभिन्न मत ह् । वीम्स, केलाग आदि इसका विकास स वेला (समय) स मानते ह् । कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति स एव से मानते हूं ।

स्थानवाचक—यहा, वहा, कहा, जहा आदि । इनमें स्थानसूचक '–हा' की व्युत्पत्ति में भी दावाए ह् । कुछ स 'स्थाने (यत्स्थाने > 'हा आदि), कुछ स 'ह्' (>यहा), स कुह (>कहा) आदि के '–ह प्रत्यय से इसकी व्युत्पत्ति सभव मानते ह् । इनके अतिरिक्त भीतर (स अभ्यतर > अवभनर > अप भिनर > भीतर), बाहर (स बहि > वहर) आदि भी स्थानवाचक क्रियाविनेपण ह् । स्थानवाचक का ही एक भेद दिशावाचक माना जा सकता ह् । इधर, उधर आदि इसके अतर्गत आते ह्, जिनका विकास निश्चित नही ह् ।

रीतिवाचक—यों, ज्यों, त्यो आदि । इनकी व्युत्पत्ति के सबध म भी विभिन्न मत ह् । कुछ स इत्थ, कथ आदि से, कुछ वदिक स एव आदि से इनका विकास सभव मानते ह् । जानो, मानो आदि का विकास ।ह् जानना, मानना आदि से तथा सचमुच का सत्य से, ठीक का स स्था से सबध जोड़ा जाता है ।

७ ९ २ समुच्चयबोधक

—'तथा', एव सस्कृत के तत्सम रूप हैं तथा और का विकास स अपरम से हुआ है (स अपरम > प्रा अवर > अवर > और)।

७ ९ ३ सबधबोधक

—में, पर आदि । इनकी व्युत्पत्ति का वणन अधिकरण कारक के अतगत किया जा चुका ह् ।

७ ९ ४ विस्मयादिवोधक—एँ,

वाह (फा) शावाश (फा), हाय, हा—
स आ से, जो,—स जीव स, अच्छा-
प्रा अच्छअ > अच्छा) आदि विस्मयादि

७ १० वाक्यात्मक सरचना

वाक्यात्मक सरचना, भाषा की
अतगत वाक्य की गठन एव वाक्य भेदों व
वाक्यात्मक सरचना एव रूपात्मक सरच
कि दोनों का अलग-अलग विवेचन करना
सरचना में जो कुछ कहा गया ह, उस
सबघ है।

७ १० १ वाक्यात्मक युक्तिया

वाक्यात्मक युक्तियो से तात्पय उन
सहायक होते ह। मे युक्तिया प्रत्येक भाषा
में जिन वाक्यात्मक युक्तियो का प्रयोग किय
में पदो का स्थान, सना के द्वारा सबधित
तथा कर्ता—कम—क्रिया की अन्विति अथवा र
वाक्य रचना से हिंदी वाक्य रचना की तु
विवेचन किया जा रहा ह।

७ १० २ सस्कृत एव हिंदी वाक्य-रच

हिंदी की वाक्य रचना, प्राचीन आयभाषा अथ
मे वहुत अधिक भिन्न हो गयी ह। इसका मुख्य
श्लिष्ट प्रश्लिष्ट भाषा थी जब कि हिंदी अश्लिष्ट—अया
में सवध-तत्व अयतत्व से पूर्ण रूप से जुड जाते थे, इसस
एक शब्द सा लगता था लेकिन हिंदा वाक्य में विभिन्न प
सत्ता वनी रहती ह। सस्कृत में विभक्तिया शब्द का अग
कारण वाक्य में शब्दों के स्थान एव क्रम का कोई विशेष

(यथा—राम रावण अमारयत, रावण राम अमारयत, अमारयत राम रावण) किंतु हिंदी में विभक्तियों का स्थान परसर्गों ने ले लिया है, जो शब्द से अलग रहते हैं, इससे हिंदी वाक्य में शब्दों के स्थान एवं क्रम का महत्व है। उदाहरणार्थ 'शेर आदमी पर झपटा' 'आदमी शेर पर झपटा' वाक्यों में 'आदमी' एवं 'शेर' शब्दों का स्थान बदलने से न केवल वाक्य का अर्थ बदल गया है वरन् इन शब्दों की व्याकरणात्मक स्थिति भी बदल गयी है। पहले वाक्य में शेर "कर्ता" है तथा आदमी 'कर्म' दूसरे वाक्य में आदमी 'कर्ता' है और शेर 'कर्म'।

अन्विति अथवा संगति की दृष्टि से देखा जाय तो संस्कृत में कर्ता के पुरुष एवं वचन के साथ क्रिया की संगति रहती थी किंतु कर्ता का लिंग क्रिया को प्रभावित नहीं करता था (यथा—बालकः गच्छति, बालिका गच्छति) किंतु हिंदी में कुछ स्थितियों को छोड़कर, क्रिया, कर्ता के लिंग के साथ भी संगति रखती है (यथा—बालक जाता है, बालिका जाती है)।

नियमन की दृष्टि से भी संस्कृत एवं हिंदी वाक्य रचना में अंतर पड़ गया है। संस्कृत में विशेषण अपने विशेष्य (संज्ञा) से नियमित रहता था, अर्थात् विशेषण का लिंग-वचन संबंधित संज्ञा के अनुरूप रहता था (यथा—सुंदर बालक, सुंदरा बालिका सुन्दर फलं) किंतु हिंदी में आकारांत विशेषणों को छोड़कर अन्य किसी विशेषण का रूप नहीं बदलता (यथा—सुन्दर बालक, सुन्दर बालिका, सुंदर फल)।

संस्कृत में संधि-समास पद्धति का प्रचलन था जिससे शब्द संश्लिष्ट हो जाते थे, हिंदी में प्राय इस पद्धति का लोप हो चला है। संस्कृत में काल, वाच्य आदि व्याकरणिक कोटियां क्रिया के रूप से अभिव्यक्त होती थीं हिंदी में यह काय मुख्य रूप से सहायक क्रियाओं के सहयोग से किया जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक साधु हिंदी की वाक्य रचना संस्कृत से बहुत सीमा तक भिन्न एवं स्वतंत्र बन गयी है।

७ १० ३ हिंदी की वाक्य रचना

पूर्व के परिच्छेदों में हिंदी की रूपात्मक पद्धति के किये गये विवेचन से हिंदी वाक्य रचना के संबंध में पर्याप्त संकेत मिल जाते हैं। इस संबंध में इतना और उल्लेख्य है कि हिंदी वाक्य में कर्ता (जो प्राय संज्ञा, सर्वनाम अथवा नामपद (Noun Phrase) रहता है) एवं क्रिया दो महत्वपूर्ण पद हैं। वाक्य का आरंभ प्राय कर्ता से होता है तथा अंत क्रिया से। इस प्रकार कर्ता

७ ९ ४ विस्मयादिबोधक—ऐं, हैं—स अइ से, ओहो—स अहो से, वाह (फा) शाबाश (फा), हाय, हा—स हा से, दुहाई—(दो + हाय), आह—स आ से, जी—स जीव से, अच्छा-स अच्छ से (अच्छ > पा अच्छा > प्रा अच्छअ > अच्छा) आदि विस्मयादि बोधक अव्यय ह।

७ १० वाक्यात्मक सरचना

वाक्यात्मक सरचना, भाषा की अयत महत्वपूर्ण सरचना ह। इसके अतगत वाक्य की गठन एव वाक्य भेदो का विवेचन किया जाता ह। वास्तव में वाक्यात्मक सरचना एव रूपात्मक सरचना का आपस में इतना निकट सपर्क है कि दोनो का अलग अलग विवेचन करना सभव ही नही ह। हिंदी की रूपात्मक सरचना में जो कुछ कहा गया ह, उसका हिंदी की वाक्य रचना से अभिन्न सबध ह।

७ १० १ वाक्यात्मक युक्तिया

वाक्यात्मक युक्तियो से तात्पय उन उपायो से ह जो वाक्य की गठन में सहायक होते ह। ये युक्तिया प्रत्येक भाषा की अलग अलग हो सकती ह। हिंदी म जिन वाक्यात्मक युक्तिया का प्रयोग किया जाता ह उनमें से मुख्य ह वाक्य में पदों का स्थान, सज्ञा के द्वारा सबधित विशेषण के लिंग—वचन का नियमन तथा कर्ता-कम-क्रिया की अन्विति अथवा सगति। आगामी परिच्छेद में सस्कृत वाक्य रचना से हिंदी वाक्य रचना की तुलना करते समय इन युक्तिया का विवेचन किया जा रहा ह।

७ १० २ सस्कृत एव हिंदी वाक्य-रचना

हिंदी की वाक्य रचना प्राचीन आयभाषा अर्थात सस्कृत की वाक्य रचना म बहुत अधिक भिन्न हो गयी ह। इसका मुख्य कारण यह ह कि सस्कृत श्लिष्ट प्रश्लिष्ट भाषा थी जब कि हिंदी अश्लिष्ट—अयोगात्मक भाषा ह। सस्कृत में सबध-तत्व अथतत्व से पूर्ण रूप स जुड जाते थे, इसस कभी-कभी पूरा वाक्य एक शब्द सा लगता था लेकिन हिंदी वाक्य में विभिन्न पदो की अलग अलग सत्ता बना रहती ह। सस्कृत में विभक्तिया शब्द का अग बन जाती थी इस कारण वाक्य में शब्दो के स्थान एव क्रम का कोई विशेष महत्व नही था

(यथा—राम रावण अमारयत, रावण राम अमारयत, अमारयत राम रावण) किंतु हिंदी में विभक्तियों का स्थान परसर्गों ने ले लिया है, जो शब्द से अलग रहते है, इससे हिंदी वाक्य में शब्दों के स्थान एवं क्रम का महत्व है। उदाहरणार्थ 'शेर आदमी पर झपटा' 'आदमी शेर पर झपटा' वाक्यों में 'आदमी एवं शेर' शब्दों का स्थान बदलने से न केवल वाक्य का अर्थ बदल गया है वरन् इन शब्दों की व्याकरणात्मक स्थिति भी बदल गयी है। पहले वाक्य में शेर 'कर्ता' है तथा आदमी 'कर्म', दूसरे वाक्य में आदमी 'कर्ता' है और शेर 'कर्म'।

अन्विति अथवा संगति की दृष्टि से देखा जाय तो संस्कृत में कर्ता के पुरुष एवं वचन के साथ क्रिया की संगति रहती थी किंतु कर्ता का लिंग क्रिया को प्रभावित नहीं करता था (यथा—बालकः गच्छति, बालिका गच्छति) किंतु हिंदी में कुछ स्थितियों को छोड़कर क्रिया कर्ता के लिंग के साथ भी संगति रखती है (यथा—बालक जाता है, बालिका जाती है)।

नियमन की दृष्टि से भी संस्कृत एवं हिंदी वाक्य रचना में अंतर पड़ गया है। संस्कृत में विशेषण अपने विशेष्य (संज्ञा) से नियमित रहता था, अर्थात् विशेषण का लिंग-वचन संबंधित संज्ञा के अनुरूप रहता था (यथा—सुंदर बालक, सुंदरा बालिका सुंदर फल) किंतु हिंदी में आकारांत विशेषणों को छोड़कर अन्य किसी विशेषण का रूप नहीं बदलता (यथा—सुंदर बालक, सुंदर बालिका, सुंदर फल)।

संस्कृत में संधि-समास पद्धति का प्रचलन था जिससे शब्द संश्लिष्ट हो जाते थे, हिंदी में प्रायः इस पद्धति का लोप हो चला है। संस्कृत में काल, वाच्य आदि व्याकरणिक कोटियां क्रिया के रूप से अभिव्यक्त होती थीं, हिंदी में यह काम मुख्य रूप से सहायक क्रियाओं के सहयोग से किया जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक साधु हिंदी की वाक्य रचना संस्कृत से बहुत सीमा तक भिन्न एवं स्वतंत्र बन गयी है।

७ १० ३ हिंदी की वाक्य रचना

पूर्व के परिच्छेदों में हिंदी की रूपात्मक पद्धति के किये गये विवेचन से हिंदी वाक्य रचना के संबंध में पर्याप्त संकेत मिल जाते हैं। इस संबंध में इतना और उल्लेख्य है कि हिंदी वाक्य में कर्ता (जो प्रायः संज्ञा, सर्वनाम अथवा नामबंध (Noun Phrase) रहता है) एवं क्रिया दो महत्वपूर्ण पद हैं। वाक्य का आरंभ प्रायः कर्ता से होता है तथा अंत क्रिया से। इस प्रकार कर्ता

एव क्रिया हिंदी की सीमाए ह, जिनके अतगत अन्य समस्त पद नियोजित किये जाते ह । नामवध में विशेषण प्राय सज्ञा के पूव रहता ह । क्रिया विशेषण शब्दो का स्थान क्रिया के पूव ह । वाक्य मूल (अर्थात एक क्रियावाची) एव यौगिक (अनेक क्रियावाची) होते ह । मूल एव यौगिक वाक्यो के कई भेद उपभेद ह ।

वास्तव म हिंदी वाक्य रचना एव वाक्य विकास का विवचन विस्तार सापेक्ष ह जिसकी यहा गुजाइश नही ह ।

स्मरण-संकेत

७ १ हिंदी की व्याकरणात्मक संरचना में हिंदी के शब्द रूपों एव वाक्य रचना का विवेचन होगा।

७ २ हिंदी का रूपात्मक सरचना के अतगत हिंदी के शब्द निर्माण एव शब्द-रूपातर की पद्धतियों का उल्लेख होगा।

७ ३ हिंदी-शब्द-निमाण की मुख्य तीन पद्धतिया हैं—समास पद्धति, सर्ग पद्धति एव पुनरावृत्ति पद्धति। इनमें से सर्ग पद्धति मुख्य है। सग दो प्रकार के हैं पूर्व सर्ग (उपसर्ग) एव परसर्ग (प्रत्यय)। स्रोत की दृष्टि से सग तीन प्रकार के हैं परपरागत, निर्मित एव विदेशी।

७ ४ रूपातर की दृष्टि से हिंदी में दो प्रकार के शब्द हैं विकारी एव अविकारी।

७ ५ सज्ञा का रूपातर लिंग, वचन एव कारक (विकारक) के आधार पर होता है। हिंदी में दो लिंग एव दो वचन हैं। अर्थ की दृष्टि स ६ कारक हैं किंतु मुख्य कस (Case) दो ही हैं। कस को विकारक कहना चाहिए। कारक चिह्नों को परसग एव विकारक चिह्नों को विभक्ति कहा जाता है। परसर्गों एव विभक्तियों का विकास सस्कृत क विभिन्न श द रूपों से हुआ है।

७ ६ सर्वनाम का रूपातर वचन एव विकारक के आधार पर होता है। हिंदी में सात प्रकार क सवनाम माने जाते हैं। सवनाम के विभिन्न रूपों का विकास मुख्य रूप से सस्कृत के सवनाम रूपों से हुआ है।

७ ७ रूपातर की दृष्टि से विशेषण दो प्रकार क हैं (विकारी एव अविकारी) तथा अथ की दृष्टि से विशेषण चार प्रकार के हैं (गुणवाचक, सख्या वाचक, परिमाणवाचक, सवनामक)। विशेषण की तीन अवस्थाए हैं। विकास की दृष्टि से सख्यावाचक विशेषण ही महत्वपूर्ण हैं। इन विशेषणों का स्रोत मुख्य रूप से सस्कृत के सख्यावाचक विशेषण हैं।

७ ८ सस्कृत की अपेक्षा हिंदी के क्रिया रूप सरल हैं। क्रिया के अध्ययन क तीन भाग हैं धातु, स्तम एव क्रिया रूप। धातुओं का विवेचन प्रकृति, निर्माण, रचना एव स्रोत की दृष्टि से किया जा सकता है। धातु से स्तम का निर्माण होता है। रचना की दृष्टि से स्तम के कई भेद हैं। मुख्य क्रिया के भाव, समय, स्थिति को स्पष्ट करने वाली सहायक क्रिया। क्रिया द्वारा लिंग, वचन, पुरुष, अथ, वाच्य प्रयोग

एवं काल की अभिव्यक्ति। हिंदी में पांच अर्थ, तीन वाच्य, तीन प्रयोग एवं कई काल। एक से अधिक क्रियाथक शब्दों का नाम क्रियाबंध (संयुक्त क्रिया)। रचना एवं अर्थ की दृष्टि से क्रियाबंधों के अनेक भेद।

७ ९ अपरिवर्तित शब्दांशों को अव्यय कहते हैं। हिंदी में अव्ययों के मुख्य भेद हैं क्रिया विशेषण, संबंधसूचक, समुच्चय बोधक, विस्मयादि बोधक।

७ १० वाक्यात्मक संरचना भाषा की सबसे महत्त्वपूर्ण संरचना है। वाक्यात्मक संरचना की मुख्य युक्तियां हैं पदों का वाक्य में स्थान अन्विति एवं नियमन। हिंदी वाक्य रचना संस्कृत वाक्य रचना से भिन्न हो गयी है।



८ लिपि एवं देवनागरी लिपि

•

- लिपि
- भाषा एव लिपि का सबध
- लिपि की उत्पत्ति
- लिपि के विकास की अवस्थाए
    - —चित्रात्मक लिपि
    - —सकेतात्मक लिपि
    - —ध्वन्यात्मक लिपि
- ध्वन्यात्मक लिपि के भेद
    - —अक्षरात्मक लिपि
    - —वर्णात्मक लिपि
- ससार की प्रमुख लिपिया
    - —क्यूनीफार्म
    - —हीरोग्लाइफिक
    - —चीनी
    - —अरबी
    - —यूनानी
    - —रोमन
- भारत की प्राचीन लिपिया
    - —सैंधव
    - —खरोष्ठी
    - —ब्राह्मी
- देवनागरी लिपि
    - —विकास
    - —गुण-दोष
    - —सुधार



८ १ लिपि

लिपि से तात्पय लिखित चिह्नों की उस व्यवस्था स ह जिसके द्वारा भाषा को स्थापित किया जाता ह ।

लिपि मनुष्य की एक महत्वपूण रचना है। लिपि के माध्यम स मनुष्य ने अपनी भाषा (अन्य शब्दों में भाषा) को स्थायित्व प्रदान किया ह । लिपि के कारण एक पीढ़ी को अपनी दूसरी पीढ़ी तक अपने विचार-अनुभव पहुचाने में बड़ी सुविधा हुई है। मानव सस्कृति के विकास में लिपि का महत्वपूण योगदान ह ।

८ २ भाषा एव लिपि का सबध

भाषा एव लिपि परस्पर सबधित होने पर भी एक वस्तु नही हैं। भाषा ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जबकि लिपि लिखित चिह्नों की सरचना ह । इस प्रकार भाषा में प्रयुक्त ध्वनि चिह्नों का आधार भाव अथवा धारणा ह लेकिन लिपि चिह्नों का आधार भाव अथवा धारणा न होकर ध्वनिया होती हैं। अत लिपि भाषा की भी भाषा ह । भाव एव भाषा में सीधा सपक होता ह किंतु लिपि एव भाव में भाषा के माध्यम से ही सपक स्थापित होता ह । भाव, भाषा एव लिपि के सबध को इस प्रकार दर्शाया जा सकता ह—

भाव←—→भाषा←—→लिपि

भाषा एव लिपि में कोई तात्त्विक एव अनिवाय सबध नही ह । कोई भी भाषा किसी भी लिपि का प्रयोग कर सकती ह । यह एक ऐतिहासिक आकस्मिकता ह कि किसी एक विशेष भाषा के लिये किसी एक विशेष लिपि का प्रयोग होता है।

लिपि का न तो भाषा की चमड़ी मानना चाहिए और न ही उसकी पोशाक। चमड़ी शरीर का अनिवाय अग ह । चमड़ी के बिना शरीर के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लिपि एव भाषा में ऐसा कोई सबध नहीं ह । पोशाक शारीरिक सौन्दय में वद्धि करती ह एव शरीर को ढकने का काय करती ह । लिपि भाषा के सौन्दय में वद्धि नही करती। लिपि भाषा को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। यदि तुलना ही करनी हो तो लिपि और भाषा की तुलना चित्र एव वास्तविक पदाथ के साथ की जा सकती है। चित्र एव लिपि दोनों ही रेखाबद्ध आकृतिया हैं। दोनों में मुख्य अतर यह ह कि चित्र, दृश्यात्मकता (द्रष्टव्य पदार्थ) की अभिव्यक्ति करता ह जबकि लिपि ध्वन्यात्मक (ध्वनियों)

को आकृति प्रदान करती है। स्थानांतर (एक से दूसरे स्थान तक प्रसार) एवं समयांतर (एक समय से दूसरे समय तक प्रसार) का गुण चित्र एवं लिपि दोनों में है इसलिये लिपि को भाषा का चित्रात्मक रूपान्तर कहा जा सकता है।

यह बात सही है कि भाषा एवं लिपि में कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता किन्तु एक बार कोई भाषा किसी लिपि का प्रयोग करना शुरू कर देती है तो वह उस लिपि को सरलता एवं शीघ्रता से छोड़ अथवा बदल नहीं सकती। इसका मुख्य कारण यह है कि लिपि के बदलने से नयी पीढ़ियाँ अपने प्राचीन वाङ्मय से वंचित रह जाती हैं। जिस जाति को अपना प्राचीन वाङ्मय नहीं रहता वह जाति सांस्कृतिक दृष्टि से अनाथ समझी जाती है। किसी जाति को यह स्वीकार नहीं होगा कि उसकी संतान सांस्कृतिक दृष्टि से अनाथ समझी जाय। इस लिए लिपि में किये जानेवाले किसी भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का सन्देह पड़ा

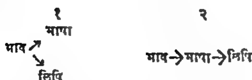
हं। यही कारण ह कि जो भाषाए लिपिबद्ध नहा हो सकी है वे साहित्य के वरदान से प्राय वंचित रह गयी ह। इसमें दो मत नही हो सकते कि मौखिक साहित्य की परपरा न तो इतनी व्यापक हो सकती ह और न ही दीघकालीन।

८ ३ लिपि की उत्पत्ति

लिपि की उत्पत्ति सबधी दो मत प्रचलित हैं। एक मत यह ह कि लिपि का जन्म भाषा से पूव अथवा समानातर हुआ। इस मत के माननेवालो का विचार है कि भाषा का प्रयोग करने से पूव मनुष्य हाथ, पाव आदि सकेतों द्वारा विचार अभिव्यक्त करता था। उन्ही सकेतो के चित्रण से लिपि का जन्म हुआ ह। इस प्रकार आरभ में लिपि भावाभिव्यक्ति का साधन थी, भाषा भिव्यक्ति का नही। ज्यो-ज्यो लिपि विकसित होती गई, उसका भावो से सीधा सपक छूटता गया एव भाषा से उसका सबध जुडता गया। आज पूण विकसित लिपि (वर्णात्मक) का भावो से कोई सीधा सपक नही रहा ह, उसका सपक केवल भाषा (ध्वनियो) से रह गया ह।

दूसरे मत के माननेवालो का विचार है कि लिपि का जन्म भाषा के पश्चात ही हुआ ह। इस विचार की पुष्टि इस बात से होती है कि मनुष्य समाज की ऐसी किसी अवस्था का पता नहीं चलता जिस अवस्था म मनुष्य भाषा का प्रयोग न करता हो। समय की जिस सीमा रेखा तक मनुष्य के सामाजिक जीवन की कल्पना की जा सकती ह, उसी सीमा रेखा तक भाषा के अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता ह। अत लिपि को भाषा से पूव अथवा सम कालीन मानने का प्रश्न ही नही उठता। लिपि का जन्म भाषा के पश्चात हुआ है, इसका एक प्रमाण यह भी है कि आज भी ससार म ऐसी अनेक जातिया हैं जो भाषा का प्रयोग करती ह किंतु जो लिपि ज्ञान से वंचित ह। इन विद्वानो की यह भी धारणा ह कि स्वय विचारात्मक प्रक्रिया के लिए भाषा की आवश्यकता ह। भाषा के अभाव में विचार कर सकना भी सभव नही ह। इस प्रकार भाषा की प्राचीनता, विचारात्मक प्रक्रिया के समान ही प्राचीन ह। जहा तक लिपि का सबध है उसका इतिहास ६–७ हजार वर्षों स अधिक पुराना नही है। इन सब बातो के कारण अधिक विद्वान यही मानते ह कि लिपि, भाषा की परवर्ती एव अनुगामी ह।

उपर्युक्त दोनो मतो को नीचे के दो रेखाचित्रो के द्वारा दर्शाया गया ह—



८ ४ लिपि के विकास की अवस्थाएं

संसार में जितने भी आविष्कार हुए हैं, उन सब के विकास की प्रवृत्ति स्थूल से सूक्ष्म एवं सरल से जटिल की ओर रही है। लिपि का विकास इसका अपवाद नहीं है।

लिपि के विकास की मुख्य तीन अवस्थाएं दृष्टिगोचर होती हैं —

(क) चित्रात्मक अवस्था
(ख) संकेतात्मक अवस्था
(ग) ध्वन्यात्मक अवस्था

८ ४ १ चित्रात्मक अवस्था (चित्रलिपि)

लिपि की आरंभिक अवस्था चित्रात्मक थी। इस अवस्था में लिपि चिह्नों के रूप में चित्रों का प्रयोग होता था। चित्रों के प्रयोग के कारण इस अवस्था की लिपि को 'चित्रात्मक लिपि' अथवा 'चित्रलिपि' कहा जाता है।

इस अवस्था में जिन चित्रों का प्रयोग होता था वे सरल एवं स्थूल थे। इन चित्रों में 'जैसा पदार्थ वैसा चित्र' की प्रवृत्ति विद्यमान थी। इस कारण ये चित्र सर्वग्राही थे। चित्रों में प्रतीकात्मकता बहुत कम थी। प्रात की अभिव्यक्ति के लिए उगते सूर्य का चित्र खींच दिया जाता था। आंसू बहाती आंखों के चित्र से दुःख की अभिव्यक्ति कर ली जाती थी। 'पदार्थ के समान चित्र' की प्रवृत्ति के कारण विभिन्न देशों की चित्रलिपियों में पर्याप्त समानता पायी जाती है।

यद्यपि चित्रलिपि सरल एवं सर्वग्राही थी किंतु वह अत्यंत सीमित थी। चित्रों के माध्यम से स्थूल पदार्थों एवं क्रियाओं का चित्रण करना तो संभव था किंतु सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति इन चित्रों से नहीं हो पाती थी। फिर चित्र श्रम एवं योग्यता साध्य थे। हरेक व्यक्ति चित्र नहीं बना सकता था। चित्रलिपि की सीमाओं ने ही लिपि के विकास के अगले चरण के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

८ ४ २ संकेतात्मक अवस्था (संकेतलिपि)

विकास की दूसरी अवस्था में लिपि संकेतात्मक बन गई। इस अवस्था में चित्रलिपि की कठिनाइयां किसी सीमा तक दूर हो गई। इस अवस्था में जिन चिह्नों का प्रयोग किया जाता था वे पदार्थ के अनुरूप न होकर पदार्थों का मात्र संकेत करने वाले रहते थे। सूर्य के लिए सूर्य का पूरा चित्र न खींचकर मात्र कुछ तिरछी रेखाएं खींच ली जाती या पर्वत का संकेत करने हेतु एक खड़ी (+) का चित्रण होता।

संकेत प्रधान होने के कारण, इस अवस्था की लिपि संकेत लिपि कही जाती है। चित्रों की अपेक्षा संकेत खींचना सरल था, इस दृष्टि से संकेत लिपि, चित्रलिपि की अपेक्षा सरल बन गई किंतु संकेतों के फलस्वरूप लिपि का सर्वग्राही गुण समाप्त हो गया। देखने मात्र से संकेतों का अर्थ लगाना सरल नहीं था। संकेतात्मकता के कारण लिपि सामान्य से विशिष्ट एवं सरल से जटिल हो गयी।

८ ४ ३ ध्वन्यात्मक अवस्था (ध्वन्यात्मक लिपि)

लिपि विकास की तीसरी अवस्था तब आती है जब लिपि चिह्नों का संबंध ध्वनि से जुड़ जाता है। चित्रलिपि के चित्र तथा संकेत लिपि के संकेत अर्थपूर्ण हुआ करते थे। इसके विपरीत, ध्वन्यात्मक लिपि के चिह्न किसी अर्थपूर्ण इकाई की अभिव्यक्ति न कर, उन ध्वनियों की अभिव्यक्ति करते हैं जो अपने आप में अर्थपूर्ण नहीं होतीं किंतु एक विशेष क्रम में प्रयुक्त होने पर ही उनसे अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरणार्थ देवनागरी में 'पर्वत' लिखने से एक पदार्थ विशेष (पर्वत) का बोध न होकर एक विशेष ध्वनि समूह (प + अ + र् + व् + अ + त) का बोध होता है। इस समूह की प्रत्येक ध्वनि अपने आप में निरर्थक है। जैसे 'प्' का कोई अर्थ नहीं है। एक विशेष क्रम में प्रयुक्त होने के कारण उनमें अर्थवत्ता उत्पन्न हुई है। पदार्थों एवं भावों (अर्थपूर्ण इकाइयों) के बंधन से मुक्त हो जाने के कारण, लिपि की सीमाएं समाप्त हो गई और भाषा के समान ही लिपि की अभिव्यक्ति—क्षमता असीम हो गयी।

ध्वनि संबद्ध होने के कारण इस अवस्था की लिपि ध्वन्यात्मक कहलायी।

ध्वन्यात्मक लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें भाषा की किसी भी ध्वनि का ठीक-ठीक अंकन करने की क्षमता रहती है। इस कारण

भाषा के माध्यम से जिन सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त किया जा सकता है, लिपि के द्वारा उनका अकन सभव होता ह ।

८ ५ ध्वन्यात्मक लिपि के भेद

विकास की दृष्टि से ध्वन्यात्मक लिपि के दो भेद हैं—
(क) अक्षरात्मक लिपि (Syllabic)
(ख) वर्णात्मक लिपि (Alphabatic)

८ ५ १ अक्षरात्मक लिपि

अक्षर ध्वनियो (एक या एक से अधिक) की उस इकाई को कहते हैं, जिसका उच्चारण बिना किसी व्यवधान के, सास के एक ही झटके से होता ह । मोटे रूप से प्रत्येक स्वर (व्यजन सहित अथवा व्यजन रहित) अक्षर की रचना करता ह ।

अक्षरात्मक लिपि वह ह जिसमें प्रत्येक लिपि चिह्न एक अक्षर की अभिव्यक्ति करता ह अर्थात प्रत्येक लिपि चिह्न से किसी स्वर अथवा व्यजन युक्त स्वर की अभिव्यक्ति होती ह । उदाहरणार्थ देवनागरी लिपि का 'ऋ' चिह्न 'र' व्यजन युक्त इ (ऋ = र + इ) की अभिव्यक्ति करता ह अत 'ऋ' अक्षरात्मक चिह्न ह । वैसे ही देवनागरी के मात्रारहित व्यजन चिह्न (क, च ट त प आदि) अक्षरात्मक चिह्न ह क्योंकि प्रत्येक चिह्न व्यजन युक्त स्वर (क = क + अ) की अभिव्यक्ति करता ह ।

८ ५ २ वर्णात्मक लिपि

वर्णात्मक लिपि से तात्पर्य ऐसी लिपि से ह जिसमें प्रत्येक लिपि चिह्न (अर्थात वर्ण) एक ही ध्वनि (स्वर अथवा व्यजन) की अभिव्यक्ति करता ह अर्थात एक लिपि चिह्न से सदव अकेली ध्वनि की अभिव्यक्ति होती ह ध्वनि योगो (स्वर युक्त व्यजन) की नही । उदाहरणार्थ रोमन लिपि (जिसमें अग्रेजी लिखी जाती ह) के प्रत्येक वर्ण (K P, T A आदि) से एक अकेली ध्वनि का ही बोध होता ह । अत रोमन वर्णात्मक लिपि है । देवनागरी के ऋ, ऋ तथा अ स्वर युक्त व्यजनो (क, च, ट, त, प आदि) को यदि अपवाद मानकर छोड दिया जाय तो देवनागरी भी वर्णात्मक लिपि ही दिखेगी । जसे 'काली'

■ द में चार चिह्न ह और ये चार ध्वनियो का प्रतिनिधित्व करते ह (क=क् ा=आ ल=ल , ि=इ) ।

सरचनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो लिपि का वर्णात्मक रूप उसका चरम विकसित रूप ह । चित्रलिपि एक प्रकार से भावात्मक लिपि थी । प्रत्येक चित्र एक पूरे विचार अथवा धारणा का बोध कराता था । सकेतात्मक लिपि एक प्रकार से रूपात्मक लिपि थी जिसमें प्रत्येक लिपि चिह्न किसी अथपूण इकाई का अभिव्यक्ति प्रदान करता था । अक्षरात्मक लिपि के चिह्न ध्वनि सयोगों (स्वर युक्त यजन) को अभिव्यक्त करते थे । वर्णात्मक लिपि का प्रत्येक चिह्न अकेली ध्वनि को रूपायित करता ह ।

वर्णात्मक लिपि की सबसे बडी विशेषता यह ह कि उसमे प्रत्येक ध्वनि के लिये स्वतत्र लिपि चिह्न होता ह । इस कारण भाषा (ध्वनिया) एव लिपि के परस्पर सबध का विश्लेषण अधिक सही ढग से किया जा सकता ह ।

८ ६ ससार की प्रमुख लिपिया

प्राचीन काल से अब तक ससार में अनेक लिपियों का प्रयोग हुआ ह । उन में से कुछ मुख्य लिपिया (भारतीय लिपिया को छोडकर) का परिचय यहा दिया जा रहा है ।

८ ६ १ क्यूनीफार्म लिपि

यह सभवत ससार की प्राचीनतम लिपि ह । ऐसा समझा जाता है कि इसका आविष्कार सुमेरियन ने किया था । ऐसा माना जाता है कि इसका जन्म आज से लगभग ६००० वष पूव हुआ था । इस लिपि के चिह्न तिकोनी रेखाओ से निर्मित होते थे जो गीली मिट्टी की ईटों पर खीचे जाते थे । यह प्राचीन बेबिलोनिया की लिपि थी ।

८ ६ २ हीरोग्लाइफिक लिपि

हीरोग्लाइफिक, प्राचीन मिस्र की लिपि थी । ससार की प्राचीनतम लिपियों में इस लिपि का महत्त्वपूण स्थान है । ईसा पूव ४००० वष इस लिपि का प्रयोग होता था ।

यह लिपि भी मूल रूप से चित्रात्मक थी । इस लिपि के प्राचीनतम लेख मदिरों की दीवारो पर खीलों से खुदे हुए हैं ।

८ ६ ३ चीनी लिपि

ससार की प्रचीन लिपियो म चीनी लिपि का मुख्य स्थान ह। यह एक ऐसी प्राचीन लिपि ह जिसका प्रयोग आज भी हो रहा ह (कुछ सुधारो सहित)। चीनी भी मल रूप मे चित्रात्मक लिपि ह। इस भावात्मक लिपि कहा जाता ह क्योकि इस लिपि का प्रत्यक चित्र किसी न किसी अथपूण इकाई (शब्द) को अभिव्यक्त करता ह।

चीनी लिपि लगभग ५००० वष पुरानी ह। चीनी लिपि में हजारों चित्रों का प्रयोग करना पडता ह इस कारण यह अत्यत कठिन लिपि है।

८ ६ ४ अरबी लिपि

ससार का प्रसिद्ध लिपियो में अरबी लिपि की भी गणना की जाती ह।

ससार के अनेक देशो में इस लिपि का प्रचलन है। भारत की उदू कश्मीरी तथा सिंधी लिपियो का आधार भी अरबी लिपि ह। तुर्की (प्राचीन) फारसी एव पश्तो के लिए इस लिपि का प्रयोग होता है।

यह लिपि प्राचीन सामी लिपि स सबधित ह। अरबी लिपि के जन्म के सबध में निश्चयपूवक कहना कठिन ह किंतु इतना निश्चित ह कि ईसा की पाचवीं शताब्दी तक इसका जन्म हो चुका था।

यह लिपि व्यजनात्मक ह। इस लिपि में व्यजनो की प्रधानता ह। स्वरो की अभिव्यक्ति के लिए इस लिपि में समुचित व्यवस्था नही ह। यह लिपि दाए से बाए लिखी जाती ह।

८ ६ ५ यूनानी लिपि

प्राचीन सामी लिपि से विकसित आर्माइक लिपि से यूनानी लिपि का सबध ह। आज से लगभग तीन हजार वष पूव यूनानी लिपि का जन्म हुआ था। यह बाए से दाए लिखी जाती थी।

८ ६ ६ रोमन लिपि

रोमन लिपि को लटिन लिपि भी कहा जाता है। रोमन ससार की सबसे अधिक महत्वपूण एव बहुप्रचलित लिपि है।

इस लिपि का सबध भी सामी लिपि की उत्तरी शाखा से ह। ऐसा माना जाता ह कि ईसा पूव ७वीं शताब्दी तक इस लिपि का विकास हो चुका था।

इस लिपि का प्रयोग अंग्रेजी, फ्रांसीसी, स्पेनी, जर्मन, पुर्तगाली आदि अनेक भाषाओं के लिए होता है।

रोमन लिपि वर्णात्मक है। इस कारण संसार की श्रेष्ठ लिपियों में इसका मुख्य स्थान है। रोमन लिपि में इस समय २६ वर्ण हैं तथा यह बाएं से दाएं लिखी जाती है।

८ ७ भारत की प्राचीन लिपियां

यह बात अब निर्विवाद रूप से मानी जाने लगी है कि बहुत प्राचीन काल से ही भारत में लेखन का प्रयोग होता था। यों तो विदेशी यात्रियों के वर्णनों एवं जैन तथा बौद्ध धर्मग्रंथों में भारत की अनेक प्राचीन लिपियों का उल्लेख मिलता है किंतु उन समस्त लिपियों के अस्तित्व के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होते।

प्राचीन काल की जिन मुख्य लिपियों के अधिकारिक प्रमाण प्राप्त होते हैं वे हैं—सैंधव लिपि, खरोष्ठी लिपि एवं ब्राह्मी लिपि।

८ ७ १ सैंधव लिपि

सिंध के 'मोहन जो दड़ो' एवं पंजाब के 'हड़प्पा' स्थानों की खुदाई से प्राप्त मुहरों एवं अन्य पदार्थों पर प्राप्त लिपि चिह्नों को सैंधव लिपि अथवा सिंधु घाटी की लिपि कहा जाता है। इस लिपि को भारत की प्राचीनतम लिपि माना जा सकता है। इस लिपि का समय ईसा पूर्व ३५०० वर्ष के आस पास माना जाता है।

इस लिपि की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान इसे द्रविड़ मूलक मानते हैं, कुछ अन्य विद्वान इसका संबंध सुमेरिया से जोड़ते हैं। कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो इसे आर्य जाति का आविष्कार स्वीकार करते हैं। वास्तव में इस लिपि को निश्चित रूप से अभी तक कोई पढ़ ही नहीं पाया है। इस कारण इस लिपि के संबंध में कुछ भी निश्चित रूप से कह सकना कठिन है।

८ ७ २ खरोष्ठी लिपि

जिन दो लिपियों में प्राचीन शिलालेख मिलते हैं, वे हैं खरोष्ठी एवं ब्राह्मी।

खरोष्ठी के शिलालेख ईसा पूर्व ४थी शताब्दी के आसपास प्राप्त होते हैं। इस लिपि के प्राचीनतम लेख शहबाजगढ़ी एवं मनसेरा में प्राप्त हुए हैं।

खरोष्ठी नाम

'खरोष्ठी' नाम के संबंध में बहुत-सी अटकलें लगायी जाती हैं। कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति खर ओष्ठ (गधे के होठों जैसी बेढगी) मानते हैं। कुछ अन्य विद्वानों के विचार से इसका मूल खर-पोस्त' अथवा 'खर पृष्ठी' (गधे की खाल पर लिखी जाने के कारण) मानते हैं। कुछ खरोष्ठ' नामक व्यक्ति द्वारा इसका आविष्कार मानते हैं, तो दूसरों के विचार से 'खरोष्ठ' नामक सीमा प्रांत में इसका प्रयोग होता था। तकपूर्ण मत दो हैं। एक मत यह है कि आर्मीइक शब्द खरोट्ठ से इसका विकास हुआ है। दूसरा मत यह है कि हिब्रू के खरोशेथ = लिखावट' से इसका संबंध है।

खरोष्ठी की उत्पत्ति

खरोष्ठी की उत्पत्ति के संबंध में मुख्य दो मत हैं। बूलर डिरिंजर, ओझा आदि विद्वान इसका आधार आर्मीइक लिपि मानते हैं। राजबली पांडेय इसे शुद्ध भारतीय मानते हैं। बूलर ने आर्मीइक के साथ खरोष्ठी के अनेक वर्णों की तुलना कर अपने मत का ठोस प्रमाण प्रस्तुत किया है।

ऐसा समझा जाता है कि आरंभ में खरोष्ठी दाएं से बाएं लिखी जाती थी फिर ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के कारण बाएं से दाएं भी लिखी जाने लगी। ईसा की ३-४थी शताब्दी के पश्चात इस लिपि का प्रयोग नहीं मिलता।

८.७.३ ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि भारत की प्रसिद्ध प्राचीन लिपि थी। इसका प्राचीनतम रूप ईसा पूर्व ५वीं शताब्दी का माना जाता है। अपने प्राचीन रूप में इस लिपि का प्रयोग ईसा की ४थी शताब्दी तक होता रहा। कुछ को छोड़कर भारत की आधुनिक लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि से ही हुआ है।

ब्राह्मी नाम

'ब्राह्मी' नाम के संबंध में अनेक विचार हैं। कुछ के विचार से ब्राह्मणों द्वारा मुख्य रूप से प्रयुक्त होने के कारण यह ब्राह्मी कहलायी। दूसरे विद्वान मानते हैं कि 'ब्रह्म' (ज्ञान) की रक्षा का साधन होने के कारण इसका यह नाम पड़ा। धार्मिक विश्वासों में 'ब्रह्म' अथवा 'ब्रह्मा' नामक व्यक्ति इसका आविष्कारक माना गया है। अधिक मान्य धारणा यह है कि धार्मिक भावना के कारण सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से इसके निर्माण का संबंध जोड़कर इसका यह नाम रखा गया है।

ब्राह्मी की उत्पत्ति

ब्राह्मी की उत्पत्ति के सबध में बडा विवाद है। बहुत से विदेशी विद्वान इसे विदेशी मूल का मानकर इसका सबध चीनी, आर्माइक, फोनीशियन, सामी, अरबी आदि लिपियों से जोडने का प्रयत्न करते है। इनमें से केवल उत्तरी सामी से इसका सबध जोडने का थोडा-बहुत आधार प्राप्त हो सका है। उत्तरी सामी से ब्राह्मी का सबध जोडने वालों में बूलर का नाम मुख्य है। अपने मत के समर्थन में बूलर ने सामी लिपि के वर्णों की रेखाओं को घुमा फिरा कर उनकी ब्राह्मी लिपि के वर्णो से साम्यता दिखाने का प्रयत्न किया है। साथ ही बूलर का कथन है कि भारत में ईसा पूर्व ५वी शताब्दी से पहले लिपि का प्रचलन नही था। बूलर ने अपने मत के समर्थन में यह भी दिखाया है कि शिलालेखो में ब्राह्मी के ऐसे नमूने भी मिलते है जिनमें वह सामी लिपि के समान दाए से बाए लिखी गयी है।

बूलर के समस्त तर्कों का उत्तर देकर भारतीय विद्वानो ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ब्राह्मी पूर्ण रूप से भारतीय लिपि है। यह प्रमाणो द्वारा पुष्ट हो चुका है कि भारत में लेखन कला का प्रचलन बहुत प्राचीन काल से था। सामी एव ब्राह्मी के वर्णों में जो समानता बूलर ने दिखायी है वह तर्क की अपेक्षा आग्रह पर आधारित है। दाए से बाए लिखने के उदाहरणो की अपेक्षा बाए से दाए लिखने के उदाहरण बहुत अधिक है। दाए से बाए लिखे हुए कुछ अक्षर ही मिलते है, पूरा लेख नही। इसका कारण लिखनेवाले की नवीन प्रयोग प्रवृत्ति भी हो सकती है।

अत में इतना कहना ही उचित होगा कि ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के सबध में निश्चित प्रमाणो का अब भी अभाव है। जो प्रमाण मिलते है वे इसके स्वदेशी होने का ही समर्थन करते है।

ब्राह्मी लिपि का विकास

ब्राह्मी लिपि के विकास के तीन सोपान माने जा सकते है

प्रथम सोपान—(ईसा पूर्व ५०० से ईसा ३५० तक)

द्वितीय सोपान—(ईसा पूर्व ३५० से ईसा १००० तक)

तृतीय सोपान—(ईसा १००० के पश्चात)

ब्राह्मी लिपि का प्राचीनतम लेख ईसा पूर्व ५०० के आसपास का है। तब से लेकर ईसा की ४थी शताब्दी तक इस लिपि का प्रयोग ब्राह्मी के नाम से होता रहा। इस अवस्था में इसका प्रयोग-स्थल उत्तर भारत ही था।

इस लिपि के विकास का दूसरा चरण ईसा की ४था शताब्दी से आरम्भ होता है, जब इस लिपि की उत्तरी एवं दक्षिणी दो शाखाएं हो जाती हैं। उत्तरी शाखा की लिपि ४-५वीं शताब्दी में गुप्त सम्राटों के प्रभाव के कारण 'गुप्त लिपि' कहलायी तथा इसी लिपि के विकसित रूप को (६-७वीं शताब्दी) 'कुटिल लिपि' की संज्ञा दी गयी। ९वीं शताब्दी के आसपास, इस लिपि से प्राचीन नागरी एवं १०वीं शताब्दी में निकट इससे कश्मीर की लिपि शारदा का विकास हुआ।

इस अवधि में दक्षिणी शाखा से प्राचीन तेलुगु, प्राचीन ग्रंथी, प्राचीन तमिल एवं नंदी नागरी लिपियों का विकास हुआ।

ब्राह्मी लिपि में विकास का तीसरा चरण १०वीं शताब्दी के आसपास माना जाता है जब आधुनिक लिपियों का विकास होता है।

इस अवस्था में इसकी उत्तरी शाखा से टकरी, डोगरी (कश्मीर), लंडा मुल्तानी, वाणिकी, गुरुमुखी (सिंध-पंजाब), गुजराती (गुजरात), महाजनी (राजस्थान), मोडी (महाराष्ट्र) कैथी (बिहार), बंगला (बंगाल), असमिया (असम), मैथिली (प्राचीन मिथिला प्रदेश), उड़िया (उड़ीसा), मणीपुरी (मणीपुर), नागरी (मध्य देश) आदि लिपियों का विकास होता है। इसकी दक्षिणी शाखा से वर्तमान तमिल, तेलुगु, एवं ग्रंथी आदि लिपियों का जन्म होता है।

८.८ देवनागरी लिपि

इस लिपि का नागरी अथवा देवनागरी नाम कैसे पड़ा, इस संबंध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हां, इस नाम के संबंध में अनेक अनुमान लगाए गए हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसका नाम नागरी' पड़ा।

नगरों में प्रयुक्त होने के कारण यह 'नागरी' कहलायी।

देवनगरों में प्रयुक्त होने के कारण इस लिपि को देवनागरी कहा गया।

देवनगरी काशी में इसके प्रयोग के कारण इसे 'देवनागरी' कहा गया।

जैसा कि ऊपर कहा गया है देवनागरी संबंधी उपयुक्त समस्त मत अनुमान पर ही आधारित हैं, इनके लिए कोई तार्किक आधार नहीं है।

८ ८ १ देवनागरी लिपि का विकास

आधुनिक देवनागरी लिपि का विकास १२वी शताब्दी के निकट प्राचीन नागरी लिपि मे हुआ। इस लिपि का प्रयोग हिंदी के अतिरिक्त आधुनिक मराठी तथा नेपाली के लिए भी होता ह। प्राचीन भाषाओ, सस्कृत पालि प्राकृत के लिए भी इसी लिपि का प्रयोग होता था। गुजराती, महाजनी एव राजस्थानी लिपिया एक प्रकार स देवनागरी का ही रूप हैं। देवनागरी स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रलिपि ह।

१२वी शताब्दी से आज तक देवनागरी के रूप में बहुत कम परिवतन हुआ ह। फारसी एव अग्रेजी के प्रभाव स कुछ नवीन ध्वनिया क हिंदी म आ जाने से देवनागरी लिपि में भी कुछ परिवतन हुआ ह।

८ ८ २ देवनागरी के गुण-दोष

इसमें कोई सदेह नही कि देवनागरी ससार की श्रेष्ठ लिपिया में स एक ह। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि ह जिसमें अक्षरात्मक एव वर्णात्मक लिपिया की विशेषताए पाई जाती ह। नीचे देवनागरी लिपि के गुणा एव दोषा का वणन किया जा रहा ह।

८ ८ २ १ देवनागरी क गुण (विशेषताए अथवा वैज्ञानिकता)

(क) यह एक व्यवस्थित ढग से निर्मित लिपि है।

(ख) ध्वनिया का क्रम वज्ञानिक ह। स्पश ध्वनियो के वणन में प्रथम वग कठ्य ध्वनियो का ह एव अतिम वग ओष्ठ्य ध्वनिया का ह। प्रत्येक वग में अल्पप्राण ध्वनि के पश्चात महाप्राण ध्वनि सूचक चिह्न ह (यथा क, ख) तथा प्रत्येक वग की ध्वनियों में पहले अघोष ध्वनिया एव उसके पश्चात सघोष ध्वनिया का उल्लेख ह (प्रत्यक वग की प्रथम दो ध्वनिया अघोष तथा अतिम तीन ध्वनिया सघोष हैं)। प्रत्येक वग का नासिक्य ध्वनि (ङ, न, म आदि), उस वग के अत म है।

(ग) अल्पप्राण एव महाप्राण ध्वनिया के लिए अलग-अलग लिपि चिह्न हैं (यथा—क, ख)।

(घ) छपाई एव लिखाई के लिए एक ही रूप ह।

(ङ) स्वरों में ह्रस्व-दीघ का भेद ह। स्वरो की मात्राए निश्चित हैं।

(च) प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग लिपि चिह्न ह।

इससे छपाई में तो सुविधा होती थी किंतु लिपि की कलात्मकता नष्ट होती थी तथा कुछ अक्षरों में समानता होने के कारण उन्हें पढ़ना कठिन होता था। सावरकर बंधुओं ने 'अ' की बारहखड़ी का उपयोग में लाने का सुझाव दिया किंतु वह भी अमान्य रहा।

संस्थागत प्रयत्नों के संदर्भ में हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा और नागरी प्रचारिणी सभा-काशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से १९३५ में महात्मा गांधी के सभापतित्व तथा काका कालेलकर के संयोजकत्व में जो सभा हुई उसके सुझाव थे— शिरोरेखा विहीनता मात्राओं को पंक्ति में पृथक लगाना (उपमा ग) सब वर्णों के उच्चारणक्रम से लिखना (प्रदेश = प्रऍश) 'अ' की बारहखड़ी (अ आ अि, अी अु अू आदि), पुनः अनुस्वार के लिए '॰' तथा अनुनासिकता के लिए बिंदी '—' का प्रयोग। नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रयत्न तो किया किंतु विद्वानों के सहयोग के अभाव में कुछ न हो सका। तत्पश्चात् इस समिति ने श्रीनिवास जी के सुझावों से सहमत होकर उनकी पुष्टि की। इसी प्रकार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने भी हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित सुझावों की पुष्टि तथा प्रचार किया।

प्रशासकीय रूप से तीन प्रयत्न हुए—हिंदुस्तानी शीघ्रलिपि तथा लेखन यंत्र-समिति (१९४८) का प्रयत्न उत्तर प्रदेश सरकार का प्रयत्न तथा आचार्य नरेंद्रदेव समिति का प्रयत्न। इनमें ठोस रूप से किए गए प्रयत्न केवल नरेंद्रदेव समिति के थे। इस समिति ने लिपि को जटिल विकृत तथा अवैज्ञानिक रूप प्रदान करनेवाले सुझावों—'अ की बारहखड़ी, शिरोरेखा विहीनता को अमान्य कर दिया। निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए गए—

(१) मात्राओं को पंक्ति में पृथक लगाना (प्रवेश)।

(२) अनुस्वार के लिए शून्य '॰', तथा अनुनासिकता के लिए '—'। अनुनासिक वर्णों को अपने वर्ग के व्यंजन के पूर्ववर्ती होने पर उसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग।

(३) संयुक्त रूप में वर्णों की खड़ी पाई को हटा देना, क, फ के अतिरिक्त सबको हल्न्त रूप में लिखना (विद्वान)।

(४) ञ के स्थान पर अ, भ के स्थान पर भ, घ के स्थान पर ध, क्ष के स्थान पर क्ष तथा त्र के स्थान पर त्र, का प्रयोग हो।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने इनमें से कुछ सुधारों को स्वीकार कर अपनी पुस्तकों द्वारा उनका प्रचार कराना चाहा किंतु वह न कुछ जनता द्वारा मान्य नहीं हुआ। अभी तक प्राय प्राचीन रूप ही प्रचलित है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि लिपि में परिवर्तन करना सरल नहीं है, क्योंकि लिपि के माध्यम से साहित्य का संरक्षण एवं प्रसारण होता है। लिपि-परिवर्तन से साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा विच्छिन्न अथवा खंडित हो जाती है। इस प्रकार की साहित्यिक विच्छिन्नता किसी को सरलता से स्वीकार नहीं होती। अत बलपूर्वक अथवा हठपूर्वक देवनागरी में सुधार नहीं लाया जा सकता। ज्यों-ज्यों देवनागरी के प्रयोग की व्यापकता बढ़ेगी, उसकी एकरूपता एवं स्थिरीकरण की आवश्यकता भी बढ़ेगी और आवश्यकता केवल आविष्कार की ही जननी नहीं होती, सुधारों की भी जननी होती है।

इससे छपाई में तो सुविधा होती थी किन्तु लिपि की कलात्मकता नष्ट होती थी, तथा कुछ अक्षरों में समानता होने के कारण उन्हें पढ़ना कठिन होता था। सावरकर बंधुओं ने 'अ' की बारहखड़ी का उपयोग में लाने का सुझाव दिया किंतु यह भी अमान्य रहा।

संस्थागत प्रयत्नों के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा और नागरी प्रचारिणी सभा-काशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से १९३५ में महात्मा गांधी के सभापतित्व तथा काका कालेलकर के संयोजकत्व में जो सभा हुई उसके सुझाव थे— शिरोरेखा विहीनता, मात्राओं को पंक्ति में पृथक लगाना (उपमा`॥), संयुक्ताक्षरों के उच्चारणक्रम से लिखना (स्पंदन = प्रदेश), 'अ' की बारहखड़ी (अ आ अि अी अु अू आदि), पर अनुस्वार के लिए '॰' तथा अनुनासिकता के लिए बिंदी '–' का प्रयोग। नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रयत्न तो किया किंतु विद्वानों के सहयोग के अभाव में कुछ न हो सका। तत्पश्चात् इस समिति ने श्रीनिवास जी के सुझावों से सहमत होकर उनकी पुष्टि की। इसी प्रकार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित सुझावों की पुष्टि तथा प्रचार किया।

प्रशासकीय रूप से तीन प्रयत्न हुए—हिंदुस्तानी शीघ्रलिपि तथा लेखन यंत्र-समिति (१९४८) का प्रयत्न, उत्तर प्रदेश सरकार का प्रयत्न तथा आचार्य नरेंद्रदेव समिति का प्रयत्न। इनमें ठोस रूप से किए गए प्रयत्न केवल नरेंद्रदेव समिति के थे। इस समिति ने लिपि को जटिल, विकृत तथा अवैज्ञानिक रूप प्रदान करनेवाले सुझावों—'अ' की बारहखड़ी, शिरोरेखा विहीनता को अमान्य कर दिया। निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए गए—

(१) मात्राओं को पंक्ति में पृथक लगाना (प्रदेश)।

(२) अनुस्वार के लिए शून्य '॰', तथा अनुनासिकता के लिए '–'। अनुनासिक वर्णों को अपने वर्ग के व्यंजन के पूर्ववर्ती होने पर उसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग।

(३) संयुक्त रूप में वर्णों की खड़ी पाई को हटा देना, क, फ, के अतिरिक्त सबको हलन्त रूप में लिखना (विद्वान)।

(४) श्र के स्थान पर अ, भ के स्थान पर भ, घ के स्थान पर ध, क्ष के स्थान पर क्ष तथा त्र के स्थान पर त्र, का प्रयोग हो।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने इनमें से कुछ सुधारों को स्वीकार कर अपनी पुस्तकों द्वारा उनका प्रचार कराना चाहा किंतु वहुत कुछ जनता द्वारा मान्य नहीं हुआ। अभी तक प्राय प्राचीन रूप ही प्रचलित है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि लिपि में परिवर्तन करना सरल नहीं है, क्योंकि लिपि के माध्यम से साहित्य का संरक्षण एवं प्रसारण होता है। लिपि-परिवर्तन से, साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा विच्छिन्न अथवा खंडित हो जाती है। इस प्रकार की साहित्यिक विच्छिन्नता किसी को सरलता से स्वीकार नहीं होती। अत बलपूर्वक अथवा हठपूर्वक, देवनागरी में सुधार नहीं लाया जा सकता। ज्यों-ज्यों देवनागरी के प्रयोग की व्यापकता बढ़ेगी, उसकी एकरूपता एवं स्थिरीकरण की आवश्यकता भी बढ़ेगी और आवश्यकता, केवल आविष्कार की ही जननी नहीं होती, सुधारों की भी जननी होती है।



इससे छपाई में तो सुविधा होती थी किन्तु लिपि की कलात्मकता नष्ट होती था तथा कुछ अक्षरों में समानता होने के कारण उन्हें पढ़ना कठिन होता था। सावरकर बंधुओं ने 'अ' की बारहखड़ी का उपयोग में लाने का सुझाव दिया किंतु यह भी अमान्य रहा।

संस्थागत प्रयत्नों के संदर्भ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा और नागरी प्रचारिणी सभा-काशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से १९३५ में महात्मा गांधी के सभापतित्व तथा काका कालेलकर के संयोजकत्व में जो सभा हुई उसके सुझाव थे– शिरोरेखा विहीनता मात्राओं को पंक्ति में पृथक लगाना (उपयोग), संयुक्ताक्षरों के उच्चारणक्रम से लिखना (प्रदेश = प्रदेश) 'अ' की बारहखड़ी (अ आ अि, अी अु अू आदि), पंचम अनुस्वार के लिए '॰' तथा अनुनासिकता के लिए बिंदी '–' का प्रयोग। नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रयत्न तो किया किंतु विद्वानों के सहयोग के अभाव में कुछ न हो सका। तत्पश्चात् इस समिति ने श्रीनिवास जी के सुझावों से सहमत होकर उनकी पुष्टि की। इसी प्रकार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित सुझावों की पुष्टि तथा प्रचार किया।

प्रशासकीय रूप से तीन प्रयत्न हुए—हिंदुस्तानी शीघ्रलिपि तथा लेखन यंत्र-समिति (१९४८) का प्रयत्न उत्तर प्रदेश सरकार का प्रयत्न तथा आचार्य नरेंद्रदेव समिति का प्रयत्न। इनमें ठोस रूप से किए गए प्रयत्न केवल नरेंद्रदेव समिति के थे। इस समिति ने लिपि को जटिल विकृत तथा अवैज्ञानिक रूप प्रदान करनेवाले सुझावों—अ' की बारहखड़ी शिरोरेखा विहीनता का अमान्य कर दिया। निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किए गए—

(१) मात्राओं को पंक्ति में पृथक लगाना (प्रदेश)।

(२) अनुस्वार के लिए शून्य '॰', तथा अनुनासिकता के लिए '–'। अनुनासिक वर्णों का अपने वर्ग के व्यंजन के पूर्ववर्ती होने पर उसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग।

(३) संयुक्त रूप में वर्णों की खड़ी पाई को हटा देना क, फ, के अतिरिक्त सबको हलन्त रूप में लिखना (विद्‌वान)।

(४) श्र के स्थान पर अ, भ के स्थान पर भ, ध के स्थान पर ध, क्ष के स्थान पर क्ष तथा त्र के स्थान पर त्र, का प्रयोग हो।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने इनमें से कुछ सुधारों को स्वीकार कर अपनी पुस्तकों द्वारा उनका प्रचार कराना चाहा किंतु बहुत कुछ जनता द्वारा मान्य नहीं हुआ। अभी तक प्राय प्राचीन रूप ही प्रचलित है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि लिपि में परिवर्तन करना सरल नहीं है क्योंकि लिपि के माध्यम से साहित्य का संरक्षण एवं प्रसारण होता है। लिपि-परिवर्तन से साहित्य की अविच्छिन्न परंपरा विच्छिन्न अथवा खंडित हो जाती है। इस प्रकार की साहित्यिक विच्छिन्नता किसी को सरलता से स्वीकार नहीं होती। अत बलपूर्वक अथवा हठपूर्वक देवनागरी में सुधार नहीं लाया जा सकता। ज्यों-ज्यों देवनागरी के प्रयोग की व्यापकता बढ़ेगी, उसकी एकरूपता एवं स्थिरीकरण की आवश्यकता भी बढ़ेगी और आवश्यकता, केवल आविष्कार की ही जननी नहीं होती, सुधारों की भी जननी होती है।

स्मरण-संकेत

१ लिपि, लिखित चिह्नों की व्यवस्था है। इससे भाषा को रूपायित किया जाता है।

२ भाव एवं लिपि में भाषा के माध्यम से संपर्क स्थापित होता है। लिपि भाषा का चित्र अथवा भाषा की भाषा है। भाषा एवं लिपि में ऐतिहासिक संबंध रहता है, अनिवार्य नहीं। लिपि भाषा को स्थायित्व प्रदान करती है, इसलिए लिपि का बदलना सरल नहीं है।

३ लिपि का विकास भाषा के पश्चात हुआ है।

४ लिपि के विकास की तीन अवस्थाएं हैं —
चित्रात्मक संकेतात्मक ध्वन्यात्मक।

५ ध्वन्यात्मक लिपि के दो रूप हैं—अक्षरात्मक एवं वर्णात्मक। वर्णात्मक लिपि चरम विकसित लिपि है।

६ संसार की मुख्य लिपियां हैं—
क्यूनीफार्म, हीरोग्लाइफिक, चीनी, अरबी, यूनानी रोमन।

७ भारत की प्राचीन लिपियां हैं—सैंधव, खरोष्ठी, ब्राह्मी। सैंधव लिपि का अभी तक पूर्ण विवेचन नहीं हो पाया है। खरोष्ठी के नाम एवं उत्पत्ति के संबंध में मतभेद हैं। संभवतः यह विदेशी लिपि थी। ई० पू० ४ थी शताब्दी के आस पास ब्राह्मी के साथ इसका प्रचार था। ब्राह्मी की उत्पत्ति के संबंध में भी वाद विवाद हैं। अधिक विद्वान उसे भारतीय मानते हैं। ब्राह्मी के ही विकसित रूपों का नाम कुटिल लिपि' एवं 'गुप्त लिपि' था। ब्राह्मी से आधुनिक उत्तर अथवा दक्षिण भारत की लिपियों का विकास हुआ है।

८ देवनागरी का विकास १०वीं शताब्दी के आस पास हुआ। इसका मूल स्रोत ब्राह्मी ही है। देवनागरी संसार की श्रेष्ठ लिपियों में से एक है। वैज्ञानिकता की दृष्टि से उसमें कई गुण हैं। वैज्ञानिकता एवं युग की आवश्यकता की दृष्टि से उसमें कुछ त्रुटियां भी हैं। देवनागरी के सुधार के लिए कई प्रयत्न किए गए हैं किंतु उनका कोई विशेष परिणाम नहीं निकला है।